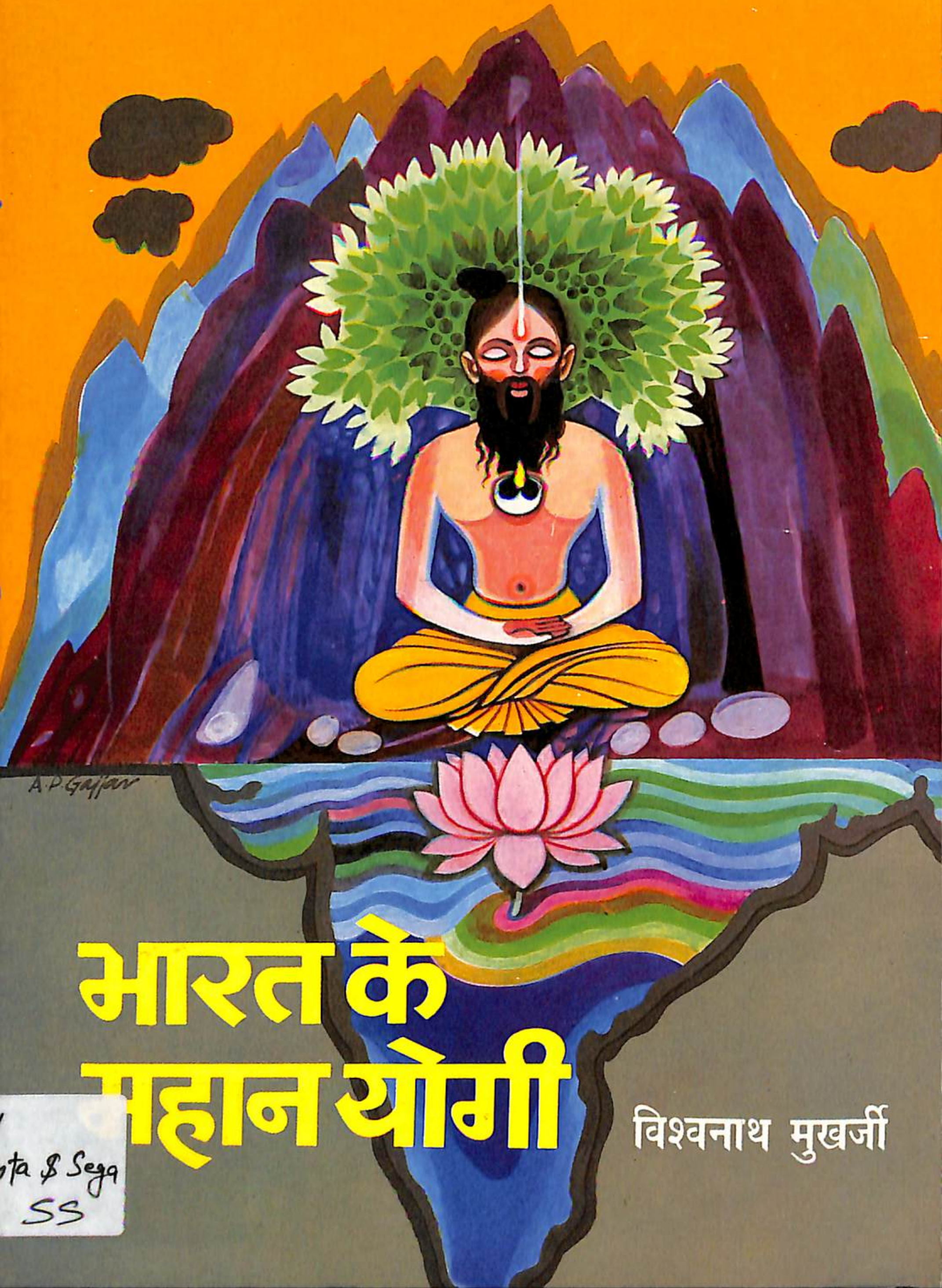
तीन-चार



भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

55-13

(खण्ड तीन-चार)

लेखक
विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 3-4)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-89498-09-6

चतुर्थ संस्करण : 2006 ई०

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी-221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

पुरोवाक्

श्री विशुद्धानन्द परमहंस ने योग को विज्ञान कहा है। वे स्वयं सूर्य-विज्ञान के अपूर्व ज्ञाता थे। उन्होंने यह भी कहा है कि योग-विज्ञान के कई भेद हैं। सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, वायु-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि विज्ञान हैं। साधक जब सूर्य-विज्ञान में सिद्ध हो जाता है तब शेष विज्ञानों को सीखने में आसानी होती है।

डा० सम्पूर्णानन्द जी भी साधक थे और उन्होंने इस विज्ञान का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने लिखा है—''आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा शुद्ध, अपरोक्ष, अतीन्द्रिय ज्ञान होता है और वह वर्णनातीत है। उसकी चर्चा करना अनुचित और बेकार है। अपने को सत्य की, उस सत्य पदार्थ की जो देश और काल के परे है जिसमें यह जगत् ओत-प्रोत है जो जगत् के, द्रष्टा, भीतर और बाहर है जो अपनी आत्मा से अभिन्न है, उस सत्य की क्या अनुभूति हुई, कैसी झलक मिली, इसकी क्या चर्चा की जाय, अनुभूति ही इसका एकमात्र मार्ग है। योग का प्रत्येक अभ्यासी तत्त्व द्रष्टा नहीं हो जाता। योग की पहली सीढ़ी पर पाँव रखने वाले का स्थान भी दूसरी सब उपासना, यज्ञ, याग करने वालों के लोक से ऊँचा है। सच्चे कलाकार को कभी-कभी इसकी झलक मिल जाती है।

आगे एक जगह आप लिखते हैं—''ज्ञान का सर्वोपरि साधन, एकमात्र अचूक और असन्दिग्ध साधन योग है। साधारण अवस्था में हमारी बुद्धि राग-द्वेष से कलुषित रहती है। शुद्ध, सम्पूर्ण ज्ञान की हमको अपेक्षा भी नहीं है। उससे कष्ट भी हो सकता है। यदि हमारी चक्षुरिन्द्रिय इतनी तेज हो जाय कि हम दूसरों के शरीर के भीतर की क्रियाओं को देख सकें तो किसी से प्रेम करना तो दूर रहा, बात करना कठिन हो जाय। मनुष्य में ऐसी शक्ति है पर वह अपनी इन्द्रियों से पूरा काम नहीं लेता, लेना चाहता भी नहीं।

''योगाभ्यास के समय राग द्वेषादि के आवरण हट जाते हैं और निर्बाध ज्ञान होता है, सत्य का आवरणहीन रूप सामने आता है। अपने अनुभव को कहाँ तक व्यक्त किया जा सकता है, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है। मुझसे लोग कभी कभी पूछते हैं कि मैं विभूतियों, सिद्धियों में विश्वास करता हूँ या नहीं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति के सामने यह प्रश्न बहुत आता है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे इस पर विश्वास है। मनुष्य अपार-शक्ति का भण्डार है, परन्तु वासनाओं ने चित्त में परदे बना रखे हैं, दहकते अंगारे पर राख की तह बैठ गयी है। ज्यों-ज्यों राख उड़ती है, अभ्यास के बल से परदे उड़ते हैं,

त्यों-त्यों अंगारे की छिपी आँच प्रकट होती है। सिद्धि कहीं बाहर से नहीं आती, अपनी ही छिपी शक्ति प्रकट होती है। प्रत्येक अभ्यासी को इसका अनुभव होगा।''

इस उद्धरण को यहाँ देने का आशय यह है कि अनेक पाठकों ने ऐसे योगियों के बारे में जानकारी चाही है जो वर्तमान समय में जीवित हों। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे अनेक योगी आज भी भारत में हैं, पर वे घरों में नहीं रहते। हिमालय, विन्ध्य के अमरकंटक, तिब्बत, गिरनार और असम के घने जंगलों में निवास करते हैं। उन्हें पहचानना कठिन है। सच्चे साधक या योगी कभी आत्म प्रदर्शन नहीं करते। जिस सिद्धि को पाने के लिए योगी अपने जीवन के अमूल्य समय को नष्ट करते हैं, उसे सहज ही सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं होने देते।

उपनिषद् का वाक्य है—''क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्ग पथः तत्कवयो वदन्ति। नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहित:''।

अर्थात् योगियों का कथन है कि वह मार्ग बहुत ही कठिन है। छूरे की तीखी धार के समान दुर्गम है। इस मार्ग पर चलने वाला वह नहीं हो सकता जो दुश्चरितों को छोड़ न चुका हो, जिसने इन्द्रियों को दबाया न हो।

कुछ पाठकों ने योग-सम्बन्धी समस्याओं के बारे में प्रश्न किये हैं। मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर पण्डित गंगाशंकर मिश्र के लेखों से कुछ उद्धरण देना पसन्द करूँगा ताकि पाठकों को इस दिशा में सही जानकारी प्राप्त हो जाय।

''अंग्रेजी में प्रकाशित एक पुस्तक का नाम है-'थर्ड आई' यानी 'तीसरा नेत्र'। इसके लेखक हैं—श्री लोबसग रम्पा। वे तिब्बत के अवतारी लामा थे। तिब्बतियों का विश्वास है कि अवतारी लामाओं का जब तीसरा नेत्र खोल दिया जाता है तब उन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। रम्पा का तीसरा नेत्र खोल दिया गया था। परन्तु अन्तर्दृष्टि सबको सहज ही प्राप्त नहीं होती। इसके लिए अपनी योग्यता से इने-गिने व्यक्ति ही अधिकारी माने जाते हैं। 'तीसरा-नेत्र' खोलने की विधि इस प्रकार है—अंग्रेजी अक्षर 'यू' जैसा एक यन्त्र होता है, उसमें काँटे रहते हैं। पहले मस्तक को कुछ औषधियों से शून्य बना दिया जाता है, फिर वह यन्त्र मस्तक के मध्य में नाक के ऊपर ठोंका जाता है। उसके काँटे हड्डियों तक पहुँच जाते हैं। वह स्थान शून्य होने से पीड़ा अधिक नहीं होती, पर तब भी बहुत कष्ट होता है। हड्डी तक यन्त्र के काँटे पहुँच जाने के बाद यह खींच लिया जाता है। पर उसका एक टुकड़ा उस रन्ध्र में रह जाता है जो शिर में कपाल की ओर जाता है। तीन दिन तक उसे उसी स्थान पर रहने दिया जाता है। इसी बीच बिलकुल अँधेरे कमरे में उस व्यक्ति को रखा जाता है और उसे बहुत कम खाना-पीना दिया जाता है। तीसरे दिन वह टुकड़ा निकाल लिया जाता है तब उसका 'तीसरा नेत्र' खुल जाता है और तब उसे प्रत्येक व्यक्ति अपने असली रूप में दिखाई पड़ने लगता है, न उस रूप में जिसमें कि वह ऊपर से है। इच्छानुसार यह नेत्र खोलने और मूँदने का अभ्यास भी करा दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो प्रत्येक व्यक्ति हर समय उसे दोहरे रूप में दिखलायी देता रहे, और वह बड़े असमंजस में पड़ा रहे। जब

किसी व्यक्ति का भीतरी रूप देखने की इच्छा होती है तभी उस नेत्र का प्रयोग किया जाता है।''

रम्पा ने अपनी पुस्तक में लामाओं की योग सिद्धियों की चर्चा करते हुए लिखा है—''वे अदृश्य हो सकते हैं, उड़ सकते हैं, हवा की तरह तेज भाग सकते हैं, बिना खाये-पीये रह सकते हैं।' अपने बारे में उसने यह भी लिखा है कि इनमें से कुछ सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हैं। यह विद्या भारत से तिब्बत गयी। अब तो भारत में यह एक प्रकार से लुप्त है।

लामाओं को इस दिशा में कितनी कठोर-साधना करनी पड़ती है इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है— ''शीतकाल की रात में जब तेज हवा चल रही हो, साधक को एक नदी या झील के किनारे ले जाया जाता है। यदि वे जम गयी हों तो बर्फ में एक गड्ढ़ा खोदकर उसके भीतर साधक को बैठा दिया जाता है। साधक नग्न होकर पद्मासन में बैठ जाता है। फिर कपड़े की चादर को बर्फ के पानी में भिगोकर उसे ओढ़ायी जाती है, जो साधक इस प्रकार अधिक सुखा देता है, वह परीक्षा में सर्वप्रथम माना जाता है। कहा जाता है कि प्रत्येक साधक के लिए कम-से-कम तीन चादर सुखाना आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति 'रेस्पा' कहलाता है जो बाद में एक सूखी चादर ओढ़ सकता है। कुछ लोग इस क्रिया में चालीस-चालीस चादर सुखा डालते हैं। दूसरी परीक्षा यह होती है जो साधक गड्ढे में बैठकर अधिक से अधिक बर्फ पिघला सके, वह प्रथम माना जाता है। अभ्यास पूरा हो जाने पर उच्च श्रेणी के साधकों को कोई ऊनी या सूती वस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। तिब्बती लामाओं को अपनी इस सिद्धि पर गर्व है।''

दरअसल भारत से यह विद्या तिब्बत पहुँची है। तिब्बत में पद्मसम्भव ने ही भारतीय तन्त्र पर आधृत 'वज्रयान' सम्प्रदाय का प्रचार किया था। उसमें तीन 'मकार' (मन्त्र, मण्डल और मुद्रा) पर अधिक जोर है। उसके इस सम्प्रदाय की कई शाखाएँ तिब्बत में प्रचलित हैं। वहाँ का महातान्त्रिक मर्प तीन बार भारत आया और भारतीय गुरुओं से दीक्षा ली। उसका एक शिष्य 'मिरलेप' महान् योगी हुआ।

योग की शिक्षा अत्यन्त कष्ट साध्य है। यह न तो सर्वसाधारण के लिए सहज ही सुलभ होता है और न प्रत्येक साधक को अनायास प्राप्त होता है। इसके लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है।

—विश्वनाथ मुखर्जी

अनुक्रमणिका



योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी

पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट, मिलेटरी इंजीनियरिंग वर्क्स का ऑफिस। स्थान—दानापुर।

ऑफिस का केरानी बाबू कुछ फाइलें लेकर बड़े साहब के कमरे के पास आकर कहा—"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ, सर?"

भीतर से कोई जवाब नहीं आया तो केरानी बाबू ने धीरे से भीतर जाकर उनकी मेज पर फाइलें रख दीं और फिर बाहर चला आया। साहब दार्शनिकों की तरह खिड़की के बाहर का दृश्य देख रहे थे।

आधे घंटे बाद पुनः कुछ फाइलें लेकर केरानी बाबू आये तो देखा—साहब पहले की तरह खोये-खोये से हैं।

"सर!"

साहब ने गौर से केरानी बाबू की ओर देखते हुए कहा—"आज मन नहीं लग रहा है। फाइलें रखकर आप जा सकते हैं।"

केरानी बाबू ने नम्रतापूर्वक पूछा—"क्षमा करें, सर! आखिर बात क्या है? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो हुक्म करें।"

साहब ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा—"इंग्लैण्ड से पत्र आया है। मेरी पत्नी सख्त बीमार है। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ? वहाँ रहता तो देखरेख करता।"

केरानी बाबू ने कहा—"तभी मैं सोच रहा था कि क्या बात है जो साहब फाइल में हाथ नहीं लगा रहे हैं। मैं थोड़ी देर बाद आ रहा हूँ।"

केरानी बाबू की बातें सुनकर साहब का उदास चेहरा मुस्कान में बदल गया। ऑफिस के सभी बाबू इस केरानी बाबू को 'पगला बाबू' कहते थे। हमेशा न जाने क्यों अपने आप में खोये से रहते थे। बातें करते समय हमेशा मुस्कराते रहते थे। आँखें ढपी रहती थीं। कुछ लोग इन्हें 'आनन्दमग्न बाबू' भी कहते थे, क्योंकि हमेशा आनन्द में डूबे रहते थे। किसी बात की चिन्ता नहीं करते थे।

थोड़ी देर बाद साहब के कमरे का दरवाजा खुला। साहब ने केरानी बाबू की ओर देखते हुए कहा—"आज मैं कुछ भी नहीं करूँगा। आप मुझे कृपया तंग न करें। अब फाइलों का काम कल होगा।"

साहब की बातें समाप्त होने पर केरानी बाबू ने कहा—"सर, आप बिलकुल बेफिक्र रहिये। मेम साहब स्वस्थ हो गयी हैं। वे आपको आज की तारीख में पत्र लिख रही हैं। अगली मेल से आपको उनका पत्र मिल जायगा। सिर्फ यहीं नहीं, टिकट मिलते ही वे अगले जहाज से भारत के लिए रवाना हो जायेंगी।"

इधर केरानी बाबू अपनी बातें कह रहे थे और उधर साहब मुस्कराते हुए इनकी ओर देख रहे थे। साहब ने कहा—"आप तो इस तरह बयान दे रहे हैं जैसे मेरी पत्नी से मिलकर चले आ रहे हैं। पगला बाबू, आपकी बातों से निस्सन्देह मुझे सांत्वना मिली। इसके लिए धन्यवाद, ईश्वर करे कि आपकी बातें सही हों। अब आप अपने टेबुल पर चले जाइये।"

पगला बाबू यानी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय समझ गये कि साहब ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया। उन्हें क्या मालूम कि इस बीच मैंने क्या किया। समय आने पर स्वयं ही चकित रह जायेंगे।

एक माह के बाद एक दिन साहब के चपरासी ने श्यामाचरण लाहिड़ी के टेबुल के पास आकर कहा—"बाबू, आपको साहब ने याद किया है।"

साहब ने इन्हें देखते ही कहा—"पगला बाबू, आप कमाल के आदमी हैं। लगता है, आप कुछ ज्योतिष वगैरह जानते हैं। आपकी बात बिलकुल ठीक निकली।"

श्यामाचरण जी यह तो समझ गये कि साहब के कहने का क्या उद्देश्य है, फिर भी अनजान बनकर उन्होंने पूछा—"कौन-सी बात, सर?"

साहब ने प्रसन्न भाव से कहा—"आपने मेरी पत्नी के बारे में जो कुछ कहा था, सब सही निकला। मेरी पत्नी बिलकुल ठीक हो गयी है और भारत के लिए अब रवाना हो चुकी है। सच पूछिये तो इधर मैं बहुत चिन्तित था। आज पत्नी का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। मैडम को आने दो। मैं उनकी मुलाकात आप से कराऊँगा।"

इस घटना के २०-२५ दिन बाद एक दिन पुनः श्यामाचरण जी की बुलाहट हुई। साहब के कमरे में जाते ही उन्होंने कहा—"आओ पगला बाबू, यही हैं मेरी मैडम और ये हैं...."

'माई गाड!' कहने के साथ ही मेम साहब कुर्सी से उछल पड़ीं।

साहब ने चौंककर पूछा—"क्या बात है?"

मेम साहब ने पूछा—"आप कब आये?"

साहब ने कहा—"पगला बाबू कब आये? यह क्या पूछ रही हो।"

लाहिड़ी महाशय सब कुछ समझ गये। बिना कुछ बोले वे बाहर चले गये। उनके जाने के बाद मेम साहब ने कहना प्रारम्भ किया—"बड़े आश्चर्य की बात है। लगता है जैसे यहाँ आकर जादू देख रही हूँ। घर में जब बीमार थी तब एक दिन यही आदमी मेरे सिरहाने खड़ा होकर सिर पर हाथ फेरता रहा। मुझे आश्चर्य हुआ कि आखिर यह अपरिचित व्यक्ति मेरे घर में कैसे आ गया। लेकिन दूसरे ही क्षण इसने मुझे सहारा देकर बिस्तर पर जब बैठाया तब मेरी सारी बीमारी दूर हो गयी। मुझे अजीब सा लगा। इसने कहा—'बेटी, तुम बिलकुल ठीक हो गयी हो। अब तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। भारत में तुम्हारे पति बड़े बेचैन हैं। उन्हें अभी पत्र लिखकर डाक में डाल दो। कल ही जहाज कम्पनी में सीट बुक कराने का ऑर्डर भेज दो। जल्दी भारत चली जाओ वर्ना साहब नौकरी छोड़कर वापस आ जायेंगे।' इतना कहकर यह आदमी गायब हो गया। मैं यह भी नहीं पूछ सकी कि आखिर तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, मेरे पति के बारे में क्या जानते हो। उस वक्त ऐसा लगा जैसे मैं कोई सपना देख रही थी और आज इस शख्स को यहाँ देखकर डर गयी।"

सारी बातें सुनकर साहब कम विस्मित नहीं हुए।

* * *

बंगाल में तीन संतों की चर्चा पिछले सौ वर्षों से होती आ रही है। सर्वश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी, श्यामाचरण लाहिड़ी और स्वामी विशुद्धानन्द। दरअसल इन संतों से अनेक भक्त उपकृत हुए हैं, इसलिए इनकी कहानियाँ बराबर सुनाई जाती हैं।

लाहिड़ी महाशय का जन्म नदिया जिले के घुरणी गाँव में, ३० सितम्बर, सन् १८२८ ई० को हुआ था। आपके पिता की प्रथम पत्नी से दो पुत्र तथा एक पुत्री हुई। प्रथम पत्नी के निधन के पश्चात् आपके पिता श्री गौरमोहन लाहिड़ी ने पुनर्विवाह किया। द्वितीय पत्नी के गर्भ से आप प्रथम पुत्र हुए।

आपके पैतृक निवास स्थान में जलंगी नदी बहती थी जिसने सहसा अपना मार्ग बदल दिया। इस दैवी दुर्घटना के कारण आपका घर नदी के उदर में चला गया। कुछ दिनों बाद आपके पिता काशी चले आये।

लाहिड़ी महाशय नदिया जिला से अचानक काशी क्यों चले आये, इस विषय में मतभेद है। यहाँ आकर बंगाली टोला स्थित एक भवन में सपरिवार रहने लगे।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार बचपन से ही श्यामाचरण अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। महाराजा जयनारायण घोषाल द्वारा स्थापित हाईस्कूल में बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी के अलावा फारसी भाषा की शिक्षा आप

लेने लगे। यहाँ की शिक्षा सम्पूर्ण करने के बाद आप संस्कृत कॉलेज में संस्कृत भाषा का अध्ययन करने लगे। तत्कालीन भारत-विख्यात् संस्कृत-साहित्य के प्रकांड विद्वान् नागोजी भट्ट की आप पर विशेष कृपा थी। उनसे आप उपनिषद् और शास्त्र पढ़ते रहे।

गौरमोहन लाहिड़ी के पड़ोसी श्री देवनारायण सान्याल थे। दोनों व्यक्तियों में गहरी मैत्री थी। इसे और सुदृढ़ करने के लिए दोनों समधी बन गये! श्यामाचरण का विवाह सान्याल की पुत्री काशीमणि देवी से सन् १८४६ में हुआ। आप दो पुत्र और दो पुत्रियों के पिता बने। सन् १८५१ ई० में ब्रिटिश सरकार के सैनिक इंजीनियरिंग विभाग में एकाउण्टेण्ट पद पर आपकी नियुक्ति हुई। कई जगह बदली होने के बाद आपकी बदली दानापुर में हुई।

अचानक परिवार में सम्पत्ति को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। आप शांतिप्रिय व्यक्ति थे। सभी सम्पत्ति अपने सौतेले भाई के जिम्मे छोड़कर गरुड़ेश्वर में अपने लिए नया मकान खरीद लिया।

एक दिन ऑफिस जाते ही ज्ञात हुआ कि दानापुर से उनकी बदली रानीखेत हो गयी है। काशी में पूरा परिवार छोड़कर आप रानीखेत रवाना हो गये। उन दिनों यानी सन् १८६८ ई० तक इधर रेलवे लाइन नहीं आयी थी। विभिन्न प्रकार की सवारियों के जरिये आप रानीखेत के ऑफिस में पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों के बाद जब कार्य कब्जे में आ गया तब आप नित्य हिमालय का सौन्दर्य देखने के लिए कई मील पैदल घूमने चले जाया करते थे।

एक दिन आप टहलते हुए द्रोणगिरि तक चले गये। सहसा आपको लगा जैसे कोई आपका नाम लेकर पुकार रहा हो। पुकारने वाले ने एक या दो बार पुकारा होगा, पर पहाड़ों से टकराकर उसकी आवाज बार-बार गूँजने लगी। आपको बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस सुनसान स्थान पर मेरा परिचित कौन हो सकता है? आप पुकारने वाले व्यक्ति को चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर खोजने लगे। थोड़ी देर बाद एक ऊँचे शिखर पर एक युवक दिखाई दिया जो हाथ के इशारे से पास आने का संकेत कर रहा था।

उसके पास जाने पर भी युवक को लाहिड़ी महाशय पहचान नहीं सके। उक्त अपरिचित युवक ने कहा—''मैंने ही तुम्हें पुकारा था। तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो?''

लाहिड़ी महाशय ने नकारात्मक भाव से सिर हिलाकर बताया कि, नहीं। उन्हें साथ लेकर वह युवक एक गुफा के पास गया और भीतर रखे कम्बल तथा कमंडल को दिखाते हुए कहा—''क्या इन सामग्रियों को पहचान रहे हो?''

''नहीं महाराज। मैं तो आपको भी नहीं पहचान पा रहा हूँ। इधर देख रहा हूँ कि आप मेरा नाम तक जानते हैं।''

''मैं तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ। एक विशेष कार्य के लिए तुम्हें दानापुर से यहाँ बुलवाया है। कुछ दिनों बाद तुम्हें यहाँ से वापस चले जाना पड़ेगा।''

लाहिड़ी महाशय का विस्मय अभी तक दूर नहीं हुआ था। वे जड़भरत की तरह

खड़े उस युवक को देख रहे थे। तभी उस युवक ने श्यामाचरण के ललाट को स्पर्श किया। उनके स्पर्श से ही लाहिड़ी महाशय का समस्त शरीर झनझना उठा। धीरे-धीरे उनकी पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत् हो गयीं। उन्हें स्मरण हो आया कि पिछले जन्म में वे इसी गुफा में तपस्या करते थे। यह कमंडल उन्हीं का है, इसी आसन पर वे बैठते थे। अब उनका चेहरा आनन्द से खिल उठा। उन्होंने उक्त अपरिचित युवक को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—''हाँ, अब पहचान गया। आप मेरे गुरुदेव हैं। यह गुफा मेरी साधना-भूमि है। अज्ञान के लिए मुझे क्षमा करें।''

''पिछले चालीस वर्षों से मैं यहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। यहाँ से वापस जाने के बाद से मैं साये की तरह तुम्हारे पीछे लगा रहा। जन्म लेने के बाद से तुम पर मेरी दृष्टि रही। अब जाकर तुम मेरे पास आये हो। अब तुम्हारी शुद्धि होगी। इस पात्र से थोड़ा तेल पीकर नदी किनारे जाकर लेट जाओ।''

गुरुदेव के आज्ञानुसार लाहिड़ी महाशय तेल पीकर नदी किनारे जाकर वहीं लेट गये। पहाड़ की ठंडी हवा बदन से टकराने लगी। वेगवती नदी की प्रखर ध्वनि को परास्त करती हुई कभी-कभी वन्य पशुओं की दहाड़ सुनाई देती रही। धीरे-धीरे लाहिड़ी महाशय ने अनुभव किया कि उनके शरीर में उष्मा बढ़ रही है।

कुछ देर तक इस स्थिति में वे पड़े रहे। सहसा किसी की पगध्वनि सुनाई दी। एक ब्रह्मचारी ने पास आकर कुछ सूती वस्त्र देते हुए कहा—''आप इन्हें पहन लीजिए और मेरे साथ चलिए। गुरुदेव आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

उस ब्रह्मचारी के साथ काफी दूर आगे जाने पर लाहिड़ी महाशय ने एक अद्‌भुत दृश्य देखा। विस्मय से उन्होंने पूछा—''क्या सूर्योदय हो रहा है?''

साथी शिष्य ने मुस्कराकर कहा—''नहीं, अभी तो अर्द्ध रात्रि है। आप जिस प्रकाश को देख रहे हैं, वह स्वर्ण महल है। इसकी सृष्टि आज एक विशेष कारण से गुरुदेव ने की है। आज इसी महल में आपकी दीक्षा होगी ताकि आपके पिछले सभी कर्म-बंधन समाप्त हो जायँ।''

धड़कते हुए हृदय से लाहिड़ी महाशय उस अपूर्व महल के पास आकर खड़े हुए। उन्होंने चकित दृष्टि से देखा—चारों ओर पृथ्वी से प्राप्त विभिन्न रत्नों से महल का श्रृंगार किया गया था। जड़े हुए रत्नों की आभा से जो प्रकाश निकल रहा था उसी से उन्हें सूर्योदय का भ्रम हुआ था। दरवाजे के पास कई गुरु भाई खड़े थे। हवा में तैरती हुई अपूर्व सुगंध मन को उत्फुल्ल कर रही थी।

महल के भीतर आने पर लाहिड़ी महाशय ने देखा—भीतर अनेक संत विराजमान हैं। इन संतों के आसपास स्थित दीपकों से रंग-बिरंगे प्रकाश निकल रहे हैं। वहीं कुछ विद्यार्थी मंत्र-पाठ कर रहे हैं। समस्त दृश्य जादू जैसा लगने लगा। अपने जीवन में कभी इस प्रकार का दृश्य देख सकेंगे, इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर गुरुदेव के दर्शन हुए। तुरन्त उनके चरणों पर सिर रखकर

लाहिड़ी महाशय भूमि पर लेट गये।

गुरुदेव ने कहा—''जागो वत्स, आज तुम्हारी सारी भौतिक इच्छाएँ सर्वदा के लिए शांत हो जायेंगी। ईश्वरीय-राज्य की प्राप्ति के लिए क्रिया-योग की दीक्षा ग्रहण करो।''

सामने स्थित होमकुंड के आगे गुरुदेव ने ज्योंही हाथ फैलाया त्योंही उसके चारों ओर फूलों के ढेर लग गये। प्रज्वलित कुंड के सामने गुरुदेव ने लाहिड़ी महाशय को क्रिया-योग की दीक्षा दी। दीक्षा लेने के बाद लाहिड़ी महाशय ने एक बार महल को जी भरकर देखा। इसके बाद गुरुदेव के समीप आकर बैठ गये।

गुरुदेव ने कहा—''श्यामाचरण, अब अपनी आँखें बन्द कर चुपचाप बैठ जाओ।''

लाहिड़ी महाशय ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद गुरुदेव के आदेश देने पर उन्होंने आँखें खोलीं। उस वक्त वहाँ न सोने का महल था और न वे संत थे जिन्हें आते समय लाहिड़ी महाशय ने देखा था। इस समय वे चिर परिचित गुफा के सामने शिष्यों से घिरे हुए अपने गुरुदेव के सामने बैठे थे।

यह दृश्य लाहिड़ी महाशय के लिए अद्‌भुत था। अभी इसी विषय पर कुछ सोच रहे थे कि तभी गुरुदेव ने उन्हें भोजन करने की आज्ञा दी। इसके बाद उन्होंने कहा—''श्यामाचरण, अब तुम अपनी गुफा में जाकर ध्यानस्थ हो जाओ।''

गुरुदेव के आदेशानुसार लाहिड़ी महाशय गुफा के भीतर जाकर कम्बल पर बैठ गये। गुरुदेव ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा और वे समाधिस्थ हो गये। इस प्रकार यह क्रिया लगातार कई दिनों तक चलती रही।

आठवें दिन गुरुदेव ने कहा—''वत्स, अब मेरा कार्य पूरा हो गया। शीघ्र ही तुम्हें यहाँ से वापस जाना पड़ेगा। मैंने तुम्हारे हेड ऑफिस को प्रेरणा देकर इसी कार्य के लिए बुलाया था। अब उन्हें अपनी भूल मालूम हो गयी है, अतएव वे लोग शीघ्र तुम्हें अपने यहाँ वापस बुला लेंगे।''

इस बात को सुनकर लाहिड़ी महाशय व्याकुल हो उठे। उन्होंने कहा—''गुरुदेव, अब मुझे वापस मत भेजिये। अपने चरणों की सेवा करने का अवसर दीजिए। मैं आपके सान्निध्य ने रहना चाहता हूँ।''

गुरुदेव ने कहा—''नहीं वत्स, तुम्हें वापस जाना ही होगा। संन्यासी के रूप में नहीं, बल्कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए जन-कल्याण-कार्य करना होगा। आगे चल कर अनेक लोग तुमसे दीक्षा ग्रहण करेंगे। तुम्हें देखकर लोग यह जान सकेंगे कि उच्चस्तर की साधना से गृहस्थ भी लाभ उठा सकते हैं। तुम्हें गृहस्थी से अलग होने की आवश्यकता नहीं है। तुम उस बंधन से मुक्त हो गये हो। यह याद रखना कि योग्य व्यक्ति को ही दीक्षा देना। ईश्वर-प्राप्ति के लिए जो सर्वस्व त्याग कर सकता है, वही इस मार्ग के लिए योग्य है।''

इस घटना के बाद लाहिड़ी महाशय में अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। वे पुनः इस स्वर्ग को छोड़कर कर्मक्षेत्र में जाना नहीं चाहते थे। मन ही मन प्रार्थना करने लगे कि

गुरुदेव हमेशा के लिए अपने पास रख लें। लाहिड़ी महाशय के मनोभाव को समझने के बाद गुरुदेव ने कहा—"इस जन्म में तुम अनेक जन्मों की साधना से धन्य हो चुके हो। मैंने तुम्हें यहाँ तब तक नहीं बुलाया जब तक तुम विवाहित नहीं हो गये। अब तुम्हें एक आदर्श गृहस्थ के रूप में आगे का जीवन व्यतीत करना है। अगणित लोग तुमसे क्रिया-योग की शिक्षा लेकर आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करेंगे। उन सभी लोगों को यह बताना होगा कि यौगिक-साधना गृहस्थ भी कर सकते हैं। यह याद रखना कि जिसे क्रिया-योग की दीक्षा देना, उसे गीता के इस वचन को अवश्य सुना देना—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

(निष्काम कर्म-योग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है, इसलिए इस निष्काम कर्मयोग रूपी धर्म का थोड़ा-सा साधन, जन्ममृत्युरूप महान् भय से उद्धार कर देता है।)

आगे गुरुदेव ने कहा—"केवल योग्य शिष्यों को क्रिया-योग की दीक्षा देना जो ईश्वर-प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने का संकल्प कर सकते हैं। ऐसे ही लोग इसके पात्र होते हैं।"

* * *

दूसरे दिन गुरुदेव से बिछुड़ते समय लाहिड़ी महाशय रोने लगे। यह देखकर गुरुदेव ने उन्हें कंठ से लगाकर सांत्वना देते हुए कहा—"तुम मुझसे बिछुड़ नहीं रहे हो। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा। जब जहाँ स्मरण करोगे तब वहीं उपस्थित हो जाऊँगा। मेरे लिए व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है।"

वहाँ से जब वे अपने कार्यालय में वापस आये तब उनके सहयोगियों को अपार प्रसन्नता हुई। पिछले दस दिनों से लाहिड़ी महाशय गायब रहे। लोग यह समझ चुके थे कि वे किसी वन्य पशु का शिकार हो गये हैं अथवा अन्य किसी दुर्घटना के कारण उनका निधन हो गया है। सहकर्मियों के बार-बार प्रश्न करने पर भी लाहिड़ी महाशय ने अपने अज्ञातवास के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

उन लोगों की उत्सुकता को समाप्त करने के लिए लाहिड़ी महाशय ने कहा—"मैं जंगल में भटक कर दूर चला गया था। नयी जगह होने के कारण मुझे वापस आने में इतना समय लग गया।"

कई दिनों बाद प्रधान कार्यालय से आदेश आया कि ऑफिस की गलती से लाहिड़ी महाशय का तबादला रानीखेत कर दिया गया था। उन्हें अविलम्ब यहाँ भेज दिया जाय। वहाँ का कार्य देखने के लिए जिनकी नियुक्ति की गयी थी, उन्हें शीघ्र भेजा जायगा।

रानीखेत से वापस आते समय लाहिड़ी महाशय कुछ मित्रों के अनुरोध पर

मुरादाबाद में रुक गये। एक दिन न जाने किस बात पर एक सज्जन ने कहा—''आजकल वास्तविक संत हैं कहाँ? सभी 'क्षेत्रे भोजन मठे निद्रा' वाले हैं। इन लोगों का राजशाही ठाठ देखकर ईर्ष्या होती है। बड़े-बड़े मठ बनवाकर, आम जनता को उपदेश देकर मूर्ख बनाते हैं। असली संत कभी इन ऐश्वर्यों को स्पर्श नहीं करते।''

इस बैठक में लाहिड़ी महाशय मौजूद थे। उन्होंने कहा—''आपका ख्याल गलत है। भारत में आज भी उच्चकोटि के संत हैं। हम उन्हें पहचान नहीं पाते। वे घरों से दूर अपनी साधना में निमग्न रहते हैं। मेरे गुरुदेव ऐसे ही महान् संत हैं जिनकी कृपा से मुझे नया जीवन मिला है।''

इतना कहने के बाद लाहिड़ी महाशय अपने परमपूज्य गुरुदेव की कहानी सुनाने लगे। उनकी बातों पर किसी ने विश्वास नहीं किया। कहा जाता है—'नया मुसलमान प्याज अधिक खाता है।' गुरुदेव की कृपा तथा पूर्व जन्म के संस्कार के कारण लाहिड़ी महाशय योगी पुरुष बन गये थे, परन्तु साधारण नागरिकों की तरह अपने गर्व का शमन नहीं कर पाये थे।

अपना मजाक उड़ते देख लाहिड़ी महाशय ने उत्तेजनावश कहा—''आप लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है? अगर मैं चाहूँ तो अभी इसी क्षण, यहीं, अपने गुरुदेव को बुला सकता हूँ।''

फिर भी लोगों को विश्वास नहीं हुआ। अचानक श्यामाचरण लाहिड़ी इस अपमान से अत्यधिक उत्तेजित हो उठे। वे यह भूल गये कि ऐसे लोगों के बीच चमत्कार नहीं करना चाहिए जो इसके योग्य नहीं हैं। जिनके पास दिव्य दृष्टि नहीं है।

लाहिड़ी महाशय एक कमरे में चले गये और कहा कि आप सभी लोग बाहर बैठे रहें। जब तक मैं न बुलाऊँ तब तक कोई भीतर आना तो दूर रहा, झाँकने की भी कोशिश न करें। इतना कहने के बाद उन्होंने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया और फिर ध्यानस्थ हो गये।

कुछ देर बाद उस अँधेरे कमरे में एक दिव्य प्रकाश हुआ। उस प्रकाश के भीतर से गुरुदेव प्रकट हुए। उनकी दृष्टि कठोर थी। उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—''श्यामाचरण, तुमने इन पापिष्ठ-अकर्मण्य मित्रों के कारण मुझे बुलाया? अब मैं जा रहा हूँ, अब ऐसे तुच्छ कारणों पर मैं कभी नहीं आऊँगा।''

गुरुदेव के इस कथन से लाहिड़ी महाशय की अन्तर-आत्मा काँप उठी। तुरन्त जमीन से माथा टेकते हुए उन्होंने कहा—''अपराध के लिए क्षमा कर दीजिए गुरुदेव। उत्तेजनावश बाल-हठ कर बैठा। अविश्वासी मन वाले इन अंधों को यह बताना चाहता था कि भारत में अभी उच्चस्तर के योगी हैं। अब आप आ ही गये हैं तो इन अविश्वासियों को दर्शन देकर इनके भ्रम को दूर करने की कृपा करें।''

गुरुदेव ने अभय वाणी देते हुए कहा—''ठीक है। भविष्य में कभी विनोद के निमित्त मुझे स्मरण मत करना। जब वास्तव में तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी तभी मैं आऊँगा।''

इस आश्वासन को पाते ही लाहिड़ी महाशय ने कमरे का दरवाजा खोल दिया। लोग चकित दृष्टि से उनके गुरुदेव को देखने लगे।

फिर भी एक अविश्वासी बोल उठा—''यह तो सामूहिक सम्मोहन है। वास्तविक नहीं है।''

गुरुदेव मुस्कराये। आगे बढ़कर उन्होंने सभी को स्पर्श किया और प्रसाद के रूप में हलुआ दिया। ज्यों ही लोगों ने हलुआ मुँह में डाला त्यों ही वह प्रकाश लुप्त हो गया। इन दर्शनार्थियों में से एक सज्जन ने आगे चलकर लाहिड़ी महाशय से दीक्षा ली थी।

* * *

रानीखेत से वापस आकर वे अपने कार्यालय में पूर्व की भाँति कार्य करते रहे। गुरु द्वारा बतायी गयी क्रियाओं की साधना भी चलती रही। इस प्रकार लाहिड़ी महाशय ने सन् १८८० तक सरकार की सेवा में रहने के बाद अवकाश ग्रहण किया था।

अवकाश लेने के बाद लाहिड़ी महाशय की कठिनाई बढ़ गयी। पेंशन के रुपयों से गृहस्थी न चलती देख वे काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह के सुपुत्र प्रभुनारायण सिंह को शास्त्रादि पढ़ाने के लिए कुछ दिनों तक तीस रुपये मासिक वेतन पर गृह-शिक्षक का कार्य करते रहे। राजा की ओर से नित्य नाव उन्हें ले जाने के लिए आती और फिर रामनगर किले से घर तक पहुँचा जाती थी।

लाहिड़ी महाशय की प्रतिभा से काशी नरेश के उच्च पदाधिकारी श्री गिरीश चन्द्र परिचित थे। बचपन में दोनों जयनारायण कॉलेज में सहपाठी थे। एक दिन उन्होंने महाराजा से कहा—''महाराजा जी, कृपया अपने गृह-शिक्षक का विशेष रूप से ध्यान रखियेगा। उनका असम्मान किसी ओर से न होने पाये। लाहिड़ी महाशय सामान्य अध्यापक नहीं हैं। आप एक महान् योगी हैं। इस बात को हर कोई जान न ले, इसलिए अपने को छिपाये रखते हैं। मैं इनकी योग विभूतियों को देख और सुन चुका हूँ।''

महाराजा ने कहा—''मेरा भी ऐसा ही विचार है। इनके ज्ञान और अध्ययन को देखकर मैं यह समझ गया था । आप स्वयं ही इनका विशेष रूप से ख्याल रखें ताकि इन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो।''

आगे चलकर ईश्वरीनारायण सिंह लाहिड़ी महाशय से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने और उनके पुत्र ने भी श्यामाचरण लाहिड़ी को गुरु रूप में ग्रहण कर लिया।

योगिराज के बारे में उनके शिष्यों का दृढ़ विश्वास है कि वे अगले किसी जन्म में महात्मा कबीर के रूप में अवतरित हुए थे। यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष या लिखित प्रमाण नहीं है। योगिराज ने कभी अपने श्रीमुख से ऐसा विचार प्रकट भी नहीं किया। यह ठीक है कि वे भक्तों और शिष्यों को उपदेश देते समय शास्त्र, उपनिषद्, गीता, भागवत के बाद कबीर के दोहों का उद्धरण देते थे। लगता था जैसे कबीर-साहित्य वे कंठस्थ कर चुके हैं। उनकी और कबीर की साधना में कोई अन्तर नहीं था।

योगिराज के पौत्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है—''जो कबीरा सोई सूर्य, सोई ब्रह्म, सोई हम।'' दूसरी जगह योगिराज ने लिखा है—''काया के वीर कबीर यानी श्वासा।'' तीसरी जगह लिखते हैं—''सत्य युग में कबीर साहब का नाम सत्य सुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय, कलियुग में कबीर।''

इन प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर साहब के बारे में इतना तथ्य देना कुछ मतलब रखता है। अगर जनश्रुति को सही मान लिया जाय तो कोई भूल न होगी। इनकार करने पर प्रश्न उठता है कि कबीर के इतने जन्मों की चर्चा करने का क्या तात्पर्य है? ज्ञातव्य है कि योगिराज अपनी डायरी मातृभाषा बँगला में न लिखकर हिन्दी में लिखते थे।

यहाँ एक बात की चर्चा करना आवश्यक है। योगिराज जात-पात नहीं मानते थे। वे दीक्षा न केवल हिन्दुओं को बल्कि सभी वर्गों के लोगों को देते थे। उनका एक शिष्य अब्दुल गफूर खाँ था।

कट्टर ब्राह्मण होते हुए भी लाहिड़ी महाशय जाति-प्रथा के अहम् को स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि सभी एक ही ईश्वर के बेटे हैं। लोगों को उपदेश देते हुए कहा करते थे—''तुम किसी के नहीं हो और न कोई तुम्हारा है। एक दिन यह सब छोड़कर इस संसार से विदा लेनी है, इसलिए उस परमात्मा को याद करो जिसके पास जाना है। हिन्दुओं को चाहिए कि वे दिन में कई बार ध्यान करें। मुसलमानों को चाहिए कि वे पाँच बार नमाज पढ़ें और ईसाइयों को चाहिए कि वे कई बार ईश-प्रार्थना तथा बाइबिल पाठ करें।''

जो लोग योगिराज के स्वभाव से परिचित थे, उन्हें यह बात अच्छी तरह से मालूम थी कि लाहिड़ी महाशय जाति-पाँति, छोटा-बड़ा आदि कुछ नहीं मानते थे। इलाहाबाद में अचानक एक घटना होने के कारण वे उसी दिन से समदर्शी हो गये थे।

कहा जाता है कि लाहिड़ी महाशय इलाहाबाद में होने वाले कुंभ मेले में गये हुए थे। वहाँ वे साधु-संन्यासियों के बीच घूम रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि एक ऐसे जटाजूटधारी बाबाजी पर पड़ी जिनके सामने उनके गुरुदेव वीर आसन लगा कर बैठे थे और श्रद्धापूर्वक उनके पैर धो रहे थे।

यह दृश्य देखकर लाहिड़ी महाशय ने पूछा—''गुरुदेव, आप और इनकी सेवा में?''

लाहिड़ी महाशय की ओर बिना देखे गुरुदेव ने कहा—''इस समय मैं इन महात्मा के चरण धो रहा हूँ। इसके बाद इनके बरतनों को साफ करूँगा।''

लाहिड़ी महाशय को समझते देर नहीं लगी कि इस उदाहरण को प्रस्तुत करते हुए गुरुदेव मुझे शिक्षा दे रहे हैं। भविष्य में ऊँच-नीच में भेद न करूँ। प्रत्येक मानव के तन में ईश्वर का निवास होता है, इसे मानकर चलूँ।

गुरुदेव ने उस दिन कहा था—''मैं ज्ञानी-अज्ञानी साधुओं की सेवा कर नम्रता सीख रहा हूँ।''

इस घटना के बाद से लाहिड़ी महाशय के स्वभाव में परिवर्तन हो गया। उन्हें योग

वासिष्ठ में लिखित वह कथन स्मरण हो आया जिसमें कहा गया है—"यह आनन्द-रूपिणी आत्मा शरीर, मन, इन्द्रियादि से भिन्न है, इसलिए शरीर को प्रभावित करने वाले सुख-दु:ख आत्मा का स्पर्श नहीं कर सकते। किन्तु जब यह आनन्दरूपिणी आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूल कर शरीर के विकारों के साथ तादात्म्य का सम्बन्ध जोड़ने लगती है तब वह अपने सर्वात्म भाव को विस्मृत कर देती है। यही अज्ञान का गर्त है। यही जगत् की मरीचिका है। इसी मरीचिका के कारण मनुष्य सुख के वास्तविक रूप को भुला बैठता है और दु:ख एवं संताप के शूलपथ पर चलने लगता है। जिन गन्तव्यों को वह सुख के छोर समझता है, वे वास्तव में दु:ख और बन्धन के मायाजाल होते हैं, किन्तु जिस मनुष्य को ऐसा ज्ञान हो जाता है कि सब जीवों के हृदय में स्थित, सब सुखों का समुद्र एवं स्वयं ज्योति परमात्मा मेरे स्वरूप से भिन्न नहीं है, किन्तु मैं स्वयं परमात्मा स्वरूप हूँ तो वह मनुष्य भ्रांत-सुख की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार वह शरीर के स्वाभाविक धर्म सुख-दु:खादि विकारों से संतप्त नहीं होता। यह अनुभूति आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति है।

कभी-कभी इसी अनुभूति का उदाहरण योगिराज शिष्यों के सामने दिखा देते थे।

* * *

योगिराज का भवन श्रद्धालुओं के लिए तीर्थस्थल था । हर वर्ग के लोग वहाँ उनके श्रीमुख से गीता की व्याख्या सुनने के लिए आते थे। इन भक्तों में राम प्रसाद जायसवाल भी थे। कलवार होने के कारण लोग उन्हें अछूत समझते थे। योगिराज के यहाँ आने वाले ब्राह्मणों को यह पसंद नहीं था कि एक कलवार उनके निकट बैठे। एक दिन एक पंडित ने घृणा के साथ कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती? कलवार होकर तुम किनारे बैठना दूर रहा, हमारे सिर पर चढ़ जाते हो। चलो, हटो, किनारे बैठो।"

योगिराज ने इस कटु वचन को सुना। कुछ देर बाद वे आसन से उठ कर खड़े हो गये और राम प्रसाद की ओर हाथ से इशारा करते हुए बोले—"राम प्रसाद, तुम मेरे इस आसन पर आकर बैठो।"

इतना कहकर लाहिड़ी महाशय दूसरी ओर बैठ गये। राम प्रसाद मन ही मन कुंठाग्रस्त हो गया। एक तो पंडित ने फटकारा और अब योगिराज यह मजाक कर रहे हैं। शायद मुझसे गलती हो गयी। राम प्रसाद को ऊहापोह करते देख योगिराज ने कहा—"मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। आओ बैठो यहाँ।"

राम प्रसाद भय से सिहर उठा। योगिराज के सामने हाथ जोड़ते हुए उसने कहा—"महाराज, ऐसी आज्ञा मत दीजिए। मुझसे यह अपराध नहीं होगा।"

राम प्रसाद को फटकारने वाले सज्जन काशिमपुर के जमींदार राय बहादुर गिरीश प्रसन्न थे। उन्हें तुरन्त अपनी गलती मालूम हो गयी। उन्होंने अपनी जगह से उठकर पहले योगिराज और बाद में राम प्रसाद से क्षमा माँगी। इसके बाद उन्हें अपनी बगल में बैठाया।

* * *

स्वामी युक्तेश्वर और राम घनिष्ठ मित्र ही नहीं, बल्कि गुरुभाई भी थे। योगिराज के दोनों प्रिय शिष्य थे। एक बार राम हैजे से पीड़ित हुआ। दवा आदि देने पर भी लाभ नहीं हो रहा था। युक्तेश्वर बराबर अपने मित्र की सेवा में लगे रहे। हालत जब काफी खराब हो गयी तब ये व्याकुल होकर अपने गुरुदेव के निकट आये।

सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—''डॉक्टर जब उसकी चिकित्सा कर रहा है तब वह अच्छा हो जायगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं। जाओ, उसकी देखरेख करो।''

इस आश्वासन को पाकर युक्तेश्वर वापस आकर राम की सेवा करने लगे। डॉक्टरों ने अंत में कहा—''अब राम को मैं बचा नहीं सकता। अधिक से अधिक दो घंटे तक यह जीवित रहेगा।''

डॉक्टर के इस निर्णय को सुनकर युक्तेश्वर व्याकुल हो उठे। पुनः गुरुदेव के पास दौड़े हुए आये। इस बार भी गुरुदेव ने पहले की तरह आश्वासन देते हुए कहा—''नहीं युक्तेश्वर, राम अच्छा हो जायगा।''

वापस आकर युक्तेश्वर ने देखा—''राम की स्थिति पहले से अधिक खराब है। दोनों डॉक्टरों का पता नहीं था। एकाएक राम झटके से उठा और कहा—''युक्तेश्वर मैं जा रहा हूँ। तुम गुरुदेव से कह दो कि वे मेरे शरीर को अपना आशीर्वाद अवश्य दें।''

इतना कहने के बाद राम बिस्तर पर धड़ाम से गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। युक्तेश्वर फफककर रोने लगा। काफी देर बाद एक अन्य गुरु भाई जब आया तब शव के पास उसे बैठाकर यह समाचार देने के लिए युक्तेश्वर लाहिड़ी महाशय के पास गया।

सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव समाधि में लीन हो गये। तीसरे पहर का समय था। शाम गुजरी, रात बीती, पर गुरुदेव की समाधि भंग नहीं हुई। भोर के समय उनकी आँखें खुलीं।

उन्होंने कहा—''सामने के दीपक से थोड़ा सा तेल शीशी में भर लो। इसे ले जाकर राम के मुँह में एक-एक करके सात बूँद डाल देना।''

''गुरु जी, वह तो कल दोपहर को ही मर गया। अब इस तेल से क्या होगा?''

''मैं जो कह रहा हूँ, वही करो। चिन्ता की कोई बात नहीं है।''

लाचारी में गुरुदेव की आज्ञानुसार युक्तेश्वर तेल लेकर आये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा—राम का शरीर सख्त हो गया है। मित्र की सहायता से राम का मुँह खोलकर वे एक-एक बूँद करके तेल डालने लगे। सातवीं बूँद राम के मुँह में ज्यों ही गयी त्यों ही उसके शरीर में कंपन शुरू हुआ और धीरे-धीरे वह उठकर बैठ गया।

राम ने कहा—''मैंने एक प्रकाश के भीतर गुरुदेव को देखा। उन्होंने कहा कि राम, निद्रा त्याग कर अब उठ बैठो। युक्तेश्वर के साथ अविलम्ब मेरे पास आओ।''

तुरन्त तीनों शिष्य गुरुदेव के पास आये। इन्हें आया देख गुरुदेव प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, मैंने तुमसे दो बार कहा था कि चिंता की बात नहीं है, राम अच्छा हो जायगा। लेकिन तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। मैं डॉक्टरी कार्य में

हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। आशा है, अब आगे से अपने पास रेड़ी का तेल रखोगे। किसी भी मृत व्यक्ति के मुँह में डालोगे तो वह यम की शक्ति को बेकार कर देगा।''

युक्तेश्वर और उसके साथ आये दोनों शिष्यों ने गुरु के चरणों में मस्तक नवाये। युक्तेश्वर ने कहा—''गुरुजी, अपराध के लिए क्षमा करें। मैं अबोध रहा, आपकी बातों का मर्म नहीं समझ सका।''

*   *   *

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी अपने पूज्य गुरु को 'बाबाजी' कहा करते थे। वे इस युग के सिद्ध पुरुष हैं। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के गुरु महातपाजी आज भी तिब्बत स्थित किसी अलक्ष्य मठ में (ज्ञानगंज) रहते हैं, उसी प्रकार लाहिड़ी महाशय के गुरुदेव बदरीनारायण मन्दिर के आगे कहीं विराजमान हैं। उनके प्रशिष्य परमहंस योगानन्द ने उनके बारे में लिखा है—''बाबाजी के बारे में ऐसी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है जो इतिहासकारों को बहुत प्रिय होती है। सामान्यत: वे हिन्दी में भाषण करते हैं, परन्तु वे सब भाषाओं का सरलता से प्रयोग कर लेते हैं। उन्होंने अपने लिए 'बाबाजी' का सीधा-सादा नाम ग्रहण किया है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य उन्हें श्रद्धा के साथ महामुनि बाबाजी, महाराज, महायोगी, त्र्यंबक बाबा और शिव बाबा जैसे सम्मानजनक विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।''

इस अमर महागुरु के शरीर पर आयु का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वे अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष के युवक दिखाई पड़ते हैं। गेहुआँ रंग, मध्यमा-कृतिवाले बाबाजी की सुन्दर और बलिष्ठ देह से मानो सतत् ज्योति फूटती रहती है। नेत्र काले, शान्त और दयार्द्र हैं। उनके लम्बे चमकीले केश ताम्रवर्ण के हैं। कभी-कभी उनकी आकृति लाहिड़ी महाशयजी से मिलती-जुलती सी दिखाई पड़ती है।

बाबाजी के बारे में लाहिड़ी महाशय ने अपने एक शिष्य को बताया था कि जगद्‌गुरु शंकराचार्य तथा कबीर को मैंने योग-दीक्षा दी है। १९वीं शताब्दी में उन्हें दीक्षा मिली है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य केवलानन्द ने एक घटना का जिक्र स्वामी योगानन्दजी से किया था जिसके वे प्रत्यक्षदर्शी थे।

एक रात कुछ शिष्य एक अग्निकुण्ड के पास बैठे थे। कुण्ड से जलती हुई एक लकड़ी उठाकर बाबाजी ने पास बैठे एक शिष्य पर प्रहार किया।

शिष्य चीख उठा। यह देखकर केवलानन्द ने कहा—''गुरुजी यह तो निष्ठुरता है।''

बाबाजी ने कहा—''पिछले कर्मफल की आग में यह तुम्हारे सामने भस्म हो जाय, क्या यह उचित होगा?''

इतना कहने के बाद उन्होंने शिष्य के जले हुए स्थान पर हाथ रखा। जब उन्होंने वहाँ से हाथ हटाया तब देखा गया कि वहाँ घाव के निशान नहीं थे।

इसी प्रकार एक दिन एक व्यक्ति आया और बाबाजी से कहा—''गुरुदेव, आपकी

तलाश में इन पहाड़ियों पर मैं महीनों से परेशान था। आज आपके पास एक प्रार्थना लेकर आया हूँ। आप मुझे शिष्य के रूप में ग्रहण करें।''

बाबाजी ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर वह व्यक्ति उतावला हो उठा। उसने कहा—''अगर आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे तो इस पहाड़ पर से कूदकर अपनी जान दे दूँगा।''

बाबाजी ने कहा—''कूद पड़ो। मैं तुम्हें विकास की इस अवस्था में ग्रहण नहीं कर सकता।

बाबाजी की बात सुनते ही वह व्यक्ति छलाँग लगाकर नीचे कूद पड़ा। वस्तुत: यह आज्ञा-पालन की कठिन परीक्षा थी। वह अपनी परीक्षा में सफल रहा। बाद में बाबाजी ने अपने शिष्यों से कहा कि उसके शव को उठा लाओ।

कई शिष्य नीचे जाकर उसके शव उठा लाये। बाबाजी ने उसके सिर पर हाथ रखा। सभी लोगों ने चकित दृष्टि से देखा कि वह व्यक्ति जीवित हो गया और उसने गुरुदेव को प्रणाम किया। उस वक्त उनके शिष्यों में केवलानन्द ही नहीं, बल्कि लाहिड़ी महाशय भी प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उपस्थित थे।

बाबाजी ने प्रसन्न होकर कहा—''तुम कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हो। अब तुम शिष्य बनने के अधिकारी हो। मृत्यु अब तुम्हें स्पर्श नहीं करेगी।''

* * *

लाहिड़ी महाशय अपने महान् गुरु के बारे में कहा करते थे कि वे अवतारी पुरुष हैं। बाबाजी ईसा मसीह के साथ सम्पर्क बनाये रखते हैं। जब कोई व्यक्ति श्रद्धा के साथ बाबाजी के नाम का उच्चारण करता है तब उस पर तत्क्षण आध्यात्मिक आशीर्वाद की वर्षा होती है।

यहाँ तक कि लाहिड़ी महाशय के शिष्यों ने बाबाजी को स्थूल शरीर में देखा है। लाहिड़ी महाशय के प्रिय शिष्य युक्तेश्वर ने एक बार नहीं, कई बार देखा है।

ईश्वर की प्रेरणा से युक्तेश्वरजी प्रयाग के कुंभ मेले में स्नान करने के लिए गये थे। चारों ओर साधु-संतों की अपार भीड़ थी। अधिकांश साधुओं को मेले में खप्पर लिए भीख माँगते देख युक्तेश्वर के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यहाँ तो भीख माँगने वाले संत अधिक हैं। परमार्थ की तलाश करने वाला कोई नहीं। क्या कुंभ मेला भिखारियों का है?

तभी उनके पास एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर कहा—''महाराज, आपको एक संत बुला रहे हैं। कृपया मेरे साथ आइये।''

युक्तेश्वरजी को आश्चर्य हुआ कि इस अनजाने शहर में उनका कौन परिचित निकला? उन्होंने आगन्तुक से पूछा—''कौन हैं वे?''

आगन्तुक ने कहा—''सामने वृक्ष के नीचे वे विराजमान हैं।''

कुतूहलवश युक्तेश्वरजी वहाँ आये तो देखा कि एक संत कुछ लोगों से घिरे बैठे हैं। युक्तेश्वरजी को देखते ही वे उठकर खड़े हो गये और उन्हें अपने आलिंगन में बाँध लिया। युक्तेश्वर को लगा जैसे कोई अपूर्व-शक्ति उनके शरीर को स्पर्श कर रही है। स्वर्गीय आनन्द से उनका मन तृप्त हो उठा।

संत ने कहा—''यहाँ बैठिये स्वामीजी।''

युक्तेश्वरजी ने कहा—''मैं स्वामी नहीं हूँ।''

उस समय तक युक्तेश्वरजी ने संन्यास ग्रहण नहीं किया था। केवल लाहिड़ी महाशय से क्रिया-योग की शिक्षा प्राप्त कर चुके थे।

संत ने कहा—''मैं जिस व्यक्ति को स्वामी की उपाधि देता हूँ, उसे वह ग्रहण कर लेता है। आप यहाँ विराजमान होइये।''

युक्तेश्वरजी के बैठने के बाद संत समागत लोगों के सामने गीता की व्याख्या करते हुए अचानक पूछ बैठे—''आप तो गीता पर टीका लिख रहे हैं?''

युक्तेश्वरजी इस बात को सुनकर चौंक उठे। वे एक अर्से से गीता पर भाष्य लिख रहे थे, पर इसकी चर्चा अब तक किसी से नहीं की थी। आखिर इस संत ने कैसे जान लिया? तभी संत ने कहा—''आप काशी के श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को जानते होंगे। उन्हें मेरा एक संदेश जाकर दीजिएगा। कहियेगा—''अब समय कम रह गया है। शक्ति समाप्त हो रही है।''

युक्तेश्वरजी चकित दृष्टि से संत की ओर देखते रहे। चलते समय संत ने कहा—''मैं आपसे पुन: मिलूँगा। आप यथाशीघ्र पुस्तक लिख डालिये।''

प्रयाग से काशी आकर युक्तेश्वरजी ने अपनी यात्रा का विवरण लाहिड़ी महाशय को दिया। संत से मुलाकात की चर्चा करते ही लाहिड़ी महाशय प्रसन्नता से गद्‌गद हो उठे।

उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, तुम बड़े भाग्यवान् पुरुष हो। तुमने मेरे गुरुदेव का दर्शन कर लिया।''

अपने गुरु की बातें सुनकर युक्तेश्वरजी हक्का-बक्का रह गये। उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि इस प्रकार वे उस महान् गुरु से मिलेंगे जिनके दर्शन के लिए न जाने कितने साधक तरसते हैं। इस वक्त युक्तेश्वरजी अपने को धिक्कारने लगे कि क्यों नहीं उन चरणों पर मैंने अपना माथा टेका।

युक्तेश्वरजी की व्याकुलता देखकर लाहिड़ी महाशय ने कहा—''व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है। जब गुरुदेव ने पुन: दर्शन देने का वचन दिया है तब वे अवश्य तुम्हें दर्शन देंगे। तुम अपना लेखन-कार्य संपूर्ण कर डालो।''

युक्तेश्वरजी ने अपना आश्रम बंगाल के श्रीरामपुर कस्बे में बनाया था। लेखन-कार्य समाप्त हो गया था। एक दिन वे गंगा-स्नान करके वापस आ रहे थे तो मार्ग में एक वृक्ष के नीचे कई लोगों के साथ परम गुरु को बैठे देखा। इस बार उनसे भूल नहीं हुई। तुरन्त साष्टांग प्रणाम करते हुए निवेदन किया—''जब आप यहाँ तक आ गये

हैं तब एक बार मेरी कुटिया में चरण-रज देकर उसे पवित्र बनाने की कृपा करें।''

बाबाजी ने इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। यह देखकर युक्तेश्वरजी ने कहा—''तब आप यहाँ कुछ देर कृपा करके ठहर जाइये। मैं अपने दादा-गुरु को भोग देने का पुण्य प्राप्त कर लूँ।''

यह कहकर युक्तेश्वरजी तेजी से मिष्ठान्न खरीदने चले गये। वापस आकर उन्होंने देखा कि गुरुदेव गायब थे। क्षोभ से उनका मन भर गया। उनका यह क्षोभ काशी में प्रकट हुआ।

अपने गुरुदेव से मिलने के लिए युक्तेश्वरजी जब उनके स्थान पर गये तब ज्योंही लाहिड़ी महाशय को उन्होंने प्रणाम किया त्योंही उन्होंने कहा—''दरवाजे पर पूज्य बाबाजी से मुलाकात हो गयी न?''

युक्तेश्वर ने अनजाने भाव से कहा—''नहीं तो।''

लाहिड़ी महाशय ने कहा—''वह देखो, वे खड़े तो हैं।''

युक्तेश्वरजी ने चौंककर दरवाजे की ओर देखा—वहाँ परम पूज्य बाबाजी खड़े मुस्करा रहे थे। उनके अंग-प्रत्यंग से दिव्य आभा प्रकट हो रही थी। युक्तेश्वर को प्रणाम न करते देख लाहिड़ी महाशय विचलित हो उठे। उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, यह क्या गुरुदेव को तुमने अभी तक प्रणाम नहीं किया?''

तभी बाबाजी ने कहा—''युक्तेश्वर अभी तक मुझसे नाराज है। बेटा, उस समय तुम बहुत चंचल हो उठे थे। तुम्हारी चंचलता की आँधी में मैं उड़ गया। उस वक्त मैं सूर्य के पीछे था, तुम देख नहीं पाये। अभी तुममें अभाव है। आगे से ध्यान में अधिक समय लगाया करना।''

इतना कहने के साथ ही बाबाजी अदृश्य हो गये। इसी प्रकार एक बार लाहिड़ी महाशय के एक अन्य शिष्य राम गोपाल मजुमदार को गुरु के दिव्य दर्शन हुए थे। लाहिड़ी महाशय से उन्होंने कई बार निवेदन किया, पर हर बार यही उत्तर मिलता था—''मौका आने पर हो जाएगा।''

एक बार वे लाहिड़ी महाशय से मिलने के लिए काशी आये। घर पर शिष्यों और भक्तों से घिरे लाहिड़ी बैठे थे। शाम ढल चुकी थी। रात्रि का दूसरा पहर प्रारम्भ हो गया था। ठीक इसी समय लाहिड़ी महाशय ने राम गोपाल से कहा—''राम गोपाल, तुम तुरन्त दशाश्वमेध घाट पर चले जाओ और वहीं बैठे रहो।''

गुरु की आज्ञा पाते ही राम गोपाल में यह पूछने का साहस नहीं हुआ कि आखिर इस समय वहाँ क्यों भेज रहे हैं। जरूर कोई विशेष कारण होगा। वे घाट पर आकर बैठ गये। कुछ देर बाद सीढ़ियों में से पत्थर का एक ढोंका हवा में उठा और शून्य में टिक गया। पत्थर का वह टुकड़ा जहाँ से निकला था, वहाँ एक गुफा दिखाई देने लगी। उस गुफा से एक परम सुन्दरी महिला निकली।

बाहर आकर महिला बोली—''मैं माता जी हूँ। लोग मुझे इसी नाम से पुकारते

हैं। मैं लाहिड़ी महाशय के गुरु बाबाजी की बहन हूँ। आज एक विशेष कारण से वे यहाँ आने वाले हैं।''

थोड़ी ही देर में आकाश में एक प्रकाश दिखाई पड़ा। जब वह प्रकाश पास आया तब उसमें से लाहिड़ी महाशय प्रकट हुए। ठीक इसी प्रकार की एक ज्योति सुदूर आकाश से आयी जिसमें से बाबा जी प्रकट हुए। इस अद्‌भुत घटना को देखकर राम गोपाल दंग रह गये। बाबाजी और लाहिड़ी महाशय की आकृति में साम्य था। केवल बाबाजी के सिर के बाल लम्बे और चमकीले थे। उनके आते ही लाहिड़ी महाशय, माता जी तथा मजुमदार ने जमीन से माथा टेककर प्रणाम किया।

बाबाजी ने कहा—''कल्याणमयी बहन, अब मैं अपने भौतिक शरीर का त्याग करना चाहता हूँ।''

माता जी ने कहा—''मैं आपकी इच्छा का आभास पा चुकी हूँ, इसीलिए आज विचार-विमर्श के लिए आपका आह्वान किया है। मेरा अनुरोध है कि आप देह त्याग न करें।''

इस विषय पर काफी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में बाबाजी ने कहा—''तथास्तु। मैं कभी भी अपने भौतिक शरीर का परित्याग नहीं करूँगा।''

इसके बाद दोनों व्यक्तियों का शरीर शून्य में उठकर विलीन हो गया। लाहिड़ी महाशय के घर आने पर मजुमदार जी को ज्ञात हुआ कि उनके दशाश्वमेध घाट पर चले जाने के बाद लाहिड़ी महाशय अमरत्व पर भाषण देते रहे। अपने स्थान से हिले तक नहीं थे।

जब राम गोपाल ने उन्हें प्रणाम किया तब लाहिड़ी महाशय ने कहा—''तुमने कई बार कहा था कि बाबाजी का दर्शन करना चाहते थे। बड़े आश्चर्यजनक ढंग से तुम्हारी आकांक्षा की पूर्ति हो गयी।''

* * *

श्री अविनाश बाबू उन दिनों बंगाल-नागपुर रेलवे ऑफिस में क्लर्क थे। पता नहीं क्यों उनका मन एकाएक अपने गुरुदेव को देखने के लिए चंचल हो उठा। उन्होंने अपने वरिष्ठ अधिकारी भगवतीचरण घोष[1] को एक सप्ताह की छुट्टी के लिए आवेदनपत्र भेजा।

भगवती बाबू ने आपको बुलाकर पूछा—''क्या काम है? किसलिए यह आवेदन-पत्र भेजा है?''

---

१. श्री भगवतीचरण घोष के छोटे पुत्र श्री मुकुन्दलाल घोष थे जिन्हें भगवत् प्रेरणा से बचपन से ही अलौकिक प्रतिभा प्राप्त थी। आगे चलकर आपने संन्यास लेकर परमहंस योगानन्द नाम ग्रहण किया था। आपके गुरु लाहिड़ी महाशय के शिष्य श्री युक्तेश्वर थे। बाबा जी का दर्शन आपको हुआ था और उन्हीं के आशीर्वाद से आप अमेरिका गये। वहाँ अनेक विदेशियों को क्रिया-योग की शिक्षा देते रहे। 'योगी कथामृत' आपकी प्रमुख कृति है।

"अपने गुरु श्यामाचरण लाहिड़ी का दर्शन करना चाहता हूँ। न जाने क्यों मेरा मन चंचल हो उठा है।"

"अविनाश बाबू, यह सब पागलपन बन्द कीजिए। धर्म-गुरु से बड़ा कर्म है जिससे दाल-रोटी प्राप्त कर रहे हैं। अगर आप जीवन में उन्नति करना चाहते हैं तो यह सब पचड़ा छोड़ कर काम में मन लगाइये।"

बड़े साहब के इस उत्तर से अविनाश बाबू उदास हो गये। वे समझ गये कि अब पुनः अनुरोध करना बेकार है। शाम को ऑफिस से छुट्टी मिलने पर वे मन ही मन गुरु का स्मरण करते हुए घर की ओर बढ़ने लगे। इस गुलामी के प्रति उन्हें सख्त नफरत-सी होने लगी। मन में जो आकांक्षा उत्पन्न हुई थी, वह पूरी न हो सकी।

सहसा मार्ग में भगवती बाबू से मुलाकात हो गयी। इनके उदास चेहरे को देखकर वे सांसारिक बातें समझाने लगे ताकि उनके मन का क्षोभ दूर हो जाय। लेकिन उनकी बातों का प्रभाव अविनाश बाबू पर न पड़ा। इस वक्त उन्हें अपने गुरुदेव की याद तेजी से सताने लगी।

दोनों ही व्यक्ति चलते-चलते खुले मैदान में आये। एकाएक कुछ दूरी पर न जाने कैसे तीव्र प्रकाश हुआ और उसमें से लाहिड़ी महाशय प्रकट हुए।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—"भगवती, तुम अपने कर्मचारी के प्रति कठोर हो।"

इधर लाहिड़ी महाशय को देखते ही अविनाश बाबू नतजानु होकर 'गुरुदेव-गुरुदेव' कहते हुए प्रणाम करने लगे। इस दृश्य को देखकर भगवती बाबू की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी।

कुछ देर बाद वह प्रकाश शून्य में उड़कर गायब हो गया। यह दृश्य देखकर भगवती बाबू ने कहा—"अविनाश, मैं केवल तुम्हें ही नहीं, बल्कि मैं स्वयं भी छुट्टी ले रहा हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं था कि तुम्हारे गुरु इस तरह प्रकट हो सकते हैं। कल ही मैं अपनी पत्नी के साथ वाराणसी जाऊँगा। क्या तुम अपने गुरु से दीक्षा दिलाने की कृपा करोगे?"

अविनाश बाबू के साथ भगवती बाबू सपत्नीक काशी आये। गुरुदेव के पास पहुँचकर ज्यों ही भगवती बाबू ने प्रणाम किया त्यों ही योगिराज बोल उठे—"भगवती, तुम अपने कर्मचारी के प्रति अत्यन्त कठोर हो।"

ठीक यही बात भगवती बाबू उस सुनसान मैदान में प्रकाश के भीतर से प्रकट होनेवाले योगिराज से सुन चुके थे। योगिराज की कृपा से प्रभावित होकर भगवती बाबू सपत्नीक उनके शिष्य बन गये।

पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक भक्तिमती होती हैं। भगवती बाबू की पत्नी श्रीमती ज्ञानप्रभा तो लाहिड़ी महाशय को साक्षात् ईश्वर मानती थीं। अपने घर में नित्य पूजा करती थीं। जब कभी मन में कोई इच्छा उत्पन्न होती, गुरुदेव की कृपा से उसकी पूर्ति हो जाती थी।

दुर्भाग्य से उनका कनिष्ठ पुत्र श्री मुकुन्दलाल घोष हैजे से पीड़ित हो गया। हालत शोचनीय हो गयी। डॉक्टर भी परेशान हो उठे। लड़का बिछौने से उठ नहीं पाता था। स्वयं भगवती बाबू भी निराश हो गये। यह सब देखकर ज्ञानप्रभा देवी लड़के के पास आयीं और लड़के को सामने का चित्र दिखाती हुई बोलीं—''बेटा, तुम चित्र को प्रणाम करो।''

मुकुन्द ने हाथ उठाना चाहा, पर वह इतना कमजोर हो गया था कि हाथ उठा नहीं सका। यह देखकर माँ ने पुनः कहा—''कोई हर्ज नहीं बेटा। तुम मन ही मन भक्ति भाव से गुरुदेव को प्रणाम करो। मेरा मन कहता है कि तुम जरूर अच्छे हो जाओगे। तुम्हें भगवान् भी मुझसे नहीं छीन सकते।''

माँ की आज्ञानुसार मुकुन्द ने मन ही मन लाहिड़ी महाशय के चित्र को प्रणाम किया। ज्ञानप्रभा देवी स्वयं चित्र के सामने बैठकर गुरुदेव को स्मरण करने लगीं। दूसरे दिन से लड़का स्वस्थ होने लगा। आगे चलकर यही बालक 'परमहंस योगानंद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिन्होंने माउंट वाशिंगटन, लास एंजिलिस, कैलिफोर्निया तथा भारत में राँची-पुरी में आश्रमों की स्थापना की।

* * *

योगिराज दीक्षा देने पर पाँच रुपये दक्षिणा लेते थे। विधवाओं से प्रायश्चित्त के लिए दस रुपये लेते थे। उनके शिष्यों में उनकी पत्नी काशीमणि देवी, पुत्रद्वय तीन कौड़ी एवं दुकौड़ी लाहिड़ी थे। बाहरी लोगों में पंचानन भट्टाचार्य, केशवानन्द, केवलानन्द, विशुद्धानन्द सरस्वती, काशीनाथ शास्त्री, नगेन्द्र भादुड़ी, प्रसाद गोस्वामी, राम गोपाल मजुमदार, हरिनारायण पालधी, कैलासचन्द्र वंद्योपाध्याय, रामदयाल मजुमदार, महेन्द्र सान्याल, नेपाल नरेश, काशी नरेश, वर्धमान के महाराजा, काश्मीर नरेश, काला कृष्ण ठाकुर, गुरुदास बनर्जी आदि प्रमुख थे।

इनके अलावा कुछ उच्चकोटि के संत भी लाहिड़ी महाशय से क्रिया-योग की शिक्षा ले चुके थे जिनमें सर्वश्री भास्करानन्द सरस्वती, बालानन्द ब्रह्मचारी और साईं बाबा के नाम उल्लेखनीय हैं।

साईं बाबा के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे काशी कभी आये थे और लाहिड़ी महाशय से दीक्षा ली थी। शिरडी के साईं बाबा का समय १८५० से १९१८ ई० तक माना गया है। योगिराज की डायरी से उद्धरण देते हुए उनके पौत्र श्री सत्यचरण ने लिखा है कि नानकपंथी साईं बाबा को योगिराज ने क्रिया-योग की दीक्षा दी थी।

काशी नरेश अक्सर भास्करानन्द स्वामी तथा तैलंग स्वामी का दर्शन करने जाते थे। इनकी जबानी योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की प्रशंसा सुनकर भास्करानन्दजी में उत्सुकता उत्पन्न हुई। उन्होंने काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह से अनुरोध किया कि योगिराजजी को किसी दिन अपने साथ ले आयें। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ थे, इसलिए उनके यहाँ भास्करानन्दजी जा नहीं सकते थे। महाराजा अपनी गाड़ी से योगिराजजी को

भास्करानन्दजी के पास ले गये थे। वहाँ उन्होंने लाहिड़ी महाशय से साधना-क्रिया के बारे में विस्तार से बातें कीं।

लाहिड़ी महाशय अपने शिष्यों को क्रिया-योग की शिक्षा देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि कौन कितनी पात्रता रखता है। इसकी शिक्षा वे कई चरणों में देते थे। प्रथम चरण की प्रक्रिया बताने के बाद वे इस बात पर गौर करते थे कि उनके बताये मार्ग पर प्रशिक्षु ने कितनी प्रगति की है। इसके बाद आगे का चरण बताते थे। सामान्य लोग प्रथम चरण के आगे नहीं बढ़ पाते थे।

क्रिया-योग के बारे में स्वामी योगानन्द लिखते हैं—''क्रिया-योग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव-रक्त कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है। इस अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन-प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरुदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं। अशुद्ध और नीले रक्त-संचय को रोक कर योगी तंतुओं के अपक्षय को कम कर देने या रोक देने में समर्थ होता है। प्रगत योगी अपने कोशाणुओं को जीवन-शक्ति में रूपान्तरित कर सकता है। क्रिया-योग एक सुप्राचीन विज्ञान है। लाहिड़ी महाशय ने इसे अपने महान् गुरु बाबाजी से प्राप्त किया था। बाबाजी ने ही युगों-युगों की विस्मृति के अतल गह्वर से 'क्रियायोग' का पुनरुद्धार किया और इसकी प्रविधि को परिष्कृत किया। बाबाजी ने इसको 'क्रियायोग' का सरल नाम दिया।''

बाबाजी ने लाहिड़ी महाशय से कहा था—''इस १९वीं शताब्दी में जिस क्रियायोग को मैं तुम्हारे द्वारा विश्व को दे रहा हूँ, वह उसी विज्ञान का पुनरुज्जीवन है जिसे सहस्राब्दियों पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रदान किया था। बाद में जिसका ज्ञान पतंजलि, ईसा मसीह, सेण्ट जान, सेण्ट पाल आदि उनके अनेक शिष्यों को प्राप्त हुआ था।''

योग के श्रेष्ठतम शास्त्रकार प्राचीन ऋषि पतंजलि ने दो बार क्रियायोग का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है—''शरीर-साधना, मनोनिग्रह और 'ॐ' का ध्यान क्रियायोग है। ध्यान में सुनाई पड़ने वाली 'विश्वध्वनि—ॐ' ईश्वर की वाचक है। ॐ सृष्टिकर्ता शब्दब्रह्म है। वह स्पन्दनशील सृष्टियंत्र का गुंजन है और ईश्वर की सत्ता का साक्षी है। यहाँ तक कि नया साधक भी अपने अंतर में ॐ की अद्भुत ध्वनि सुनता है। इस आनन्ददायक आध्यात्मिक प्रोत्साहन से साधक को विश्वास हो जाता है कि ऊर्ध्व लोकों से उसका सम्पर्क स्थापित हो रहा है।''[1]

''क्रियायोगी अपनी प्राणशक्ति को मेरुदण्ड के छः चक्रों (आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार) जो विश्व पुरुष के प्रतीक राशि चक्र की बारह राशियों

---

१. वेदों का ॐ तिब्बतियों का मंत्र 'हुँ' हो गया है। मुसलमानों का 'आमीन'; मिस्त्रियों, यूनानियों, रोमनों, यहूदियों तथा ईसाइयों का 'आमेन' हो गया है। हिब्रू में इसका अर्थ है—ध्रुव, निश्चित, विश्वस्त।

के समान हैं, में मानसिक-शक्ति द्वारा ऊपर या नीचे की ओर प्रवाहित करता है। मनुष्य के संवेदन मेरुदण्ड के चारों ओर प्राणशक्ति की आधा मिनट की परिक्रमा से मनुष्य के विकास में सूक्ष्म प्रगति होती है। साधारण गति से जो आध्यात्मिकता एक वर्ष में प्रकट होती है, वह आधे मिनट के क्रिया-अभ्यास के समान होती है।

साढ़े आठ घंटे में एक हजार बार क्रिया का अभ्यास, एक दिन में एक हजार वर्ष के स्वाभाविक विकास के समतुल्य है यानी ३ लाख ६५ हजार वर्षों का विकास एक वर्ष में। इस प्रकार क्रिया-योगी प्रज्ञापूर्वक आत्म-प्रचेष्टा द्वारा तीन वर्ष में वही परिणाम प्राप्त कर लेता है जिसे प्राकृतिक रूप से प्राप्त करने में दस लाख वर्ष लगते हैं। निश्चय ही क्रिया का संक्षिप्त मार्ग केवल अत्यन्त विकसित योगियों द्वारा ही अपनाया जा सकता है। गुरु के मार्गदर्शन में ऐसे योगियों ने सावधानीपूर्वक अपने शरीर और मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार किया है कि वे उग्र अभ्यास से उत्पन्न शक्ति को सहन कर सकें।

आत्मा को शरीर से बाँधकर रखनेवाली श्वासग्रंथि को भेदकर 'क्रिया' सुदीर्घ जीवन प्रदान करती है तथा चैतन्य को अनन्त की ओर प्रसारित करती है। योग-प्रणाली मन तथा भौतिकता के जाल में फँसी इन्द्रियों के बीच की कशमकश पर विजय प्राप्त कर लेती है और साधक को शाश्वत-राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए मुक्त कर देती है। तब वह जान जाता है कि सत्-स्वरूप न तो शारीरिक बंधन में बँधा है, न श्वास-प्रश्वास से—जो पवन की प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख नश्वर मनुष्य की विवशता का प्रतीक है। अपने शरीर और मन का स्वामी बनकर क्रियायोगी अन्त में अन्तिम शत्रु मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।''

❋ ❋ ❋

योगिराज अपने शिष्यों तथा भक्तों का बराबर ध्यान रखते थे। उनका एक भक्त श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रावलपिंडी में नौकरी करता था। आपका घर बंगाल में श्रीरामपुर कस्बे में था। कर्मस्थल से जब कभी घर जाते थे तब मार्ग में बनारस उतरकर अपने गुरु लाहिड़ी महाशय के चरणों में प्रणाम करने के बाद आगे जाते थे।

एक बार सवारी न मिलने के कारण स्टेशन से पैदल ही योगिराज के पास आये। ज्योंही बनर्जी बाबू ने उन्हें प्रणाम किया त्योंही योगिराज ने गंभीर स्वर में कहा—''यहाँ क्या करने चले आये? जाओ, घर जल्द चले जाओ।''

कुशल-मंगल पूछना दूर रहा, गुरुदेव ने प्रणाम के उत्तर में आशीर्वाद तक नहीं दिया, ऊपर में डाँटकर भगा रहे हैं। दु:ख के कारण उनकी आँखें छलछला आयीं। गला अवरुद्ध हो गया।

शिष्य की पीड़ा को समझते ही योगिराज ने स्नेह मिश्रित स्वर में कहा—''ठीक है जाओ, स्नान करके भोजन कर लो। इसके बाद तुरन्त स्टेशन चले जाना। जो गाड़ी

पहले मिले, उसी से घर चले जाना। देर मत करना।''

आखिर ऐसा आदेश क्यों दिया जा रहा है, सुरेन बाबू समझ नहीं सके। आदेश के अनुसार भोजनादि से निवृत्त होकर स्टेशन की ओर रवाना हो गये। चलते समय कारण पूछने का भी साहस नहीं हुआ। एक तो आते ही बिगड़ गये, फिर कुछ पूछने पर न जाने क्या कह बैठें।

श्रीरामपुर स्टेशन से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा कि सामने छोटा भाई खड़ा है।

इन्हें देखते ही भाई ने कहा—''भैया, बड़ी देर कर दी आने में। आपको तार भेजने के बाद से मैं प्रत्येक गाड़ी देख रहा हूँ।''

''तेरा कोई तार मुझे नहीं मिला। आखिर बात क्या है?''

''माँ की हालत काफी चिन्ताजनक है।''

धड़कते दिल से सुरेन बाबू घर पर माँ के पास आये। इन्हें देखते ही माँ प्रसन्न भाव से आगे की ओर दोनों हाथ बढ़ाते हुए बोलीं—''आ गया मेरा बेटा! मैं तेरी राह देख रही थी।''

सुरेन बाबू ने माँ को गले से लगाया और इसके साथ ही माँ के प्राणपखेरू उड़ गये। अब सुरेन बाबू की समझ में आया कि बनारस में गुरुदेव ने क्यों डाँटकर पहली गाड़ी से ही घर जाने का आदेश दिया था।

* * *

अवकाश ग्रहण करने के बाद एक ब्राह्मण काशीवास कर रहा था, दीक्षा लेने के लिए योगिराज के पास आया। ब्राह्मण महाशय नित्य गंगा-स्नान, मंदिर-दर्शन, पूजा-पाठ में समय गुजारते थे।

योगिराज ने उन्हें दीक्षा देने के बदले सलाह दी—''आप नियमित रूप से जो कर रहे हैं, वही करिये। समय आने पर दीक्षा प्राप्त होगी।''

ब्राह्मण महाशय निराश होकर वापस चले गये। इस घटना के दो दिन बाद एक बुढ़िया आयी और कहा—''मैं क्रियायोग की दीक्षा लेना चाहती हूँ।''

योगिराज ने कहा—''कल सबेरे स्नान करके आना।''

जब वह वृद्धा चली गयी तब उपस्थित भक्तों में से एक ने पूछा—''महाराज, परसों एक ब्राह्मण आया था तब आपने उसे दीक्षा नहीं दी और इस वृद्धा को क्रियायोग बताने को तैयार हो गये, क्या बात है?''

योगिराज ने कहा—''उस ब्राह्मण में धर्मभाव इसी जन्म में प्रारंभ हुआ है। अभी वह पूजा-पाठ करता रहे। यह वृद्धा पिछले जन्म में योगक्रिया की दीक्षा पाकर भी कुछ कर नहीं पाई। अब अपने कर्मफलों को भोगकर मेरे पास आयी है, इसलिए इसे योग-दीक्षा दूँगा।''

योगिराज के पास कुछ ऐसे लोग भी आते थे जो शीघ्र ही सब कुछ सीख लेना

चाहते थे और वह भी बिना साधना किये। एक शिष्य ने महसूस किया कि वह क्रियायोग के प्रथम चरण की साधना में पूर्ण रूप से सफल हो गया है। गुरुदेव आगे का चरण बताना नहीं चाहते। एक दिन वह इसी समस्या पर लाहिड़ी महाशय से विचार-विमर्श कर रहा था। ठीक उसी समय मुहल्ले में डाक वितरण करनेवाला पोस्टमैन आया।

उसे देखते ही योगिराज ने कहा—"कहो वृन्दा भगत, तुम्हारी साधना चल रही है न? आओ, मेरे पास बैठो। अब तुम्हें क्रियायोग की द्वितीय चरण की दीक्षा दूँ?"

पोस्टमैन ने दीनभाव से कहा—"नहीं गुरुजी। अब मुझे आगे की दीक्षा नहीं चाहिए। इससे ऊँची दीक्षा लेकर मैं क्या करूँगा? पहली क्रिया से ही मैं आनन्द के सागर में डुबकी लगा रहा हूँ। आजकल मेरा मन इस कार्य में नहीं लग रहा है। आज तो केवल आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ ताकि सर्वदा इसी आनन्द में मस्त रहूँ।"

लाहिड़ी महाशय ने मुस्कराते हुए कहा—"वृन्दा प्रथम चरण में ही आनन्द-सागर में तैर रहा है।"

गुरुदेव के कहने का तात्पर्य क्या है, इसे शिष्य ने समझ लिया। तुरत उनके चरणों पर माथा नवाते हुए कहा—"आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया गुरुदेव। वास्तव में मैं अज्ञान के अँधेरे में भटक रहा था। मुझे क्षमा कर दें।"

लाहिड़ी महाशय एक ओर अयोग्य पात्रों के साथ इस तरह पेश आते थे, वहीं दूसरी ओर योग्य पात्रों को अपने यहाँ क्रियायोग के माध्यम से आकर्षित कर बुला लेते थे।

* * *

बंगाल के एक साधारण गाँव में ईंटों का एक भट्ठा था। वहाँ हितलाल नामक एक सामान्य कर्मचारी रहता था। आमदनी कम, पर दरियादिल था। हमेशा दूसरों की सेवा करना, उसकी विशेषता थी। अगर उसमें कोई कमजोरी थी तो यह कि काम करते-करते न जाने कहाँ खो जाता था। उस वक्त उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। गंगा नदी किनारे जाकर चुपचाप बैठा रहता। ऐसा क्यों होता है, वह क्या सोचता है, इस बारे में कुछ बता नहीं पाता था।

एक दिन दोपहर के वक्त न जाने क्यों उसका मन भट्ठे के कार्य से उचट गया। उसके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि यहाँ से दूर कहीं चला जाय जहाँ अपना कोई न हो। परिचित व्यक्ति दिखाई न दे।

यह विचार आते ही वह स्टेशन चला आया। सम्मोहित व्यक्ति की तरह टिकटघर के सामने आकर कहा—"एक टिकट दीजिए।"

टिकट बाबू ने सोचा—कोई पागल व्यक्ति है। भला कोई इस तरह टिकट माँगता है? उसने पूछा—"कहाँ का टिकट चाहिए?"

हितलाल ने कहा—"कहीं का दे दीजिए। ये रहे पैसे। इन पैसों से जितनी दूर का टिकट मिल जाय, वहाँ तक का दे दीजिए।"

टिकट बाबू को समझते देर नहीं लगी कि यह व्यक्ति निस्सन्देह पागल है अथवा पत्नी से झगड़ा हो गया है।

उसने पैसों का हिसाब करने के बाद पूछा—''आप बनारस कभी गये हैं?''

''नहीं?''

''तब वहाँ चले जाइये। बड़ा पवित्र नगर है। वहाँ अनेक साधु-संत हैं, बाबा भोलेनाथ हैं। उनका दर्शन कीजिएगा मन को शांति मिलेगी।''

हितलाल को बनारस के बारे में केवल इतनी जानकारी थी कि वहाँ बंगाली टोला नामक एक मुहल्ला है जहाँ अधिकतर बंगाली रहते हैं। स्टेशन से बाहर निकलकर इस मुहल्ले का पता पूछते हुए आये। भूख-प्यास के कारण मुँह सूख गया था।

गलियों से गुजरते समय सहसा एक मकान का दरवाजा खुला और एक सौम्य आकृतिवाले पुरुष ने उनसे पूछा—''कहिये, हितलालजी, कहाँ जा रहे हैं? यहाँ आइये।''

हितलाल विस्मय से पुकारने वाले सज्जन को देखने लगे। दिमाग में काफी जोर लगाने पर भी वे यह नहीं समझ पाये कि इन्हें कब कहाँ देखा है। उसने कहा—''माफ कीजिएगा, मैं आपको नहीं पहचान पा रहा हूँ जबकि आप मेरा नाम भी जानते हैं।''

''पहले आप भीतर आइये। स्नान-भोजन करिये। बाद में परिचय की बातें होंगी।''

स्नान-भोजन के बाद जब हितलाल गृहस्वामी के पास आया तब उसे ज्ञात हुआ कि वह कहाँ आया है। गृहस्वामी पंडित श्यामाचरण लाहिड़ी हैं। यहाँ अन्य जितने लोग बैठे हैं, सभी इनके भक्त और शिष्य हैं।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—''आज आपको दीक्षा देनी है, इसीलिए उतनी दूर से आपको मैंने बुलाया है। मेरा नाम श्यामाचरण लाहिड़ी है।''

बंगाल के अख्यात गाँव में रहने पर भी वह इस नाम से परिचित था। यह नाम सुनते ही तुरन्त उनके चरणों पर गिर पड़ा। आज प्रत्यक्ष रूप से दर्शन पाकर अपने को धन्य समझने लगा।

* * *

लाहिड़ी महाशय केवल पुस्तकीय ज्ञानी नहीं थे, बल्कि चिंतन और तत्त्वज्ञान के झरने थे। उनका कहना था कि ईश्वर की उपस्थिति का विश्वास ध्यान में रखते हुए अपने आनन्ददायक सम्पर्क से उन्हें जीतो। अगर तुम्हारी कोई समस्या हो तो क्रियायोग से हल करो। क्रियायोग के द्वारा तुम मुक्ति-पथ पर अनवरत रूप से आगे बढ़ते जाओ, क्योंकि इसकी शक्ति इसके अभ्यास पर निर्भर है। मैं स्वयं यह मानता हूँ कि मनुष्य के स्वतः प्रयास से मुक्ति पाने की सबसे अधिक प्रभावोत्पादक विधि यही है जिसकी उत्पत्ति मनुष्य द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लिए अब तक पायी जाती है।

जिस प्रकार राजस्थानी महिलाएँ सिर पर पानी की कई गगरियाँ लेकर हँसती-गाती चलती हैं, पर उनका ध्यान गगरियों पर रहता है, उसी प्रकार कुटस्थ में ध्यान

रखते हुए अपना काम करते रहो। अग्नि के द्वारा जिस प्रकार धातु शुद्ध होती है, ठीक उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों की शुद्धि होती है। चंचल मन पाप-कार्यों में लिप्त रहता है। प्राणायाम के द्वारा स्थिर करने पर मन स्थिर हो जाता है। मन स्थिर हो जाने पर इन्द्रियाँ भी स्थिर हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य चौबीस घंटे में २१६०० बार श्वास लेता है। यही मनुष्य की आयु होती है। जब श्वास की पूँजी समाप्त होती है तब मनुष्य का देहांत होता है। एक प्राणायाम में केवल २४ सेकेंड लगते हैं। चौबीस घंटे में मनुष्य १६६४ बार प्राणायाम करते हुए इतनी बार श्वास लेता है। यही वजह है कि योगीजन प्राणायाम को अधिक महत्व देते हैं ताकि श्वासों की पूँजी जल्द समाप्त न हो जाय।

गीता में कहा गया है कि योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं। अन्य योगीजन अपान गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं। (गीता, ४.२६)[1]

बाहरी विषय भोग का चिंतन न करते हुए बाहर ही त्यागकर और नेत्रों की दृष्टि भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरनेवाले प्राण और अपानवायु को एक में मिलाना चाहिए। जीती हुई इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जिसकी हो, ऐसा मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित है, वह सदा मुक्त ही है।[2]

भक्तों से घिरे लाहिड़ी महाशय बात करते-करते अचानक न जाने किसे नमस्कार करते रहते थे। कुछ भक्तों को संदेह हुआ कि संभवतः सूक्ष्म शरीर में कोई महापुरुष यहाँ आता है जिसे गुरुदेव नमस्कार करते हैं। अपनी शंका को दूर करने के लिए एक भक्त बाहर आकर खड़ा हो गया।

लाहिड़ी महाशय का भवन स्थानीय लोगों की दृष्टि में तीर्थस्थल था। राह चलते जो भीतर नहीं आते थे, वे लाहिड़ी महाशय को बाहर से ही प्रणाम करते हुए आगे बढ़ जाते थे। लाहिड़ी महाशय कमरे के भीतर बैठे इस प्रणाम का उत्तर हाथ उठाकर देते थे। तब भक्तों को ज्ञान हुआ कि गुरुदेव सूक्ष्म शरीरवालों को नहीं, राह चलते लोगों के नमस्कार का उत्तर देते हैं।

योगिराज की अतीन्द्रिय-शक्ति देखकर उनके भक्तों को आश्चर्य होता था, इसलिए वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ अपने कल्याण की कामना उनसे करते रहते थे।

---

१. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ (४-२६)

२. स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः ।
विगतेच्छा भयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ (५-२७-२८)

योग तथा प्राणायाम के बारे में गीता के ४-५-६ठवें अध्याय में विस्तार के साथ वर्णन है। गीता के भाष्यकारों में सर्वश्रेष्ठ भाष्य संत ज्ञानेश्वर ने किया है।

आपका एक भक्त कृष्णराम नित्य आपके साथ गंगा-स्नान के लिए जाता था। एक दिन बीच रास्ते में रुककर योगिराज ने कहा—''कृष्णराम, कपड़ा फाड़।''

'कपड़ा फाड़' यह क्या बला है? किसका कपड़ा? अपना या उनका ? गुरुजी को अचानक क्या हो गया, बेचारा कृष्णराम कुछ समझ नहीं सका। अभी वह ऊहापोह की स्थिति में ही था कि ऊपर से एक ईंट लाहिड़ी महाशय के पैर पर गिरी और पैर घायल हो गया।

तुरन्त अपनी धोती फाड़कर कृष्णराम ने क्षत पर पट्टी बाँधते हुए कहा—''गुरुदेव, जब आपको यह मालूम हो गया था कि ऊपर से ईंट गिरने वाली है तब जरा हट-बढ़ जाते। जान-बूझकर घायल होने से क्या मिला?''

योगिराज ने कहा—''ऐसा नहीं होता, बेटा। अगर हट जाता तो यह भोग आगे भयंकर रूप में आता। इसलिए प्रारब्ध का भोगदण्ड तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए।''

नित्य शाम को योगिराज अपने घर भागवत-कथा भक्तों को सुनाया करते थे। एक दिन कथा कहते-कहते बोल उठे—''न जाने क्यों आज दम घुट रहा है। अब कुछ कहते नहीं बन रहा है। लग रहा है जैसे अथाह सागर में डूब रहा हूँ।''

लाहिड़ी महाशय की बातें कोई नहीं समझ सका। लोग एक-दूसरे का मुँह देखते रहे। दूसरे दिन समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ—जापान के समीप एक जहाज डूब गया जिसमें हजारों व्यक्तियों को जल समाधि मिली।

* * *

जिन लोगों को ब्रह्म सारूप्य के सुख का अनुभव हो जाता है, वे लोग शरीरधारी होते हुए भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं। ऐसे लोग यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग-साधनों के पर्वतों को लाँघकर पार कर जाते हैं और तब इस अवस्था तक पहुँचते हैं। आत्मसाक्षात्कार के बल से स्वयं निर्लिप्त रहकर यह सब करते हैं और स्वयं शांत रस बने रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए योग की विभूतियाँ प्रकट करना साधारण-सी बात है।

योगिराज अपने शिष्यों का काफी ध्यान रखते थे। जिनकी निष्ठा ईश्वर तथा उनके प्रति है, वे कहीं भी रहें, गुरुदेव का अभय-दान उन्हें प्राप्त होता रहता है।

लाहिड़ी महाशय की अभया नामक एक शिष्या कलकत्ता रहती थी। वह आठ बार गर्भवती हुई और सभी बच्चों की अकाल मृत्यु हो गयी। नौवीं बार गर्भवती होते ही उसने निश्चय किया कि इस बार गुरुदेव के यहाँ जाकर प्रार्थना करूँगी। यह विचार मन में आते ही वह बनारस जाने के लिए व्याकुल हो उठी।

पति के साथ हबड़ा स्टेशन आयी तो पता चला कि गाड़ी सीटी दे रही है। अभी टिकट खरीदना था, फिर लम्बे प्लेटफॉर्म को पारकर गाड़ी पर सवार होना था। अभया टिकट-घर के पास खड़ी योगिराज का ध्यान करती हुई मन ही मन बोल उठी—''गुरुदेव, कृपा करके गाड़ी रोक दो। जाने न पाये। अब मैं अधिक इन्तजार नहीं कर सकती।''

इधर गाड़ी स्टार्ट हुई, चक्के घूमने लगे, पर गाड़ी एक इंच आगे नहीं बढ़ी। गार्ड, ड्राइवर, यात्री बाहर निकलकर इस अद्‌भुत तमाशे को देखने लगे। उधर एक अपरिचित अभया के पास आकर बोला—''बहनजी, आप लोग चलकर गाड़ी पर बैठिये। मैं आपका टिकट लेकर आता हूँ। मुझे भी बनारस जाना है।''

उस अपरिचित व्यक्ति को रुपये देकर अभया गाड़ी में बैठ गयी। खिड़की से बाहर झाँकते ही उक्त व्यक्ति ने ज्योंही टिकट दिया त्योंही गाड़ी चल पड़ी। इस रहस्य को कोई नहीं जान सका।

गुरुदेव के यहाँ आकर जब अभया ने उन्हें प्रणाम किया तब उन्होंने तेज आवाज में कहा—''तुम लोगों के कारण नाक में दम हो गया। व्यर्थ में परेशान होना पड़ा। दूसरी गाड़ी से आती या घर से जल्दी चलती तो क्या बिगड़ जाता?''

गुरुदेव की फटकार सुनते ही अभया रोने लगी। बाद में लाहिड़ी महाशय ने कहा—''समझ गया, क्यों आयी हो। प्रसव रात्रि के प्रथम पहर में होगा। इस बार कन्या आयेगी। एक काम करना। शाम को ही प्रसूति घर में एक दीपक जला देना। दीपक में इतना तेल डालती रहना ताकि दूसरे दिन सूर्योदय तक जलता रहे। इस बात का ध्यान रखना कि तेल के अभाव में दीपक बुझने न पाये।''

यथा समय अभया को लड़की हुई। कमरे में अभया की एक परिचारिका थी। आधी रात के बाद दीपक की रोशनी क्षीण से क्षीणतर होती गयी। दोनों सो गयी थीं। अचानक कमरे का दरवाजा खुला। दोनों जाग गयीं। सामने गुरुदेव खड़े थे।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—''चेतावनी देने पर भी ध्यान नहीं दे रही हो। दीपक बुझ रहा है। जल्दी तेल डालो।''

दीपक में तेल डालने के बाद अभया ने देखा—गुरुदेव गायब हो चुके हैं।

* * *

डॉ० गोवर्द्धन पानी के जहाज से बराबर संसार के विभिन्न देशों में घूमते थे। जब उनका जहाज भारत आता है तब वे तुरत योगिराज का दर्शन करने बनारस आ जाते।

एक बार लाहिड़ी महाशय ने कहा—''क्यों इतनी दूर से आते हो?''

''क्या करूँ? मेरी नौकरी ही ऐसी है वर्ना मैं नित्य दर्शन करता। आप आशीर्वाद दीजिए ताकि मुझे नित्य आपका दर्शन मिलता रहे।''

योगिराज ने भक्त के इस अनुरोध का कोई उत्तर नहीं दिया। इस बातचीत के बाद जब डॉक्टर साहब सफर के लिए निकले तब नित्य जहाज पर योगिराज का दर्शन होने लगा।

इसी प्रकार की अनुभूति लाहिड़ी महाशय के अन्यतम शिष्य स्वामी प्रणवानन्दजी को हुई थी। आप रेलवे कर्मचारी थे। गुरु की कृपा से साधना करते हुए उच्चस्तर तक पहुँच गये थे। नियमित रूप से अर्द्धरात्रि तक साधना करते थे। फलस्वरूप आपका

हृदय आध्यात्मिक आनन्द से भर गया था।

एक दिन योगिराज पास आकर बोले—''गुरुदेव, मेरे मन में ईश को देखने की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई है। जब तक मैं प्रत्यक्ष रूप से देख न लूँगा तब तक मेरी व्याकुलता समाप्त नहीं होगी।''

गुरु ने आशीर्वाद देते हुए कहा—''जाओ, ध्यान करो। तुम्हारी बात ब्रह्म से कह दूँगा।''

इस घटना के कई माह बाद पुनः वे योगिराज के पास आये और कहा—''अब नौकरी करने की इच्छा नहीं है। मैं पूर्ण रूप से योग-मार्ग पर चलना चाहता हूँ।''

गुरुदेव ने कहा—''पेन्शन माँग लो।''

''अभी तो नौकरी करते कुछ ही वर्ष हुए हैं। कौन-सा कारण बताऊँगा?''

''जो मन में आये बता देना।''

दूसरे दिन प्रणवानन्द ने पेन्शन के लिए आवेदन-पत्र भेजा । डॉक्टर ने इतनी जल्द पेन्शन लेने का कारण पूछा तो आपने बताया—''मेरी रीढ़ की हड्डी में दर्द पैदा हो गया है जो कार्यालय में काम करते समय बाधा उत्पन्न करता है।''

बिना जाँच या अन्य प्रश्न किये डॉक्टर ने पेन्शन की सिफारिश कर दी। पेन्शन पाने के बाद आप अपना पूरा समय योग-साधना में लगाते थे। आगे चलकर आप एक सिद्ध योगी हुए। 'प्रणव-गीता' नामक गीता की पाण्डित्यपूर्ण टीका आपने लिखी है।

लाहिड़ी महाशय के एक अन्य शिष्य थे केवलानन्दजी। आपने भी अपने गुरुदेव की अद्भुत कृपा देखी है। लाहिड़ी महाशय के यहाँ रामू नामक एक सेवक था जो अंधा था। केवलानन्दजी अक्सर सोचते थे कि गुरुदेव सभी भक्तों पर कृपा करते हैं, पर अपने सेवक रामू पर इनकी कृपादृष्टि क्यों नहीं है? वह लाहिड़ी महाशय के पीछे खड़ा रहकर बराबर पंखा झला करता था।

एक दिन केवलानन्द ने अकेले में उससे पूछा—''रामू, तुम कब से अंधे हो?''

''मैं पैदाइशी अंधा हूँ महाराज।''

केवलानन्द ने धीरे से कहा—''एक बार गुरुदेव से निवेदन करो। अगर उनकी कृपा हो जायगी तो तुम इस संसार को, हम लोगों को, देवी-देवता सभी को देख सकोगे।''

दूसरे दिन अत्यन्त संकोच के साथ रामू ने लाहिड़ी महाशय के सामने अपनी समस्या रखी। उसकी बातें सुनकर उन्होंने कहा—''रामू, किसी ने मुझे कठिनाई में डालने के लिए तुम्हें बहकाया है। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है।''

''मेरे लिए तो आप ही भगवान् हैं। अगर आपकी कृपा होगी तो मैं इस दुनिया को देख लूँगा।''

लाहिड़ी महाशय ने उसे पास में बैठाकर उसके भौहों के बीच का बिन्दु स्पर्श किया और कहा—''अपने मन को यहीं केन्द्रित करके लगातार सात दिनों तक राम नाम जप करो। ईश्वर तुम्हारी आँखों में सूर्य का प्रकाश देंगे।''

एक सप्ताह बाद रामू ने सचमुच अपनी आँखों से इस संसार को, परिवार को और गुरुदेव को देखा। पुन: गुरुदेव ने कहा—"अब तुम जीवन भर राम नाम जपते रहना।"

इसी प्रकार एक बार एक शिष्य स्टेशन से निकलकर अपने गाँव जा रहा था। शाम का समय था। पैदल चला जा रहा था। अचानक सामने से एक बाघ आता दिखाई दिया। उसे देखते ही उसके प्राण सूख गये। मन ही मन उसने गुरुदेव को स्मरण किया।

अचानक उसे लगा जैसे बाघ के पीछे खड़ा होकर कोई 'धत-धत, भाग' कह रहा है। थोड़ी देर बाद बाघ भाग गया।

इसी प्रकार एक भक्त की जान लाहिड़ी महाशय की कृपा से बच गयी थी। यह भक्त सपरिवार गुरुदेव का दर्शन करने के लिए बैलगाड़ी से आ रहा था। मार्ग में अचानक गाड़ी का चक्का टूट गया। अंधेरी रात, चोर-डाकुओं से लुटने का भय। घबराकर आर्तस्वर में योगिराज का स्मरण करते ही गाड़ी अपने आप चलने लगी। यह दृश्य देखकर गाड़ीवान से लेकर सभी सवारी चकित रह गये। काफी रात गये लोग गुरुदेव के घर आये।

प्रणाम करने के बाद भक्त अपनी मुसीबतों की कहानी सुनाने लगा।

गुरुदेव ने केवल कहा—"हूँ।"

भक्त ने सोचा—गुरुदेव मेरी बातों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। तब वह अपनी बात पर जोर देकर नये सिरे से सारी घटना सुनाने लगा।

गुरुदेव ने कहा—"देख नहीं रहे हो, पसीने से तर हो गया हूँ। चलो, हवा करो। पता है, तुम्हारी गाड़ी यहाँ तक कौन खींच लाया है?"

एक बार एक महिला योगिराज के पास आयी। अपनी कई सहेलियों से लाहिड़ी महाशय की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सुनकर वह मन ही मन इनके प्रति श्रद्धा करने लगी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने कहा—"गुरुदेव, अगर आप अपना एक फोटो दें तो बड़ी कृपा होगी। मैं बराबर आपके चरणों का दर्शन करने नहीं आ पाऊँगी। चित्र की पूजा से सन्तोष हो जायगा।"

योगिराज ने अपना एक चित्र उस महिला को देते हुए कहा—"अगर इसे रक्षा-कवच समझोगी तो रक्षा-कवच का काम देगा और नहीं तो चित्र बना रहेगा।"

काफी दिनों बाद एक विचित्र घटना हुई। बाहर पानी बरस रहा था और तेज हवा चल रही थी। वह महिला 'भागवत' पाठ कर रही थी। पास ही योगिराज की पुत्रवधू बैठी थी। इनकी बगल में योगिराज का चित्र टँगा था। अचानक भयंकर वज्रपात हुआ।

उस आवाज को सुनते ही महिला भय से चीत्कार करती हुई बोल उठी—"लाहिड़ी महाशय हमारी रक्षा करें।"

बिजली इनके पास गिरी, पर दोनों महिलाएँ बच गयीं। बाद में इन लोगों ने बताया—"उस समय हमें ऐसा लगा जैसे हमारे चारों ओर बरफ की दीवारें खड़ी हैं।"

योगिराज कभी-कभी अपने भक्तों से विनोद भी करते थे। चन्द्रमोहन दे नामक एक युवक डॉक्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद योगिराज से आशीर्वाद लेने आया।

इधर-उधर की बातचीत करने के बाद योगिराज ने कहा कि तुम लोगों के विज्ञान में मृत किसे कहा जाता है?

चन्द्रमोहन ने कहा—''जिसकी नाड़ी बन्द हो जाती है।''

योगिराज ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—''लो, मेरी नाड़ी परीक्षा करके देखो और यह बताओ कि मैं मृत हूँ या जीवित ?''

चन्द्रमोहन ने नाड़ी देखने के बाद दिल की धड़कन की भी जाँच की । उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह यह क्या देख रहा है। उसने लाहिड़ी महाशय की ओर देखते हुए कहा—''यह तो गजब का चमत्कार है।''

''तब मुझे एक डेथ-सार्टिफिकेट लिख दो।''

''मुझे लिखने में कोई एतराज नहीं है, पर आप बातचीत जो कर रहे हैं।'' कहकर वह हँस पड़ा।

इसी प्रकार की एक घटना गंगाधर फोटोग्राफर के साथ हुई थी। उनके एक शिष्य काली कुमार राय की इच्छा हुई कि गुरुदेव से साथ एक सामूहिक फोटो खींचा जाय। योगिराज को बीच में बैठाकर फोटो खींचा गया। निगेटिव धुलने पर देखा गया कि फोटो में सभी लोग हैं, केवल योगिराज नहीं हैं।

इसी प्रकार एक अन्य फोटोग्राफर आया। उसने एक के बाद एक करके बारह प्लेट लिये। इन्हें भी असफलता मिली। योगिराज के चमत्कारों से घबराकर उसने उनके पैर पकड़ लिये।

रोते हुए कहा—''प्रभु, इस अकिंचन को अपना एक चित्र लेने दीजिए।''

योगिराज ने कहा—''ठीक है। कल सबेरे आना।''

दूसरे दिन लाहिड़ी महाशय ने जो चित्र खिंचवाया, वही एकमात्र चित्र है जो सर्वजन को सुलभ हो सका। यही चित्र उनकी पुस्तकों में प्रकाशित है।

इसी प्रकार एक बार आपने अपनी पत्नी श्रीमती काशीमणि देवी को भी परेशान किया था। पत्नी को दीक्षा देने के बाद योगिराज ऊपर कम जाते थे। गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी काशीमणि देवी पर थी। योगिराज शिष्यों और भक्तों से घिरे नीचे बैठक में बैठे रहते थे।

एक दिन किसी काम से ऊपर आये तब पत्नी उनके ऊपर बरस पड़ीं। बोलीं—''दिन-रात शिष्यों को लेकर अड्डेबाजी करते हो, कभी पत्नी-बच्चे कैसे हैं, इस बारे में सोचा है? गृहस्थी कैसे चल रही है, कैसे सारा काम-काज हो रहा है?''

पत्नी को नाराज होते देख योगिराज अदृश्य हो गये। एकाएक चारों ओर से आवाजें आने लगी—''देख रही हो, सब शून्य है। मेरे जैसा शून्य तुम्हारे लिए कर ही क्या सकता है?''

पति को इस प्रकार गायब होते देख काशीमणि देवी की हालत खराब हो गयी। वे अपने पति से दीक्षा ले चुकी थीं, पर एक सामान्य बात पर अदृश्य हो जायेंगे, इसकी

कल्पना उन्हें नहीं थी। घबराकर बोलीं—''मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। आप कहाँ हैं? प्रकट हो जाइये।''

इधर योगिराज कमरे के कभी इस कोने तो कभी उस कोने से आवाज देते थे। काशीमणि देवी बोलीं—''अब तो माफ कर दीजिए। सही रूप में प्रकट होइये।''

काशीमणि देवी को रोती देख योगिराज प्रकट होकर बोले—''हे देवी, सांसारिक धन की उपेक्षा कर तू उस परमधाम की कामना कर। उस खजाने को पाने के बाद बाहरी सम्पत्ति का मोह नहीं होगा। घबराने की जरूरत नहीं। घर चलाने लायक धन लेकर एक शिष्य शीघ्र तुम्हारे पास आयेगा।''

कई दिनों बाद एक शिष्य गुरुदेव के चरणों में आकर पर्याप्त धन दे गया।

* * *

योगिराज के अनेक शिष्य थे। इन शिष्यों ने भी अपने शिष्य बनाये थे जो अपनी साधना से अनेक उच्चस्तर के योगी बन गये थे। पंचानन बनर्जी योगिराज के अन्यतम शिष्य थे। बनर्जी बाबू के शिष्य प्रख्यात अध्यापक योगी वरदाचरण थे। वरदाचरण के शिष्य काजी नजरुल इस्लाम और सुभाषचन्द्र बोस हुए। योगिराज के शिष्य रामदयाल मजुमदार के शिष्य संत सीताराम ओंकारनाथ थे। इन सभी लोगों के बारे में पण्डित गोपीनाथ कविराज ने पुस्तकें लिखी हैं।

पुरी में लाहिड़ी महाशय के नाम पर मन्दिर बनवाने वाले श्री भूपेन्द्र सान्याल को योगिराज के यहाँ बिना गये दीक्षा प्राप्त हुई थी। वे काशी जाकर दीक्षा लेने में असमर्थ थे, इसलिए मन ही मन आध्यात्मिक दीक्षा के लिए उन्होंने प्रार्थना की।

एक दिन रात को जब वे गहरी नींद में थे, तब उनके स्वप्न में लाहिड़ी महाशय आये और दीक्षा देकर चले गये। सान्याल महाशय की दृष्टि में यह मात्र स्वप्न था। प्रत्यक्ष रूप से उन्हें दीक्षा नहीं मिली थी।

फलतः काफी दिनों बाद जब वे काशी आये तब उन्होंने योगिराज से प्रत्यक्ष रूप में दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की।

योगिराज ने कहा कि मैं तुम्हें दीक्षा काफी दिन पहले दे चुका हूँ। अब दीक्षा कैसी!

योगिराज के साले के पुत्र तारकनाथ सान्याल थे। एक बार वे अस्वस्थ हो गये। रोग दूर नहीं हो रहा था। योगिराज की कृपा से वे स्वस्थ हो गये। अपने फूफाजी के इस गुण से वे काफी प्रभावित हुए।

एक दिन उन्होंने योगिराज से कहा कि मैं आपके गुरु के दर्शन करना चाहता हूँ। दरअसल सान्याल जी यह सोचते थे कि जब शिष्य में इतनी प्रतिभा है तब गुरु में न जाने कितनी होगी। उनके दर्शन से लाभ हो सकता है।

योगिराज ने कहा—''मैंने उनसे निवेदन किया था, पर वे आने को राजी नहीं हैं।''

वास्तव में योग्य व्यक्तियों को ही योगियों के दर्शन मिलते हैं। तारकनाथ सान्याल

को दर्शन नहीं मिला, पर मुरादाबाद के अविश्वासियों को मिला। युक्तेश्वर जी तथा उनके शिष्य मुकुन्दलाल घोष को बाबा जी ने दर्शन दिया था।

योगिवर के एक शिष्य श्री काली कुमार राय थे। वे अपने गुरु के पास नियमित रुप से आते थे। इनकी यह आदत इनके मालिक को पसन्द नहीं थी। वे तमाम संतों को ढोंगी समझते थे। कई बार राय साहब को उन्होंने समझाने की कोशिश की, पर राय साहब की अटल-भक्ति में कोई अंतर नहीं आया। वे गुरु की सेवा में बराबर जाते रहे।

एक दिन इनका पीछा करते हुए इनके मालिक भी योगिराज के यहाँ आये। भक्तों के पीछे बैठकर यह सोचने लगे कि आज इस बाबा की पोल खोलकर रहूँगा। देखूँ, क्या-क्या ढोंग रचता है।

एकाएक लाहिड़ी महाशय ने अपने शिष्यों से कहा—''क्या तुम लोग एक चित्र देखना पसन्द करोगे?''

सभी लोगों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। लाहिड़ी महाशय के आदेशानुसार कमरे की बत्तियाँ बुझा दी गयीं। बाद में लोग एक के पीछे एक करके गोलाकार रूप में बैठ गये।

योगिराज ने कहा—''अब प्रत्येक व्यक्ति अपने आगे वाले की आँखें अपने हाथ से बन्द कर दे।''

चूँकि सभी लोग ऐसा कर रहे थे, इसलिए काली बाबू के मालिक को भी वैसा करना पड़ा।

तभी योगिराज ने पूछा—''क्या दिखाई दे रहा है तुम लोगों को?''

लोग कहने लगे—''एक अत्यन्त सुन्दर रमणी जो कि लाल किनारे की साड़ी पहने है, वह गजकर्ण पौधे के पास खड़ी है।''

योगिराज ने काली बाबू के मालिक से पूछा—''क्या आप इस औरत को पहचान रहे हैं?''

मालिक ने कहा—''जी हाँ। मैं भारी मूर्ख हूँ जो घर में सती पत्नी के रहते, इस औरत के पीछे पागल हूँ। मैं अपनी कुटिल-भावनाओं के लिए लज्जित हूँ। कृपया मुझे क्षमा करके दीक्षा देने का अनुग्रह करें।''

योगिराज ने कहा—''अगर तुम छः माह तक संयम से रह सकोगे तभी दीक्षा दूँगा।''

तीन माह तक वह व्यक्ति संयम से रहा। बाद में पुनः उस रखैल से उसका सम्पर्क हो गया। सम्पर्क होने के एक माह बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

* * *

उन दिनों काशी में तैलंग स्वामी को जीवन्त विश्वनाथ माना जाता था। नगर में उनकी चमत्कारिक कहानियाँ लोगों की जबान पर चलती रहती थीं।

एक दिन दो-चार भक्तों के साथ तैलंग स्वामी का दर्शन करने के लिए योगिराज पंचगंगा घाट स्थित उनके स्थान तक आये। दूर से उन्हें आते देख तैलंग स्वामी ने आगे बढ़कर गले से लगाया और फिर अपने स्थान तक ले आये।

कुछ देर दोनों संतों में बातें होती रहीं। इसके बाद योगिराज विदा लेकर वापस चले गये।

लाहिड़ी महाशय के जाने के बाद वहाँ बैठे भक्तों में से एक व्यक्ति ने पूछा—''महाराज, आप जैसे महान् योगी ने कैसे एक गृहस्थ व्यक्ति का स्वागत किया, मैं समझ नहीं सका। आदर-स्वागत तो बराबरी वालों का किया जाता है।''

तैलंग स्वामी ने कहा—''यह साधारण व्यक्ति नहीं है बल्कि असाधारण योगी है और उच्चकोटि का है। गृहस्थ होते हुए भी काफी उन्नत हो गया है। तुम लोगों की दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पाती।''

तैलंग स्वामी द्वारा प्रशंसा किये जाने के कारण लाहिड़ी महाशय की ख्याति चतुर्दिक फैल गयी। जो लोग इन्हें साधारण समझते रहे, अब वे भी इनका दर्शन करने के लिए आने लगे। मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है और वह उसके गंध से छटपटाता है। उसकी गंध चारों ओर फैल जाती है। इस प्रसंग में एक बोध कथा का स्मरण हो रहा है।

महर्षि अंगिरस से एक बार एक शिष्य ने प्रश्न किया—''गुरुदेव, यह बताइये कि मनुष्य अपने अन्तःकरण को कैसे निर्मल कर सकता है?''

महर्षि ने कहा—''करने वालों के लिए बहुत सहज है, अन्यथा कठिन। उपनिषद् का बताया हुआ ज्ञान-धनुष हाथ में पकड़ो, उस पर उपासना के बाण रखो और ब्रह्म के प्रेम में निमग्न होकर परमात्मा के सर्वप्रिय नाम 'ॐ' को लक्ष्य करके छोड़ो। कहने का मतलब यह कि हृदय से ब्रह्म की उपासना में लीन हो जाओ। ऐसा करनें से मुक्ति पाओगे। केवल परमात्मा को आनन्दस्वरूप मानो और सुयोग्य गुरु से शिक्षा ग्रहण करो। यह समझना भी भूल है कि गुरु परमात्मा दिखा देगा या उन्हें प्राप्त करा देगा। गुरु मार्ग दिखा सकता है, साक्षात् नहीं करा सकता। मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी मात्र सत्याचारी होता है। सत्य की अन्तिम सीमा मुक्ति है। जब कोई अपने ज्ञान-चक्षु से परमात्मा को देख लेता है, उसका सम्बन्ध शरीर से एकदम दूसरा हो जाता है। जब शरीर की चिन्ता नहीं तब मन में चंचलता कहाँ से आयेगी? मन की चंचलता समाप्त होते ही सारा भ्रम नष्ट हो जाता है, सभी कर्मों के संस्कार लुप्त हो जाते हैं। यह ठीक है कि जीव ब्रह्म नहीं बन सकता, किन्तु उसमें ब्रह्मरूपता आ जाती है और इस तरह वह पूर्णानन्द को प्राप्त हो जाता है।''

योगिराज की यही स्थिति हो गयी थी। वे पूर्ण रूप से पूर्णानन्द प्राप्त कर चुके थे।

* * *

सन् १८९५ की गर्मी में लाहिड़ी महाशय को कार्बंकल हो गया। कई महीने तक वे उसकी पीड़ा सहते रहे। शिष्यों ने आग्रह किया कि ऑपरेशन करा लें। लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें यह मालूम हो गया था कि अपनी उदारता के कारण वे अनेक शिष्यों के पापों को इस रूप में स्वीकार कर चुके हैं। ठीक इन्हीं दिनों उन्हें बाबा जी की चेतावनी याद आयीं। कुंभ मेले से वापस आकर युक्तेश्वर जी ने उनका एक संदेश दिया था—''समय कम है, शक्ति समाप्त हो रही है।''

गुरुदेव के शिष्य पंचानन भट्टाचार्य ने अचानक एक दिन अपने कमरे में देखा कि गुरुदेव उनके सामने खड़े होकर कह रहे हैं—''जल्द काशी चले आओ।''

ठीक उसी दिन उदयपुर में स्वामी प्रणवानन्द ने देखा कि उनके कमरे में गुरुदेव का आविर्भाव हुआ और उन्हें आदेश दे रहे हैं—''तुरन्त काशी चले आओ।''

इस प्रकार उसी दिन कई शिष्यों ने अपने-अपने स्थान में योगिराज को यही बात कहते सुना।

काशी आने पर लोगों ने देखा—गुरुदेव अपने कमरे में बैठे भागवत-पाठ कर रहे हैं। यह पाठ कई दिनों तक चलता रहा।

एक दिन उन्होंने कहा—''मेरा कार्य समाप्त हो गया, अब मैं अपने घर जा रहा हूँ।''

यह बात सुनकर उपस्थित भक्त-शिष्य रोने लगे। योगिराज ने कहा—''शोक करने की जरूरत नहीं। नश्वर शरीर त्याग करने पर भी मैं तुम लोगों के बीच मौजूद रहूँगा।''

इतना कहकर वे पद्मासन लगाकर बैठ गये और थोड़ी देर में महासमाधि में लीन हो गये। उस दिन गुरुवार, २६ सितम्बर, १८९५ ई० था।

■



महर्षि रमण

भारत से अंग्रेज चले गये, पर अपने पीछे उन लोगों को छोड़ गये जो धर्म के नाम पर गरीब, पिछड़ी और निम्न जातियों को बहकाकर क्रिश्चियन बनाने में सहयोग कर रहे हैं। अंग्रेजों के शासनकाल में चर्च के पादरी शासन पर भी सहयोग के लिए दबाव डालते रहे। गरीबी, अपमान से पीड़ित भोली-भाली जनता इनके बहकावे में आकर धर्म परिवर्तन कर लेती थी। यद्यपि इसके लिए मुख्य अपराधी हमारे सामाजिक नेता तथा धर्मगुरु रहे हैं।

अर्काट जिले के पादरियों ने अनुभव किया कि अब पहले की तरह लोग धर्म-परिवर्तन के लिए नहीं आ रहे हैं। यहाँ तक कि चर्च की प्रार्थना-सभा में उपस्थिति कम होने लगी है। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि अरुणाचल पर आज-कल कोई संत आया है जिसे लोग ईश्वर का दूत समझते हैं। वह व्यक्ति नित्य भगवान् के पास जाता है और उनके निकट तीन घंटे रहता है। भगवान् को देखने या उसके सेवक के पास जाने की लालसा प्रत्येक व्यक्ति के मन में उत्पन्न होती है। ऐसी हालत में इस प्रचार के कारण उस संत के यहाँ लोग जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या?

पादरियों ने अनुमान लगाया कि यह जरूर कोई धूर्त होगा जिसके चेलों ने व्यापक रूप से यह प्रचार कर रखा है कि वह व्यक्ति नित्य भगवान् से मुलाकात करता है। अगर तुरन्त इसका भंडाफोड़ न किया गया तो परिणाम उल्टा होगा।

एक दिन पादरी अपने साथ कई धर्म प्रचारकों को लेकर महर्षि रमण के निकट आये और क्रोध से बोले—''सुना है कि आपको ईश्वर का साक्षात्कार हो गया है और

आप रोज सबेरे तीन घंटा एकांत में उनके साथ घूमते हैं। हम इस झूठ का प्रचार नहीं करने देना चाहते। भोली-भाली जनता को अपने पाखंड में फँसाना सबसे बड़ा पाप है। इस पाप को दूर करने के लिए हम आपके पास आये हैं। आप अपने ईश्वर से हमारी मुलाकात करायें जिसे आप देखते हैं, अगर सारी बातें झूठ हैं तो हमें साफ-साफ बताइये ताकि आपका भंडाफोड़ कर दें।''

महर्षि अपनी आदत के अनुसार मुस्कराये। बिना किसी प्रकार की द्विधा के उन्होंने संयत स्वर में कहा-''आपने जो कुछ सुना है, सब सही है। भगवान् आपको क्षमा करें। आप कल सबेरे आइये, मैं आप लोगों को अपने भगवान् के पास ले चलूँगा।''

पादरियों को विश्वास हो गया कि महर्षि रमण झूठ बोलकर उन्हें बहका रहे हैं। सभी लोगों ने यह निश्चय किया कि कल सबेरे आकर इस नकली संत के कपट का भंडाभोड़ किया जायगा। रातभर उन्हें नींद न आयी।

दूसरे दिन पादरी और उनके साथ कुछ अन्य लोग आये। महर्षि उस समय अपने नित्य कर्म में व्यस्त थे। बाद में उन सभी को लेकर वे घने जंगल की ओर चल पड़े। दो मील पैदल चलने के बाद महर्षि एक झोपड़ी के पास आकर रुके।

महर्षि ने कहा—''मेरे ईश्वर इसी झोपड़ी में हैं। आप लोग बाहर शांतिपूर्वक बैठकर सब कुछ देखने का कष्ट करें।''

इसके बाद महर्षि रमण उस झोपड़ी के भीतर गये। लोगों ने साश्चर्य देखा कि उस झोपड़ी के भीतर एक चटाई पर एक कोढ़ी दम्पति पड़े थे। महर्षि ने उनके घावों की सफाई की, उन्हें तेल लगाया और फिर पानी लाकर उन्हें नहलाया। इसके बाद चूल्हा जलाकर, खिचड़ी बनाकर उन्हें खिलायी।

बाहर खड़े लोग यह सारा दृश्य देख रहे थे। महर्षि ने कहा—''यही मेरे ईश्वर हैं।''

पादरियों के मुँह में जैसे ताले जड़ गये थे। कुछ देर के लिए वे पाषाण बन गये थे। वे आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—''महर्षि आप हमें क्षमा करें। आज आपने हम अपराधियों को वह दिखा दिया है जो पुण्यात्माओं के लिए भी दुर्लभ है। सचमुच आप ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले संत हैं।''

पादरी अपने दल के साथ जब शहर वापस गया तब उसने यह प्रचार किया कि जिसे प्रत्यक्ष रूप से ईसामसीह देखना हो, वह अरुणाचलम् जाकर महर्षि का दर्शन करे।

इसी प्रकार एक बार चोरों के साथ एक विचित्र घटना हुई थी। उन दिनों महर्षि की महिमा बहुत बढ़ गयी थी। किशोर-साधक रमण का दर्शन करने के लिए अगणित लोग आते थे। वे खाली हाथ नहीं आते थे। ख्याति के साथ भक्त तथा शिष्यों की संख्या में विस्तार हो गया था। चोरों ने सोचा, जब इतने भक्त आते हैं, उन सभी को भोजन आदि मिलता है तब आश्रम के भीतर काफी धन होगा। वे सब अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर आये।

कमरे के दरवाजे, खिड़कियाँ तोड़ने लगे। देखते-देखते सभी शिष्य लाठी-सोटे लेकर मुकाबला करने के लिए तैयार हुए।

महर्षि ने कहा—''चोरों के साथ झगड़ा करने की जरूरत नहीं। उन्हें अपना कार्य निर्विघ्न रूप से करने दो। हमारा कार्य है उनके अत्याचारों को चुपचाप सहना।''

इसके बाद वे चोरों से कहने लगे—''अरे भाई, नाहक क्यों तोड़फोड़ कर रहे हो। आराम से भीतर आ जाओ। तुम्हें जिन-जिन चीजों की जरूरत हो, लेते जाओ। हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे।''

कई बार महर्षि द्वारा उक्त कथन दुहराने पर चोरों ने कहा—''हम इतने बेवकूफ नहीं जितना आप समझ रहे हैं। आप लोगों को अपनी जान भले ही प्यारी न हो, हमें अपनी प्यारी है।''

महर्षि ने उत्तर दिया—''शायद तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। ठीक है। हम लोग आश्रम को खाली करके चले जा रहे हैं। इसके बाद तुम सब भीतर आ जाना।''

इतना कहकर महर्षि अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ आश्रम से बाहर निकले। कुछ पग आगे बढ़ते ही चोरों में से किसी ने लाठी से महर्षि के पैर पर चोट की। वेदना से सहम कर संत ने कहा—''मेरा एक पैर जख्मी हुआ है। अगर चाहो तो दूसरा भी जख्मी कर सकते हो।''

महर्षि की यह बात एक शिष्य को पसन्द नहीं आयी। वह उनकी सुरक्षा के लिए आगे आ गया। बाद में आगे बढ़कर अपने भक्तों के साथ एक जगह महर्षि बैठ गये।

थोड़ी देर बाद चोरों की ओर से आवाज आयी—''जब इतनी कृपा कर चुके हैं तब एक लालटेन का इन्तजाम कर दीजिए। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।''

महर्षि रमण की आज्ञा पाकर एक शिष्य उन्हें लालटेन दे आया। आश्रम में अन्न और कुछ कपड़े थे। कुछ बरतन भी थे। वे सब क्या चोरी करते। चोरों के वापस जाने के बाद पुनः सभी लोग आश्रम में वापस आये। उन्होंने देखा—चारों ओर अनाज और वस्त्र बिखरे हुए हैं। बरतन तथा कुछ अन्य सामग्री गायब है। कुछ देर बाद एक शिष्य दो सिपाहियों को बुला लाया।

महर्षि से पूछताछ की । उत्तर मिला—''चोरों के हाथ कुछ नहीं लगा। बेचारे हाथ मलते हुए चले गये।''

दिन चढ़ने पर दरोगा तथा डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट आये। महर्षि से उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। चुपचाप जाँच करने के बाद चले गये। कुछ दिनों बाद चोर पकड़े गये और सारा सामान वापस मिल गया।

जिस समय चोरों ने महर्षि के पैर पर लाठी का प्रहार किया था, उसी समय एक शिष्य लाठी लेकर चोरों को मारने के लिए आगे बढ़ा था। महर्षि रमण ने कहा—''उन्हें अपना काम करने दो।''

''स्वामी, आप तो घायल हो गये हैं।''

महर्षि ने कहा—''मेरी पूजा हुई है। हम लोग साधु हैं। शास्त्रों में लिखा है—'पाप से घृणा करो, पापियों से नहीं।' वे सब पथभ्रष्ट थे।''

*　　　　*　　　　*

मदुरा जिले में शहर से ३० मील दूर एक गाँव है जिसका नाम है—तिरुचुजही। पंडित सुन्दरम् अय्यर इस गाँव के ख्यातिप्राप्त वकील थे। आपकी उदारता की ख्याति सूर्य की रश्मियों की तरह चारों ओर फैल गयी थी। आप हमेशा गरीब लोगों की सहायता करते थे। असहाय और निराश्रित लोगों को भोजन-वस्त्र भी देते थे। आपके यहाँ ३० दिसम्बर, सन् १८७९ को एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम वेंकट रमण रखा गया।

शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह बालक बड़ा होता गया और एक दिन गाँव की पाठशाला में पढ़ने गया। यहाँ की शिक्षा सम्पूर्ण करने के बाद वेंकट रमण दिन्दीकुल पढ़ने गये। जब वेंकट रमण १२ साल के थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। माँ अलगम्माल पर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। वेंकट रमण से दो साल बड़ा नागस्वामी, छह वर्ष छोटा नागस्वामी और आठ साल छोटी बहन अलामेलु थे। इन बच्चों को लेकर माँ कुछ समय तक चिंतित थी, पर इसी बीच वेंकट रमण के चाचा ने मदद की। नागस्वामी और वेंकट रमण उच्च शिक्षा के लिए अपने चाचा सुब्बियार के यहाँ जाकर रहने लगे। चाचा का एक मकान मदुरा में था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वेंकट रमण की स्मरण-शक्ति तीव्र थी। एक बार जिस पुस्तक को वे पढ़ लेते थे, वह उन्हें कंठस्थ हो जाती थी। इसके बावजूद वे अध्ययन की अपेक्षा खेलकूद में अधिक दिलचस्पी लेते थे। कुश्ती लड़ना, कसरत करना उन्हें अच्छा लगता था। शरीर से इतने बलवान थे कि किसी भी सहपाठी की हिम्मत उनसे लड़ने की नहीं होती थी। अगर गलती से कोई उलझ जाता था तो उसकी ऐसी मरम्मत कर देते थे कि फिर कभी वह सिर उठाने का साहस नहीं करता था।

रमण कुशल तैराक भी थे। बरसात के मौसम में जब नदियों में भयंकर बाढ़ आ जाती थी, मल्लाह नदी में नाव ले जाने का साहस नहीं करते थे तब आप उफनती नदी में छलाँग लगाकर उस पार पहुँच जाते थे। इनके साहस और शौर्य को देखकर सभी साथी आपसे भयभीत रहते थे।

ले-देकर इनमें एक अवगुण था। वे बड़ी गहरी नींद सोते थे, जैसे मुर्दे से बाजी लगाकर सोने की आदत पड़ गयी थी। इस बारे में आपने स्वयं लिखा है-''एक बार चाचा तथा परिवार के सभी लोग मंदिर दर्शन करने गये। मैं घर के दरवाजों को बन्द करके सो गया। मंदिर से वापस आने के बाद लोग चीखते-पुकारते रहे। मुझे कुछ पता नहीं चला। अन्त में खिड़की तोड़कर लोग भीतर आये। मुझे घर के लोगों ने खूब मारा। फिर भी मेरी नींद नहीं खुली। दूसरे दिन जब इस घटना के बारे में आपसे चर्चा की गयी तब आपने कहा—''मुझे कुछ पता नहीं।''

रमण की इस कमजोरी का लाभ वे लोग भी उठाते थे जो इनसे बदला लेना चाहते थे। रात गये इन्हें पलंग से उठा लाते और खूब पिटाई करते। इसके बाद यथास्थान इन्हें रख आते थे। सोकर उठने के बाद रमण को रात की घटना का आभास भी नहीं होता था। रमण की इस विशेषता में प्रकृति ने क्या कर रखा था, यह समझना कठिन है। कुछ लोगों का अनुमान है कि बचपन से ही यह लक्षण भाव-समाधि की ओर प्रेरित करने वाला था। इसी आदत के कारण आपमें आध्यात्मिक शक्ति का विकास तेजी से हुआ।

स्कूली पुस्तकों के अलावा रमण का रुझान धार्मिक पुस्तकों की ओर भी था। अचानक एक दिन 'पेरिया पुराणम्' नामक पुस्तक हाथ लगी। इस पुस्तक का प्रभाव रमण के किशोर मन पर व्यापक रूप से पड़ा। सच तो यह है कि इस पुस्तक ने इन्हें एक नयी दिशा दी। इन दिनों के बारे में आपने लिखा है—

''मदुरा छोड़ने के छह सप्ताह पूर्व मेरे जीवन में महान् परिवर्तन आया। यह सब अचानक हो गया। एक दिन मैं अपने चाचा के मकान की पहली मंजिल पर अकेला बैठा था। मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक था, लेकिन न जाने क्यों अकस्मात् मृत्यु-भय ने मुझे आक्रांत कर दिया। मुझे लगा जैसे मैं शीघ्र मर जाऊँगा और तब सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। मैंने अपनी इस समस्या के बारे में किसी की भी राय लेने की जरूरत नहीं समझी। मैंने ऐसा अनुभव किया कि इसका समाधान स्वयं मुझे ही ढूँढ़ना चाहिए। मृत्यु-भय ने मुझे तुरन्त ही आत्म-निरीक्षण के लिए प्रेरित किया।

मैं मन ही मन सोचने लगा—'इसका क्या अर्थ है? यह किसकी मृत्यु हो रही है? क्या यह शरीर मरता है?' इसके बाद तुरन्त ही मैंने इस स्थिति में नाटकीयता ला दी। मैंने अपने शरीर के विभिन्न अंगों को पसार दिया और उन्हें इस तरह कड़ा कर दिया जैसे मृत्यु आ गयी हो। साथ ही मैंने अपने साँस रोक ली और अपने होठों को कसकर बंद कर दिया।

फिर अपने आप कहा—'बस, अब शरीर की मृत्यु हो चुकी है। अब इसे श्मशान में ले जाकर जलाया जायगा और इस प्रकार राख में परिणत हो जायगा। लेकिन शरीर मरने से क्या मैं मर गया? क्या यह शरीर ही मैं हूँ? नहीं, यह शरीर तो शांत निश्चेष्ट पड़ा है। लेकिन मैं अपने आपमें हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं इस शरीर में समाया हुआ हूँ। यह शरीर मर जाता है, पर मैं शरीर से भिन्न होने के कारण नहीं मरता। अतः मैं मृत्यु से परे 'आत्मा' हूँ।' इस प्रकार मुझे शरीर और आत्मा के पृथक् अस्तित्व का भान हुआ। मैं मृत्यु-भय से मुक्त हो गया।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद वेंकट रमण के यहाँ एक वृद्ध रिश्तेदार आया जो अरुणाचल दर्शन करके लौटा था। बातचीत के सिलसिले में वह अपनी यात्रा के बारे में बतलाने लगा।

'अरुणाचल' का नाम सुनते ही अचानक वेंकट रमण के हृदय में हलचल मच गयी। उन्हें लगा जैसे यह कोई ऐसा स्थान है जो जन्म-जन्मान्तर से परिचित है।

रिश्तेदार अपनी लच्छेदार भाषा में अरुणाचल की भव्यता का वर्णन करते रहे और इधर वेंकट रमण एक अनोखी दुनिया में विचरण करता रहा।

''यह अरुणाचल है कहाँ?''

वृद्ध सज्जन ने चकित होकर कहा—''तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ? पता नहीं, क्या पढ़ते-लिखते हो? इतने महान् तीर्थस्थल की जानकारी तुम्हें नहीं है? आश्चर्य है! दक्षिण भारत का यही सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। एक बार देख लोगे तो मन पवित्र हो जायगा।

वेंकट रमण के प्रश्न करने पर वृद्ध सज्जन ने वहाँ का भूगोल बताया। धीरे-धीरे रमण पर अरुणाचल का नशा छाता गया। इस स्थान के बारे में कल्पना करते ही मन में एक अजीब अनुभूति होती। लगता था जैसे यह ज्योतिर्गिरि उसे अपने यहाँ आने के लिए आमंत्रित कर रहा है। जब कभी ऐसे व्यक्ति से मुलाकात होती जो अरुणाचल हो आया हो तो उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछते।

अरुणाचल का आकर्षण इतनी तेजी से बढ़ता गया कि अब रमण का मन पढ़ने-लिखने से उचट गया। खेलकूद, मारपीट आदि से अरुचि हो गयी। पहले जब कोई सहपाठी मजाक करता या उलझता तो उसकी तुरन्त मरम्मत करते थे और अब नीलकंठ की तरह सब कुछ पीने लग गये। अपने से बड़ों का सम्मान करने लगे। अपनी सारी वाचालता को छोड़कर एकांतसेवी हो गये।

स्कूली काम पूरा न करने पर एक बार रमण को कोई पाठ तीन बार लिखने का आदेश दिया गया। दो बार लिखने के बाद उन्हें अरुचि हो गयी और वे आँखें बन्द कर न जाने क्या सोचने लगे। रमण की इस मुद्रा को देखकर बड़े भाई नागस्वामी ने कहा—''यहाँ हम पढ़ने आये हैं। साधुओं की तरह ध्यान लगाने का नाटक करने नहीं। अगर पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता तो लोटा-चिमटा लेकर संन्यासी बन जाओ।''

बड़े भाई की फटकार चुभ गयी। मन बहुत उद्विग्न हो उठा। अब उन्होंने निश्चय किया कि कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है। घर से भागने का निश्चय करके वे नागस्वामी के पास आकर बोले—''भाई साहब, एक जरूरी काम से स्कूल जा रहा हूँ।''

नागस्वामी ने कहा—''ठीक है, जाओ। जब जा रहे हो तो मेरा एक काम करते आना। बक्से से पाँच रुपये ले लो। मेरी फीस जमा कर देना।''

नागस्वामी को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि उनका छोटा भाई घर से भाग रहा है और वे उसके लिए राह खर्च निमित्त रकम दे रहे हैं। इसके पूर्व रमण को यह जानकारी हो गयी थी कि अरुणाचल जाने के लिए तीन रुपये रेल किराया है।

वह दिन था—२९ अगस्त सन् १८९६ ई०। बड़े भाई के नाम उन्होंने एक पत्र लिखा—''मैं परम पिता की खोज में, उसकी आज्ञा से, यहाँ से जा रहा हूँ अतएव मेरे लिए किसी को दुःखी होने की जरूरत नहीं है और न मेरी खोज में कोई रकम खर्च की जाय।''

हस्ताक्षर के स्थान पर केवल डैश लगायी थी यद्यपि पत्र की बातों तथा लिपि से यह स्पष्ट था कि रमण ने लिखा है। पत्र तमिल भाषा में था जो आज भी रमण आश्रम में सुरक्षित है।

पाँच रुपयों में से तीन रुपये जेब के हवाले कर शेष दो रुपये और पत्र टेबुल पर रखने के पश्चात् रमण सीधे स्टेशन आये। दो रुपये तेरह आने टिकट में खर्च हुए। जीवन में कभी सफल करने का अवसर नहीं मिला था। तिरुवन्नामलाई की बजाय तिण्डीवनम् का ही टिकट खरीदा। मार्ग में एक सहयात्री से बातचीत करने पर उन्हें अपनी गलती मालूम हो गयी, पर अब कोई उपाय नहीं था।

वस्तुत: घर से रवाना होने के साथ ही एक अदृश्य शक्ति रमण की सहायता करने लगी थी। त्रिचनापल्ली पहुँचने पर उन्हें जोरों से भूख लगी तो दो पैसे की नाशपातियाँ खरीदीं। उन्हें यह अनुभव हुआ कि एक नाशपाती खाते ही पेट भर गया जबकि घर पर काफी भोजन किया करते थे।

गन्तव्य स्टेशन पर वह रात को उतरा। दूसरे दिन सबेरे पैदल चल पड़ा। काफी दूर आने पर उसे भूख सताने लगी। सामने के एक होटल में जाकर उसने भोजन लाने का आदेश दिया। थोड़ी देर बाद भोजन आया। खाना खाने के बाद उसने मूल्य के रूप में दो आने दिये। होटल का मालिक कान में बाली पहने संन्यासी रूप धारण करने वाले बालक के प्रति न जाने क्यों दयार्द्र हो उठा।

उसने पूछा—''तुम्हारी जेब में कितने पैसे हैं?''

''ढाई आने।''

''तब मुझे भोजन का मूल्य नहीं चाहिए। तुम कहाँ जा रहे हो?''

रमण ने कहा—''तिरुवन्नामलाई मुझे जाना है। मगर रास्ते में कहीं भी इस नाम का नामस्तंभ देखने में नहीं आया। मालबालापट्टू नाम देखा है।''

होटल वाले ने कहा—''मामबालापट्टू तो तिरुवन्नामलाई के रास्ते में है। वहाँ से आगे तिरुवन्नामलाई है।''

पथ-निर्देश पाकर रमण पुन: स्टेशन आया। मामबालापट्टू का टिकट दस पैसे में मिला। दोपहर के वक्त गाड़ी मामबालापट्टू पहुँची। स्टेशन से बाहर निकलने के बाद रमण ने निश्चय किया कि आगे पैदल यात्रा करूँगा। शाम तक १० मील चलने के बाद एक मंदिर में आकर समाधिस्थ हो गया, पर यहाँ रात को ठहरने की जगह नहीं मिली तो किलूर के मंदिर में चला आया। यहाँ एक पुजारी ने अपना भोजन उसे दे दिया। रमण पानी की तलाश में एक घर के सामने आकर खड़ा हुआ। अचानक उसके पैर डगमगाये और वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने देखा कि कुछ लोग उसे घेर कर खड़े हैं। वह उठा, गिरे हुए चावलों को खाकर पानी पिया। कुछ दूर आगे जाकर सड़क पर सो गया। दूसरे दिन सबेरे उठने के बाद लोगों से पूछने पर पता चला कि तिरुवन्नामलाई यहाँ से अभी २० मील है।

उन दिनों तमिल ब्राह्मण सोने की रत्नजड़ित बालियाँ कान में पहनते थे। इतनी दूर की यात्रा में वह बुरी तरह थक गया था। उसने सोचा कि कान की बालियाँ बेचने पर जो पैसे मिलेंगे, उनसे आगे की यात्रा करूँगा। उस दिन कृष्ण जन्माष्टमी थी। घर-घर में उत्सव मनाया जा रहा था। चलते-चलते एक घर के सामने खड़े होकर उसने भोजन की माँग की।

अयाचित रूप से एक किशोर को पाकर गृहस्वामिनी ने बड़े प्यार से भोजन कराया। भोजन करने के बाद रमण ने गृहस्वामी से कहा—"मुझे केवल चार रुपयों की जरूरत है। कृपया ये दोनों बालियाँ गिरवी रखकर मुझे दे दीजिए। बाद में आपको रुपये चुकाकर ले जाऊँगा।"

गृहस्वामी ने बालियों को जाँच कर देखा—बीस रुपये का माल था। उसने चार रुपये देते हुए अपना पता लिख कर दे दिया। रुपये लेकर रमण बाहर निकला और कुछ दूर आगे जाकर गृहस्वामी के दिये पते वाले कागज को उसने फेंक दिया, क्योंकि अब यहाँ लौट कर आने की इच्छा नहीं थी।

१ सितम्बर, सन् १८९६ ई० के दिन रमण अरुणाचल पहुँचा। अरुणाचलेश मंदिर में दर्शन करने के बाद वह अय्यानकुलम सरोवर के पास आया तो किसी ने कहा—"मुण्डनम्?" अर्थात् सिर मुड़वाओगे?

वह तुरन्त राजी हो गया। सिर मुड़वाने के बाद सरोवर में स्नान किया। स्नान के पश्चात् उसने देखा कि उसके पास तीन रुपये बचे हैं। उन्हें फेंक दिया। साथ की पोटली में लड्डू थे, उसे भी फेंक दिया। यहाँ तक कि धोती से कोपीन भर का कपड़ा फाड़कर बाकी कपड़ा भी फेंक दिया। कुछ देर के बाद यज्ञोपवीत भी उतारकर फेंक दिया। इस प्रकार पूर्ण रूप से वैराग्य धारण कर लिया। फिर मंदिर में जाकर ध्यानमग्न हो गया।

अरुणाचलेश मंदिर में रमण लगभग छह माह तक था। रमण की साधना और एकाग्रता देखकर पुजारियों में से एक पुजारी कृपा करके उन्हें नित्य भोजन देने लगा था। प्रात: क्रिया, भोजन के अलावा शेष समय वे आत्मसाक्षात्कार में लगाते थे। अपने ध्यान में वे इतने मग्न रहते थे कि मंदिर में कौन आया और कौन गया अथवा क्या हो रहा है, इन सब घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देते थे।

इनकी साधना से प्रभावित होकर स्थानीय लोग रमण को 'ब्राह्मण स्वामी' कहने लगे थे। सर्वदा मौन रहने वाले ब्राह्मण स्वामी की देखरेख के लिए भगवान् प्रेरित एक साधु आया जिनका नाम शेषाद्रि स्वामी था। शेषाद्रि स्वामी को स्थानीय बच्चे अक्सर ढेला मारते और तंग करते थे। यह देखकर रमण सहस्र स्तंभ के नीचे स्थित तहखाने के भीतर जाकर ध्यान करने लगे। अंधेरा, सीलन, मच्छरों के अलावा अन्य अनेक जीव थे। कीड़े-मकोड़े रमण स्वामी पर हमला करने लगे। कई जगह जख्म हो गये, पर वे निश्चल रूप में अपनी साधना में लगे रहे। गुफा के भीतर लड़कों का आना-जाना नहीं

होता था। वे बाहर से ढेले फेंककर भाग जाते थे। एक दिन यह दृश्य देखकर एक व्यक्ति भीतर गया और रमण जी को उठाकर बाहर ले आया। उस वक्त वे बेहोश थे। अनेक प्रयत्न करने के बाद वे होश में आये। उन दिनों उनकी विचित्र स्थिति थी। न खाने की चिन्ता और न वस्त्र पहनने की।

इस स्थिति में कोई उन्हें किसी वृक्ष के नीचे बैठा देता, कोई मंदिर के पास और कभी किसी दीवार के समीप। वस्तुतः उन दिनों रमण जी भाव समाधि की स्थिति में रहते थे। उन्हें अपने शरीर की कोई सुध नहीं रहती थी। धीरे-धीरे उनकी हालत चिंताजनक हो गयी। बिना सहारे उनका पैदल चलना कठिन हो गया। लोग उनसे बातचीत करके नाम-गाँव पूछना चाहते थे। हमेशा ध्यानस्थ रहने के कारण उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिलता था। इसी प्रकार दिन व्यतीत होते गये।

*   *   *

अरुणाचल पर्वत के समीप वृहद शिव का मंदिर है। शायद इसीलिए यहाँ के शिव का नाम अरुणाचलेश रखा गया। यहाँ साधना करते रहने पर कभी किसी परिचित व्यक्ति से रमण जी की मुलाकात नहीं हुई थी। स्वयं मौनी बाबा बने रहे, इसलिए लोग यह नहीं जान सके कि ब्राह्मण स्वामी कहाँ के निवासी हैं।

घटनाचक्र से किसी परिचित से इनकी माँ को यह जानकारी प्राप्त हो गयी कि उनका बेटा वेंकट रमण अय्यर आजकल अरुणाचलम् में है। वे अपने बड़े पुत्र के साथ यहाँ आयीं और घर वापस चलने के लिए कातर स्वर में निवेदन करने लगीं। लेकिन रमण किसी भी शर्त पर घर जाने को राजी नहीं हुए। माँ के अधिक शोक मनाने पर रमण ने एक कागज पर लिखा—'एक महान्-शक्ति मानव कर्मों का नियमन करती है, अतएव तुम व्यर्थ में दुःखी न हो। मैं यहाँ उस परब्रह्म की कृपा पाने के लिए साधना कर रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दो जिससे मैं अपने पथ पर अग्रसर होता चलूँ।'

बेटे की जिद्द के आगे माँ को झुकना पड़ा, पर रमण के लिए नयी मुसीबत आ गयी। लोग इस बात पर आश्चर्य करने लगे कि जन्मदात्री के स्नेह को ठुकराने वाला संत निस्सन्देह असाधारण है। बातों ही बातों में इसका प्रचार होने लगा। नतीजा यह हुआ कि उनके दर्शन तथा आशीर्वाद पाने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। इस नयी मुसीबत के कारण उनकी साधना में विघ्न पड़ने लगा।

आखिर एक दिन वे पुरानी जगह छोड़कर अरुणाचल स्थित एक गुफा में आकर रहने लगे। यह संयोग की बात थी कि इस गुफा में रमण के आने से पूर्व एक संत साधना करते थे। उनकी इच्छा के अनुसार उनके शिष्यों ने संत के परलोकवासी होने के बाद यहाँ उन्हें समाधि दे दी थी।

हमारे यहाँ यह माना जाता है कि समाधि-स्थल का प्रभाव उस स्थान से गुजरने वालों पर भी पड़ता है। प्राचीनकाल से ही ऋषि, मुनि और महात्मा गण पहाड़ की गुफाओं

में साधना करते आये हैं। एक तो एकान्त की दृष्टि से, दूसरे मैदान या जंगल से यहाँ सुरक्षा अधिक होती है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि गुरु द्वारा बीज मंत्र पाये बिना साधना अधूरी होती है। इसके विपरीत भारत में ऐसे अनेक संत हो गये हैं जो केवल ब्रह्मचर्य और आत्म संयम के माध्यम से मन पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रक्रिया में आँख, कान से कम से कम काम लेकर ध्यानस्थ होना पड़ता है। भ्रूयुगल के मध्य नेत्र एकाग्र करने का अभ्यास होने पर मन तथा नेत्र की शक्ति आपस में मिलकर साधक को ज्योति का दर्शन कराती है। कान के भीतर की अन्तर्ध्वनि की जो सूक्ष्म से सूक्ष्म होती है, सुनने लगती है। इस प्रकार मन एकाग्र होकर अन्तर जगत् के दृश्यों को देखने लगता है। साधना के इस स्तर तक पहुँचने के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है। जब इसकी उपलब्धि हो जाती है तब शरीर में उत्पन्न होने वाली ऊर्जा कुण्डलिनी शक्ति के रूप में जागृत हो जाती है। यही योगी का लक्ष्य होता है। महर्षि रमण इसी कोटि के संत थे।

महर्षि रमण ने अपने एक भक्त से एक बार कहा था—''यदि साधक जप, ध्यान, भक्ति आदि में लगा हो तो थोड़ी मात्रा में क्रिया प्राणायाम भी मन पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होगा। श्वास रूपी अश्व पर मन रूपी सवार है। प्राणायाम उस घोड़े को नियंत्रित करता है। इस नियंत्रण से सवार पर भी नियंत्रण हो जाता है। श्वास के प्रति सतर्क रहना भी इसका एक प्रकार है। अन्य कार्यों में बेसुध हुआ मन श्वास के प्रति सजग रह सकता है। इससे श्वास संयम होगा। इस प्रकार मन संयत होगा। यदि यह न कर सको तो रेचक, पूरक न किये जायँ। जप, ध्यान आदि में कुछ देर तक श्वास रोक रखा जाय। इसके भी उत्तम परिणाम निकलेंगे।''

* * *

सन् १६०५ में तिरुवन्नामलाई में जोरों से प्लेग फैला। लोग अपना-अपना घर छोड़कर अन्यत्र भाग गये। कस्बे की सड़कों पर जंगली पशु घूमने लगे। महर्षि की गुफा के आसपास बराबर जंगली पशु चक्कर काटने लगे। इसी बीच न जाने कहाँ से एक साधु आया और महर्षि रमण का शिष्य बन गया। वह नित्य देखता कि एक शेर गुफा के पास आता है। महर्षि उसे प्यार से सहलाते और वह उनके हाथों को चाटा करता था। भोर होते ही वह जंगल में चला जाता था।

एक बार एक शेर दहाड़ता हुआ जंगल से निकलकर इनके सामने आया। दोनों की नजरें आपस में टकरायीं। बिना भयभीत हुए महर्षि रमण ने इशारे से उसे एक ओर हट जाने की आज्ञा दी। एक क्षण तक वह महर्षि की ओर देखते हुए पूँछ हिलाता रहा, फिर चुपचाप बगल की झाड़ी में चला गया।

इसी प्रकार एक बार वे अपनी गुफा के पास बैठे थे। ठीक इसी समय आसपास

से एक बड़ा नाग सामने आकर खड़ा हो गया। साक्षात् यमराज की तरह जीभ निकालकर फूत्कारने लगा। इस बार भी महर्षि रमण उसे गौर से देखते रहे। थोड़ी देर बाद नाग धीरे से जमीन पर गिर पड़ा और एक ओर चला गया।

महर्षि रमण की इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने लिखा है—''श्री रमण ने संन्यास ले लिया और अवधूत बन गये। 'अवधूत' शब्द के अ, व, धू, त इन चारों अक्षरों का विशेष प्रयोजन है। पहला 'अ' अक्षरत्व या विनाशहीनता का द्योतक है और दूसरा 'व' वरेण्यत्व अथवा परमशुद्धि का। तीसरा अक्षर 'धू' धूत संसार-बंधन अर्थात् सांसारिक बंधनों को तोड़ने का प्रतिनिधित्व करता है और चौथा 'त' तत्वमसि या 'तुम्हीं हो' का मंत्रदाता है। ऐसी अवस्था की प्राप्ति सदा से धार्मिक लोगों का लक्ष्य रहा है। यदि हम अपने को आशा, आकांक्षा, उत्कंठा, भय और क्षणिक प्रलोभन में ही फँसाये रखेंगे तो अपनी आत्मा को खो देंगे।''

महर्षि रमण कभी ईश्वर की चर्चा नहीं करते थे। उनका एकमात्र कथन था कि अपने को पहचानो। 'मैं' क्या हूँ, इस पर चिन्तन करो तब तुम उस विराट् को पहचान सकोगे अन्यथा सब कुछ मछुए की तरह खो दोगे।

भक्तों के प्रश्न करने पर महर्षि ने कहा—''एक मछुआ था। सबेरे से शाम तक नदी में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ने का प्रयास करता रहा। किन्तु एक भी मछली जाल में न फँसी। सूर्यास्त के साथ उसके तन-मन पर भी नैराश्य की छाया गहरी होने लगी। भगवान् का नाम लेकर उसने एक बार और जाल डाला। किन्तु मछलियाँ इस बार भी नहीं आयीं। हाँ, एक वजनी पोटली जरूर उसके पाँव में अटकी। डुबकी लगाकर मछुए ने उस पोटली को उठा लिया। टटोला तो बोला— 'हाय' ये भी पत्थर हैं।''

मन मारकर वह नाव पर चढ़ा। ठंढी हवा चल रही थी। प्रकृति के उल्लास ने कुछ ही क्षणों में मछुए के मनस्ताप पर काबू पा लिया। नयी-नयी मोहक आशाएँ मानस पर उतरने लगीं—''कल दूसरे तट पर जाऊँगा। वहाँ इस साल कोई मछुआ नहीं गया है। पूरे सौ रुपये की मछलियाँ पकड़ूँगा। चार-पाँच हजार की मछलियाँ होंगी। इस कल्पना में खोया रहा, पर उसके हाथ सजग थे। पोटली से पत्थर निकालते हुए वह एक-एक कर नदी में फेंकता जा रहा था। थोड़े समय में पोटली खाली हो गयी। एक आखिरी पत्थर शेष रह गया। उसे भी फेंकने जा रहा था कि सहसा उस पर नजर पड़ी—वह नीलम था। उसने अपनी मुट्ठी बन्द कर ली और अपना सिर पीटने लगा।

संसार की आशा-निराशा में विक्षिप्त की तरह उलझे मनुष्य को भी एक दिन यह मनुष्य शरीर खोकर इस तरह पछताना पड़ेगा।''

महर्षि अपनी योग-साधना के अलावा प्राय: अध्ययन करते, प्रात: भ्रमण करते हुए पहाड़ी की छानबीन करते थे। आश्रम बनने के पूर्व जब उन्हें भूख लगती तब वे बस्ती में जाकर भीख माँगने में संकोच नहीं करते थे। किसी भी अपरिचित मकान के

सामने खड़े होकर ताली बजाते। गृहस्वामी के बाहर आने पर इशारे से खाने को माँगते। अगर कोई देता तो उसे खा लेते थे। किसी के घर कभी दोबारा नहीं गये।

एक दिन एक बुढ़िया इनकी उम्र और पहनावा देखकर करुणा से द्रवित हो उठी। उसने बड़े स्नेह से रमण को भोजन कराया और कहा कि अब आज से तुम मेरे यहाँ आकर नित्य भोजन करना। महर्षि रमण भीख में केवल अन्न लेते थे। धन कभी स्पर्श नहीं करते थे। वर्तमान समय में आश्रम में जो कुछ है, वह शिष्यों तथा भक्तों की देन है।

अचम्माल नामक एक युवती महर्षि की एक सेविका थी। जब उसकी उम्र पच्चीस वर्ष की हुई तभी उसके पति और दो वर्ष के भीतर पुत्र-पुत्री की मृत्यु हो गयी। इस आघात से उसका हृदय अशान्त हो उठा। जिसने जहाँ जाने को कहा, सर्वत्र गयी, पर कहीं शान्ति नहीं मिली। उसके परिचितों में से किसी ने सुझाव दिया कि तिरवन्नामलाई में एक तरुण स्वामी हैं। वे पहुँचे हुए संत हैं। उनके पास जाने पर तुम्हें शांति मिलेगी।

वह महर्षि के आश्रम में आयी और बिना कुछ बोले चुपचाप एक ओर खड़ी हो गयी। महर्षि रमण की स्निग्ध दृष्टि उस पर जम गयी। अचम्माल काफी देर तक एक स्थान पर खड़ी रही। जब वहाँ से वह रवाना हुई तब उसके दु:ख का भार काफी हल्का हो चुका था।

इस घटना के बाद वह आश्रम में आने लगी। यहाँ तक कि अपना गाँव छोड़कर तिरुवन्नामलाई में आकर रहने लगी। इसके बाद नित्य अपने हाथ से भोजन बनाकर महर्षि के पास ले जाने लगी।

एक बार उसे प्रत्यक्ष रूप से विशेष अनुभूति हुई। नित्य की तरह भोजन बनाकर जब आश्रम के निकट आयी तो देखा—महर्षि पहाड़ी के नीचे किसी से बातें कर रहे हैं। उसने सोचा कि महर्षि जब ऊपर चलेंगे तो वह भी उनके साथ चलेगी। लेकिन महर्षि बातचीत में व्यस्त रहे।

यह देखकर वह भोजन लेकर ऊपर की ओर रवाना हो गयी। ज्योंही उसने आगे कदम बढ़ाया त्योंही उसने सुना कि महर्षि कह रहे हैं—"दूर क्यों जाती हो, जबकि मैं यहाँ हूँ।"

फिर भी वह भोजन लेकर पहाड़ पर स्थित आश्रम में पहुँच गयी। वहाँ का दृश्य देखकर उसके पैर थरथर कर काँपने लगे। महर्षि अपने आसन पर बैठे एक शास्त्री से वार्तालाप कर रहे हैं। उससे जब इसका कारण पूछा गया तब उसने कहा—"स्वामिन्, अभी मैंने आपको नीचे सद्‌गुरु स्वामी की कन्दरा के पास किसी से बातें करते देखा। आपने यह भी कहा कि दूर क्यों जाती हो जब मैं यहाँ हूँ। जब पीछे मुड़कर मैंने देखा तो वहाँ कोई नहीं था।"

शास्त्री जी ने कहा—"स्वामिन्, आपकी कृपा इस महिला पर हो गयी, पर मैं अभी तक यह प्रसाद नहीं पा सका।"

महर्षि ने कहा—''अचम्माल को भ्रम हो गया है, क्योंकि यह दिन-रात मेरा ध्यान करती है।''

महर्षि रमण योग-विभूतियों का प्रदर्शन करना पसन्द नहीं करते थे। स्वत: अपने आप जो हो जाय, उसके प्रति खेद प्रकट नहीं करते थे।

परमहंस रामकृष्ण चमत्कारों को 'विष्ठा' कहा करते थे। परमहंस विशुद्धानन्द का कहना था कि इससे योगी की शक्ति नष्ट हो जाती है। महर्षि भी इसी विचारधारा के थे। उन्होंने अपनी साधना के माध्यम से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। एक दिन के संस्मरण के बारे में आपने कहा था—''कुछ वर्ष पहले की घटना है। एक दिन मैं नीचे लेटा हुआ था। मैंने स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया कि मेरा शरीर ऊपर उठ रहा है। मैं प्रत्यक्ष रूप से देख रहा था कि नीचे के सारे दृश्य छोटे होते जा रहे हैं और धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। मेरे चारों ओर अपूर्व प्रकाश फैलता जा रहा है। कुछ देर बाद मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा शरीर धीरे-धीरे नीचे उतर रहा है और नीचे का लुप्त दृश्य नये सिरे से प्रकट हो रहा है। इस घटना के कारण मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि योगीगण इन्हीं साधनों से आकाश में उड़ते हैं, दूर-दूर की यात्राएँ करते हैं और रहस्यमय ढंग से प्रकट और लुप्त हो जाते हैं। जब मेरा शरीर इस प्रकार भूमि पर उतरा तो मुझे लगा मैं अब तक तिरुवोथियुर में था। जबकि मैंने इस स्थान को पहले कभी नहीं देखा था। बाद में मैंने अपने को सड़क पर पाया और उस पर चलने लगा। कुछ दूर आगे गणपति मंदिर दिखाई दिया और तब मैं उसके भीतर चला गया।''

वहाँ आया हुआ अंग्रेज एक बार जंगल में भटक गया। उसने मन ही मन महर्षि का स्मरण किया और वे प्रकट हुए। उन्होंने उक्त वृद्ध अंग्रेज को आश्रम का रास्ता बताया। आश्रम लौटने पर जब लोगों ने उससे देर होने का कारण पूछा तो उसने सारी घटना कह सुनायी। उसकी कहानी सुनकर लोग चकित रह गये, क्योंकि महर्षि क्षण भर के लिए कक्ष से कहीं बाहर नहीं गये थे।

इसी प्रकार एक घटना श्री रुद्रराज पाण्डे के साथ हुई थी। वे तिरुवन्नामलाई में अरुणाचलेश मंदिर दर्शन करने गये। शिवलिंग पर नजर उठते ही उन्होंने देखा कि वहाँ महर्षि रमण बैठे हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ। आँखें मींजने के बाद अब जो दृश्य देखा, उसे देखकर वे और भी विस्मित हुए। अब जिधर उनकी दृष्टि जाती, उधर ही महर्षि रमण दिखाई देने लगे। एक-दो नहीं, बल्कि सहस्त्रों महर्षि उनकी नजरों के सामने थे।

गणपति शास्त्री तत्कालीन भारत के प्रकाण्ड पंडित थे। एक बार वे अरुणाचलेश मंदिर दर्शन के लिए आये तो पता चला कि यहाँ एक बाल-योगी साधना कर रहा है जो अद्‌भुत प्रतिभावान है। उत्सुकतावश वे महर्षि रमण के पास आये।

शास्त्रीजी असाधारण विद्वान् थे। उनके बारे में कहा जाता है कि बारह वर्षों तक वे बराबर धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। सिद्धि प्राप्त करने के लिए कुछ दिनों

तक तपस्या कर चुके थे। इतना होने पर भी वे अतृप्त थे। उन्हें अपनी शंकाओं के उत्तर किसी से प्राप्त नहीं हुए थे।

महर्षि के पास आकर उन्होंने अपनी शंका प्रकट की। उनकी प्रत्येक शंका का समाधान महर्षि ने कुशलतापूर्वक किया। महर्षि की इस दैवी प्रतिभा से प्रभावित होकर गणपति शास्त्री ने उनके चरण-स्पर्श कर प्रणाम करते हुए कहा—''स्वामिन्, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।''

महर्षि मुस्कराये। गणपति जितने बड़े विद्वान् थे, उतनी बड़ी उनकी शिष्य मण्डली भी थी। शास्त्री जी के शिष्यों के कारण महर्षि की ख्याति चारों ओर फैल गयी। स्थानीय नागरिक रमण को 'भगवान्' कहते थे, पर अब वे गणपति जी के कारण विद्वत्जनों में 'महर्षि' कहलाने लगे।

इसी बीच अपने पुत्र से मिलने के लिए अलगम्माल अरुणाचल आयी। यहाँ अपने पुत्र की मान-प्रतिष्ठा देखकर वह आनन्द से विभोर हो उठी। पति की मृत्यु काफी पहले हो गयी थी। इसी बीच बड़े पुत्र तथा परिवार के कई सदस्यों का निधन हो गया था। एक प्रकार से अलगम्माल असहाय हो गयी थी। माँ ने पुत्र से कहा—''अब मैं तेरे पास रहते हुए शेष जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।''

महर्षि ने माँ के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। आश्रम में रहते हुए अलगम्माल ने रसोईंघर की सारी जिम्मेदारी सम्हाल ली। इस प्रकार वे आश्रमवासियों की सेवा करती रहीं। पुत्र की साधना तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्होंने महर्षि से दीक्षा ले ली। आश्रम में वे छह वर्ष तक रहने के बाद परलोक सिधार गयीं। महर्षि के भक्तों ने वहीं उनकी समाधि बना दी। वहाँ अब दिन-रात दीपक जलते हैं।

महर्षि को घूमने की आदत थी। एक दिन वे पहाड़ की ढलान पर टहल रहे थे। अचानक एक पीपल का पत्ता उड़कर उनके सामने गिरा। उस पत्ते को देखकर महर्षि चकित रह गये। वह पत्ता इतना बड़ा था कि उस पर एक आदमी को भोजन परोसा जा सकता था। आम तौर पर पीपल का पत्ता इतना बड़ा नहीं होता। वे झरने के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगे। उन्होंने अनुमान लगाया कि आसपास कहीं पीपल का वृक्ष होगा जहाँ से यह उड़कर आया है।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर पीपल का वह वृक्ष दिखाई दिया। कुतूहलवश वे और आगे बढ़े। शायद अनजाने में ततैया के छत्ते पर पैर पड़ गया। क्रोध में सभी ततैयों ने हमला बोल दिया। महर्षि ने सोचा—मैं आगे न बढ़ूँ, इसलिए यह सजा मिल रही है। वे शान्त भाव से ततैयों के दंशनों की पीड़ा सहन करते रहे। बाद में आश्रम वापस आ गये। महर्षि की फूली हुई टाँगों को देखकर सभी भयभीत हो उठे।

महर्षि ने उन्हें बताया कि कैसे यह दुर्घटना घटी। कुछ लोग उत्सुकतावश वहाँ जाने को प्रस्तुत हुए। महर्षि ने उन्हें मना कर दिया।

एक दिन एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण महर्षि का टहलना बन्द हो गया।

नित्य की भाँति वे टहलते हुए एक वृद्ध महिला के पास से गुजरे। वह शायद लकड़हारिन थी। अपनी भाषा में कहने लगी—''अरे नासपीटे, तेरा सत्यानाश हो। क्या तू एक जगह चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। बेकार घूमता क्यों है?''

महर्षि चुपचाप आश्रम लौट आये। बाद में उन्होंने सोचा—लकड़हारिन के रूप में यह कोई असाधारण महिला थी। कोई भी अछूत औरत इस तरह बेहूदा बातें मुझे नहीं कह सकती। इस घटना के बाद से उनका टहलना बन्द हो गया।

महर्षि रमण के जीवन में भी कभी-कभी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुई हैं। एक बार आप अपने भक्तों के साथ पहाड़ के नीचे सैर कर रहे थे। अचानक आपको भूख और प्यास सताने लगी। यहाँ खाने लायक कोई सामग्री नहीं थी। एकाएक बन्दरों का झुंड आया और पास के अंजीर के पेड़ पर चढ़कर उसे खूब हिलाने लगा। आसपास का क्षेत्र अंजीरों से भर गया। आश्चर्य की बात यह हुई कि किसी बन्दर ने एक भी अंजीर को छुआ तक नहीं।

बन्दरों के बारे में आपका एक और संस्मरण भी काफी रोचक है—''साधारणतः बन्दर पालतू बन्दर का बहिष्कार कर देते हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में मैं अपवाद था। जब कभी बन्दरों में कोई गलतफहमी पैदा हो जाती या लड़ाई होती तब वे मेरे पास आते और मैं उन्हें शान्त कर देता था। इस तरह उनकी लड़ाई बन्द हो जाती। एक बार एक बन्दर को उसकी टोली के किसी बन्दर ने काट लिया। वह घायल होकर आश्रम के पास पड़ा रहा। उसे आश्रम में लाकर उसकी सेवा की गयी। वह लँगड़ाकर चलता था, इसलिए उसका नाम 'लंगड़दीन' रखा गया। चार-पाँच दिन बाद उसके साथी उसे देखने आये और अपने साथ ले गये। आश्रम का बचा हुआ भोजन बाहर रख दिया जाता था जिसे बन्दर खाते थे, पर लंगड़दीन सीधे मेरी गोद में आ जाता और पत्तल उठाकर खाता था। आश्चर्य की बात यह है कि खाते समय एक भी चावल गिरता नहीं था। असावधानी के कारण अगर गिर जाता तो उसे उठाकर खा लेता था।''

आम तौर पर महर्षि रमण शांत रहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि उन्हें औरों से विशिष्ट समझा जाय। खाद्य पदार्थों में अगर कभी कोई सामग्री स्वादिष्ट बनती और उन्हें अधिक परोस दी जाती तो वे नाराज हो जाते थे। शिष्टाचार का उन्हें बराबर ध्यान रहता था। जिस प्रकार ज्योतिर्गिरि अरुणाचल चारों ओर घिरी रहने वाली पर्वतावली से दूर अकेले खड़ा है, उसी प्रकार महर्षि भी अपने चारों ओर श्रद्धालु शिष्यों तथा भक्तों से घिरे रहने पर भी दूर किसी रहस्यमय जगत् में रहते थे।

* * *

पाल ब्रण्टन की तरह एफ० एच० हम्फ्रीज नामक एक अंग्रेज भारत आने के पूर्व यहाँ के संतों की योग विभूतियों से परिचित था। भारत में जब वह आया तब उसकी उम्र २१ वर्ष थी। उसे वैल्लोर में पुलिस अफसर के पद पर कार्य करने के लिए नियुक्त

किया गया था। अंगरेजों में एक विशेषता यह होती थी कि वे जिस क्षेत्र में नियुक्त होते थे, वहाँ की भाषा समझने का प्रयत्न करते थे। तेलुगू भाषा सीखने के लिए उसने नरसिंहैय्या नामक एक अध्यापक को नियुक्त किया।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन उसने अपने अध्यापक से पूछा—''क्या आप किसी महात्मा को जानते हैं?''

नरसिंहैय्या ने नकारात्मक उत्तर दिया। दूसरे दिन जब वे पढ़ाने आये तब हम्फ्रीज ने पूछा—''कल आपने बताया कि आप किसी महात्मा को नहीं जानते। आज सबेरे मैंने इसी जगह आपके गुरु को देखा। उन्होंने मुझे कुछ कहा जिसे मैं समझ नहीं सका।''

नरसिंहैय्या को लगा कि हम्फ्रीज धूर्तता से काम ले रहा है। वे चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

हम्फ्रीज ने आगे कहा—''बम्बई से जब मैं वैल्लोर के लिए रवाना हो रहा था तब तुम्हीं वह पहले व्यक्ति थे जिनसे मैं मिला था।''

नरसिंहैय्या ने कहा—''यह झूठ है। मैंने आज तक बम्बई में पैर नहीं रखा।''

हम्फ्रीज ने नरसिंहैय्या की आपत्ति की परवाह किये बिना कहा—''जब मैं जहाज से बम्बई उतरा तब तेज बुखार था। मुझे अस्पताल ले जाया गया। उस पीड़ा के वक्त मेरे दिमाग में वैल्लोर का ध्यान था। अगर मैं बीमार न पड़ता तो सीधे वैल्लोर भेज दिया जाता। दरअसल मैं सूक्ष्म शरीर से वैल्लोर पहुँचा था।''

नरसिंहैय्या ने सोचा—शायद इसने स्वप्न देखा होगा। उसने कुछ फोटो मेज पर रखे। उन फोटो में से गणपति शास्त्री का फोटो निकालकर हम्फ्रीज ने कहा—''ये हैं आपके गुरु।''

अब नरसिंहैय्या को विश्वास हो गया कि हम्फ्रीज ने अब तक जो कुछ कहा है, वह सब सही है। उन्होंने स्वीकार किया कि गणपति शास्त्री मेरे गुरु हैं।

इस घटना के कुछ दिनों बाद हम्फ्रीज ने उटकमण्ड से लौटने पर पुनः नरसिंहैय्या को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने अरुणाचल पर्वत, नदी और रमणाश्रम का चित्र खींचा। आश्रम के बाहर एक महर्षि खड़े हैं। इसका चित्र बनाया।

इस बार नरसिंहैय्या को स्वीकार करना पड़ा कि यह भगवान् रमण के आश्रम का चित्र है। यही नहीं, उन्होंने गुरु के बारे में भी बताया।

इस घटना के बाद हम्फ्रीज महर्षि रमण के आश्रम में गये और लम्बी बातचीत की। वहाँ उन्होंने भोजन भी किया।

महर्षि रमण न केवल भोजन का ही बल्कि हर प्रकार के शिष्टाचार का ध्यान रखते थे। एक बार उनका दर्शन करने के लिए योरोप से कुछ लोग आये। इस दल में एक महिला भी थी। उसे पालथी मारकर बैठने की आदत नहीं थी। वह कक्ष में पैर फैलाकर बैठी हुई थी। यह दृश्य देखकर एक सेवक ने पालथी मार कर बैठने का आदेश दिया। बेचारी महिला ने तुरन्त पैर सिकोड़ लिए।

यह दृश्य महर्षि की निगाहों से छिपा नहीं रहा। गठिया-रोग से पीड़ित होने के कारण महर्षि अपने पैर फैलाये हुए थे। महिला को पैर सिकोड़ते देख वे भी पालथी मारकर बैठ गये। उन्हें कष्ट होने लगा।

भक्तों ने अनुरोध किया कि भगवान् पैर फैलाकर बैठें। महर्षि ने कहा— "आश्रम का जब यह नियम है तो अन्य व्यक्तियों की तरह मुझे भी पालथी मारकर बैठना चाहिए। अगर पैर फैलाकर बैठना अनादर करना है तो मेरे पैर फैलाने से सभा-भवन के सभी लोगों का अनादार करना है।"

आखिर उस सेवक को महिला के निकट जाकर क्षमा माँगते हुए कहना पड़ा कि आप पैर फैलाकर बैठ सकती हैं।

इसी प्रकार भोजन के मामले में भी महर्षि सतर्क दृष्टि रखते थे। भोजन के बाद सभी लोगों को काफी नहीं दे जाती थी। कुछ लोगों को पानी दिया जाता था। महर्षि ने भी पानी की माँग की। जब वे पानी पी चुके तब उनके लिए नियमानुसार काफी आयी। उन्होंने उसे पीने से इनकार कर दिया। आश्रम में भोजन सम्बन्धी नियम बनाये गये थे, जिनका पालन कड़ाई से होता था। महर्षि कभी इसमें व्यतिक्रम देखते तब प्रश्न करते। सबसे पहले आश्रम में कुत्तों, मोरों और गायों को भोजन दिया जाता था। इसके बाद भिखारियों को, सबके अन्त में भक्त और आश्रम के लोग प्रसाद पाते थे।

* * *

श्री सुन्दरेश अय्यर नामक एक सज्जन महर्षि के भक्त थे। अचानक उनकी बदली किसी अन्य शहर में हो गयी। वे चिंतित हो उठे। तुरन्त महर्षि के पास आकर रोने लगे।

बोले—"पिछले चालीस वर्षों से मैं भगवान् (महर्षि रमण) के साथ हूँ और अब दूर जाना पड़ेगा। मैं भगवान् के बिना कैसे रहूँगा?"

महर्षि ने उपस्थित भक्तों की ओर देखते हुए कहा—"यहाँ एक ऐसे भक्त हैं जो चालीस वर्षों से भगवान् का उपदेश सुन रहे हैं और अब कह रहे हैं कि भगवान् से दूर जा रहे हैं।"

महर्षि की कृपा से उनका तबादला रुक गया।

महर्षि के पास एक दिन एक ऐसा व्यक्ति आया जो पीड़ा से कराह रहा था। वह यही कामना लेकर आया था कि भगवान् उसके दर्द को दूर कर दें। सभा-कक्ष में वह एक ओर बैठा चिल्लाने लगा। महर्षि एक टक उसकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद उसका कराहना बन्द हो गया। दर्द गायब होने के बाद वह उठा और महर्षि को साष्टांग प्रणाम कर चला गया।

महर्षि के भक्तों में राजगोपाल अय्यर एक सज्जन थे। इनके पुत्र का नाम रमण था। नित्य राजगोपाल जी उसे अपने साथ लेकर शाम को महर्षि का दर्शन करने आते

थे। तीन वर्ष का वह बालक बहुत चंचल और हँसमुख था। महर्षि के समीप आते ही उन्हें दण्डवत् करता था।

एक दिन दर्शन करके जब लोग घर लौट रहे थे तब इस बालक को साँप ने काट लिया। देखते ही देखते लड़के का सारा शरीर नीला हो गया। डॉक्टर के पास जाने के बदले अय्यर जी उसे उठाकर महर्षि के पास ले आये। साथ के लोगों ने विवरण सुनाया।

महर्षि ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—''रमण, तुम बिलकुल ठीक हो। उठो।''

महर्षि के स्पर्श से बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया।

* * *

श्री के० आर नम्बियार महर्षि के भक्त थे। बात यह हुई कि सन् १६३३ ई० के दिनों अपने एक मित्र की जबानी महर्षि की अलौकिक शक्ति का परिचय पाकर वे प्रभावित हुए। समय निकालकर एक दिन वे तिरुवन्नमलाई पहुँचे और सीधे आश्रम में महर्षि के निकट पहुँच गये। साष्टांग प्रणाम करने के बाद वे एक ओर चुपचाप बैठ गये। आगे की कहानी उनकी जबानी सुनिये—

''लगभग एक घंटा वहाँ बैठा रहा। यद्यपि इस बीच हम दोनों में एक भी शब्द का आदान-प्रदान नहीं हुआ तथापि एक अवर्णनीय शांति मेरे रोम-रोम में भर गयी। जब मैं महर्षि से विदा लेकर वापस आने लगा तब ऐसा लगा जैसे मेरा हृदय उस दिव्य पुरुष की ओर अनायास खिंचा जा रहा है और चलने का प्रयास करने पर भी मेरे पाँव आगे नहीं बढ़ रहे हैं। मेरे हृदय की उस समय की दशा कालिदास के इन शब्दों में सही रूप में व्यक्त होती है—

या स्यति पुरश्शरीरम् धावति हश्चादसंस्तुतः चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नोयमानस्य ॥

इसके बाद जब कभी अवसर मिला, आश्रम चला जाता था। मेरे लिए एक कठिनाई यह थी कि अपनी नौकरी के कारण मैं तिरुवन्नामलाई में अधिक समय तक रुक नहीं पाता था। मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करता कि वे कुछ ऐसी व्यवस्था कर दें ताकि महर्षि का सान्निध्य मुझे प्राप्त हो।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मेरी प्रार्थना सुनी गयी और मैं उत्तरी अर्काट जिले का इंजीनियर बना दिया गया। अब मेरा सदर मुकाम तिरुवन्नामलाई हो गया। मैं प्रतिदिन आश्रम जाने लगा। महर्षि में मेरा विश्वास तेजी से दृढ़ होता गया।

हर सप्ताह एकाध घटना ऐसी हो जाती थी जिससे मुझे यह ज्ञात हो जाता था कि भगवान् (महर्षि) का वरदहस्त प्रत्येक भक्त पर रहता है।

एक दिन मैं अपनी शंका-समाधान के लिए कुछ सोचकर महर्षि के पास गया, पर संध्या-पूजन आदि के समय मैं अपना प्रश्न प्रस्तुत नहीं कर सका। इसी ऊहापोह

में घर चला आया। दूसरे दिन भोर के समय अर्द्ध निद्रा में देखा कि मेरे सामने महर्षि खड़े हैं और मेरे प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यह वही प्रश्न थे जिसे पूछने के लिए मैं कल शाम को गया था। उन्होंने मुझसे एक नोट बुक की माँग की और फिर अंतर्धान हो गये।

इस स्वप्न का मेरे मानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रातः क्रिया से निवृत्त होकर बाजार से एक नोट बुक खरीदने के पश्चात् आश्रम में आया। आश्रम में आते ही मैंने नोट बुक महर्षि की ओर बढ़ाया।

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—''यह नोट बुक क्यों दे रहे हो?''

मैंने भोर के स्वप्न की सारी कहानी सुना दीं। मेरी बातें सुनने के बाद महर्षि ने आश्रम के माधव स्वामी को बुलाकर कहा—''श्री रमण गीता का संस्कृत से मलयालम में अनुवाद करने के लिए मैंने कल तुमसे एक नोट बुक माँगा था। तुम तो लाये नहीं। किन्तु देखो, नम्बियार ले आया।''

इस घटना का प्रभाव उपस्थित महर्षि के भक्तों पर पड़ा जो कुतूहल से मेरी ओर देख रहे थे।

एक और घटना की याद आ रही है। आश्रम में श्रीधर नामक गोवा का एक साधक था। एक दिन स्वप्न में मैंने उसे पद्मासन की स्थिति में प्राणायाम करते देखा। उसके शरीर में प्रकाश की लहर नीचे से ऊपर की ओर उठ रही थी। भगवान् ने जो उस समय पास ही खड़े थे, यह देखकर कहा—''साँस रोकने की इस कलाबाजी से कोई लाभ नहीं। मैंने जो आत्म-चिंतन का मार्ग बतलाया था, वह कहीं सरल और उपयुक्त है।''

दूसरे दिन जब मैं आश्रम में गया तो जान-पहचान न होते हुए भी मैंने श्रीधर को सारा स्वप्न सुनाया। उसने मुझे गले लगा लिया और अत्यन्त आनन्दित होकर बोला—''भाई, मैं सचमुच भगवान् से यही पूछने को सोच रहा था। जिस प्राणायाम को मैं कई वर्षों से करता आ रहा हूँ, उसे जारी रखूँ या छोड़ दूँ? मुझे तो प्रश्न पूछने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु भगवान् ने स्वयं तुम्हारे द्वारा उत्तर पहुँचा दिया।''

महर्षि रमण के, अपने भक्तों को ज्ञान देने के इसी तरह के रहस्यमय तरीके थे। भक्त उन्हें हमेशा अपने पास देखते थे। चाहे वे आश्रम में हों या कहीं और। संसार में ऐसे अनेक भक्त हैं जिन्होंने विचारों में ही उनसे साक्षात्कार किया, उनकी निकटता अनुभव की तथा उनसे वरदान प्राप्त किया।

सन् १९४५ ई० के दिनों मैं इंग्लैण्ड में था। वहाँ ८० वर्षीया एक वृद्धा श्रीमती विक्टोरिया डो से मिलने गया। वह १७ मार्टिस एवेन्यू में अपनी बेटी के साथ रहती थी। उसने कभी महर्षि के दर्शन नहीं किये थे, फिर भी उसके हृदय में महर्षि के लिए जो अगाध भक्ति थी, उसे देखकर मैं चकित रह गया।

उसने मुझे बताया कि उसके हृदय में भारत जाकर महर्षि के दर्शन करने की कितनी तीव्र इच्छा थी, किन्तु परिस्थितिवश वहाँ नहीं जा सकती। उसकी यह भी इच्छा

थी कि कम-से-कम एक ऐसे आदमी से उसकी मुलाकात हो जाय जिसने महर्षि को अपनी आँखों से देखा हो और जो उनके निकट रहा हो। उसने आश्रम से आये अनेक पत्रों का संकलन सावधानी से कर रखा था। रमणाश्रम से प्रकाशित सभी साहित्य उसके पास था। उन पुस्तकों के पृष्ठ उलटती हुई वह बोली—''मिस्टर नम्बियार, तुम कितने सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें भगवान् के पास रहने और उनके मुँह से उपदेश सुनने का अवसर मिला है। यहाँ मैं उनके पत्रों और पुस्तकों का संकलन-मात्र कर पाती हूँ। ये मुझे उन्हीं की प्रतीक लगती हैं। इन्हें पढ़ते समय मुझे ऐसा लगता है जैसे वे मेरे पास हैं।''

महर्षि की एक और उपासिका श्रीमती एलिनर पालिन नोये से मेरी मुलाकात अमेरिका में हुई। श्रीमती नोये एक बार भारत आयी थीं और कुछ महीने आश्रम में रह चुकी हैं। मैं उनसे मिलने के लिए वाननुई गया।

मुझे देखते ही उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। बेचारी अभिवादन के शब्द नहीं बोल सकीं। उनसे घंटों भगवान् के बारे में बातें करते रहे। विदा लेने के पहले हमने आँखें बन्द कर भगवान् रमण का ध्यान भी किया, जिनका भौतिक शरीर हमसे हजारों मील दूर था। पर उन कुछ क्षणों में हमें अपार शांति मिली।

भगवान् रमण ने देश-काल-निरपेक्ष पूर्ण ब्रह्म से साक्षात्कार कर लिया था, इसलिए सम्भवतः वे ऐसी चमत्कारिक घटनाओं को महत्व नहीं देते थे। जीवन रूपी स्वप्न और जीवन के सपने दोनों उनके लिए समान मूल्य रखते थे।

एक दिन मैंने महर्षि से प्रश्न किया—''ऋषिगण तो मानवता की रक्षा के लिए जीवन-धारण करते ही हैं, पर आजकल लोग भौतिकता में इतने डूबे हैं कि वे उन बातों पर विश्वास नहीं करते जिन्हें हम भौतिक इन्द्रियों से अनुभव न कर सकें। इन नास्तिकों को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर ही आध्यात्मिकता की ओर क्यों न मोड़ा जाय? आखिर ईसामसीह के चमत्कारों पर ही तो ईसाई धर्म की भी बुनियाद खड़ी है।''

महर्षि गम्भीर हो गये। मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर उन्होंने मुझसे पूछा—''क्या तुम ऐसा समझते हो कि प्राचीन सिद्ध ऋषि-मुनि अपने जानते में चमत्कार दिखाते थे?''

इस जवाब से मेरी आँखों के सामने सत्य प्रकाशित हो उठा।

* * *

श्री गणपति शास्त्री महर्षि का शिष्य बनने के बाद निरंतर उनकी कृपा प्राप्त करते रहे। एक बार जब वे गणपति के मंदिर में ध्यान कर रहे थे तब उनके मन में भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो उठी।

ठीक उसी समय महर्षि ने मंदिर में प्रवेश किया। गणपति शास्त्री ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ज्यों ही वे जमीन से उठे त्यों ही अपने मस्तक पर महर्षि के हाथ का

स्पर्श अनुभव किया। इस स्पर्श से उनके समस्त शरीर में अजस्र शक्ति की धारा प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार उन्होंने गुरु से स्पर्श के माध्यम से अनुकम्पा का प्रसाद प्राप्त किया।[1]

इसी प्रकार श्री पाल ब्रण्टन ने महर्षि से कृपा प्रसाद प्राप्त किया था। वह भारत से वापस जा रहा था, पर एक पत्र के पाते ही, जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है, ठीक उसी प्रकार महर्षि रमण का आकर्षण उसे पुनः अरुणाचल खींच लाया। यहाँ वह एक अर्से तक निवास करता रहा।

बीच-बीच में अपनी शंकाओं का समाधान करता रहा। उसने कई संतों और योगियों से मुलाकात की और उनकी भविष्यवाणियों का सही विवरण भी दिया। एक दिन उसने पूछा—"योगी लोगों का कहना है कि सत्य की खोज के लिए संसार त्याग करके निर्जन वन और पर्वतों का आश्रय लेना पड़ता है। क्या आप योगियों के इस मत से सहमत हैं।"

महर्षि रमण—"कर्म-संन्यास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम नित्य एक-दो घण्टे तक ध्यान करोगे तो सांसारिक कर्त्तव्यों का त्याग करने की जरूरत नहीं होगी। यदि तुम ठीक मार्ग पर ध्यान करोगे तो उससे एक प्रकार की विचारधारा उत्पन्न होगी। फिर तुम कोई भी काम करते रहो, वह धारा तुम्हारे तन-मन में बहती रहेगी। ध्यान में तुम जिस मार्ग का अनुसरण करोगे, वह तुम्हारे कार्य-कलाप में भी प्रकट करेगा ही।"

पाल ब्रण्टन—"उस मार्ग का अनुसरण करने से क्या फल मिलेगा?"

महर्षि रमण—"मार्ग पर आरूढ़ होकर जैसे-जैसे तुम उन्नति करने लगोगे, वैसे-वैसे लोगों के प्रति और अन्य घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रति जो तुम्हारा दृष्टिकोण है, उसमें क्रमशः भारी परिवर्तन नजर आने लगेगा। तुम्हारे कार्यकलाप आप ही आप तुम्हारे ध्यान मार्ग का अनुसरण करने को उन्मुख हो जायेंगे। इस संसार में साधक को अपने निजी स्वार्थ का समर्पण कर डालना होगा। अपने झूठे अहं को छोड़ देना ही संन्यास है।"

पाल ब्रण्टन—"गोया आप योग-मार्ग का उपदेश नहीं देते?"

महर्षि रमण—"जैसे ग्वाला हाथ में लकड़ी लेकर बैल को गन्तव्य स्थल की ओर ले जाता है, योगी भी उसी तरह अपने गन्तव्य स्थल की ओर ले चलता है। लेकिन इस मार्ग में जिज्ञासु हाथ में घास-फूस लिए बैल को ललचाते हुए गन्तव्य स्थल तक पहुँचा देता है।"

पाल ब्रण्टन—"ऐसा कैसे किया जा सकता है?"

महर्षि रमण—"तुम्हें अपने से प्रश्न करना होगा कि मैं कौन हूँ? इसी खोज का अनुसरण करने से तुम्हें अपने अन्दर ही एक ऐसी चीज दिखाई देगी जो मन के भी परे है। जब महान् समस्याओं को सुलझा लोगे तो उसी से अन्य सभी समस्याएँ सुलझ जायेंगी। आज का मानव शाश्वत आनन्द पाना चाहता है जिसमें दुःख की छाया

१. महर्षि रमण, श्री आर्थर आसबोर्न।

न हो। उनकी यह वासना एकदम सच्ची और सही है। अब सोचो, क्या यह सही नहीं है कि ये सभी लोग अपने आपको सबसे अधिक प्यार करते हैं? क्या यह सही नहीं है कि ये लोग किसी न किसी जरिये आनन्द पाना चाहते हैं? चाहे शराब पीकर, खेलकूद या मनोरंजन के जरिये या धार्मिक बनकर? अगर इन दोनों बातों का एक साथ ध्यान करके देखोगे तो मानव के असली स्वरूप का तुम्हें मूलमंत्र मिल जायगा।''

पाल ब्रण्टन ने संकोच के साथ पूछा—''आपकी बात समझ में नहीं आयी।''

महर्षि रमण—''मानव की सहज स्थिति, सहज प्रकृति आनन्द भोगी है। आत्मा का यह सहज रूप है। आनन्द के लिए मानव की जो खोज है, वह वास्तव में एक अव्यक्त, एक अज्ञात आत्म अन्वेषण ही है। सद् आत्मा अविनाशी है, अव्यय है, अमर है। जब मानव उसे पहचान पाता है तब वह एक अव्यय, नित्य भागी बन जाता है, अमर हो जाता है।''

पाल ब्रण्टन—''क्या सभी मानव? इनमें अधिकांश बदमाश, लुच्चे लफंगे भी तो हैं।''

महर्षि रमण—''हाँ। वे भी अपने हर पाप में अपनी आत्मा का ही सच्चा आनन्द पाने की चेष्टा करते हैं। आनन्द पाने की वह चेष्टा मानव के लिए स्वाभाविक है। लेकिन वे यह नहीं जानते कि वे अपनी सद् आत्मा की ही वास्तव में खोज कर रहे हैं, इसलिए पहले पहल उसे आनन्द का साधन मानकर कुमार्ग पर चल पड़ते हैं। निःसन्देह वे बुरे मार्ग ही हैं, क्योंकि मानव कर्मों की छाया उसी पर ही तो पड़ती है।''

कुछ देर चुप रहने के बाद महर्षि ने एक बोधकथा के माध्यम से अपनी बातों को स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा—''एक भेड़ को एक दिन रास्ते में सिंह का एक बच्चा मिला। शायद वह अपनी माँ से बिछड़ गया था यह वह मर गयी थी। भेड़ में मातृ वात्सल्य जाग उठा। सिंह शावक को अपने साथ ले आयी। जैसे अपने बच्चों को वह स्तन-पान कराती थी, उसी प्रकार इसे भी अपना दूध पिलाने लगी। धीरे-धीरे सिंह शावक बड़ा हुआ, पर सिंह के रूप में नहीं, भेड़ के व्यक्तित्व में। भेड़ों की तरह घास चरता, जंगली जानवरों को देखकर डर जाता।

अचानक एक दिन एक शेर इधर आ गया। शेर को देखते ही सभी भेड़ें भाग खड़ी हुई। जान सभी को प्यारी होती है। स्वभाव के अनुसार सिंह शावक भी भागा। पूरा दल भागते-भागते एक जलाशय के निकट पहुँचा। प्यास लगी थी। सभी पानी में अपना-अपना मुँह डालकर पानी पीने लगे। सहसा अपनी आकृति देखकर सिंह शावक चौंक उठा। अरे, मैं भी तो सिंह हूँ।

दूसरे ही क्षण उसके सिंहनाद से वन का कोना-कोना काँप उठा।

आत्मज्ञान होने पर व्यक्ति भी अपने भीतर के विराट् को इसी प्रकार पहचान लेता है।''

महर्षि रमण के यहाँ कुछ दिनों तक निवास करने तथा उनकी कृपा पाने से

ही पाल ब्रण्टन ध्यान लगाने लगे। इस दिशा में उन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई। वे भारत जिस उद्देश्य से आये थे, उसकी पूर्ति हो गयी थी। यहाँ तक कि दो घंटे तक समाधि लगाकर आत्म चिन्तन करने लग गये थे। इस साधना में उन्हें न केवल इष्ट के दर्शन हुए बल्कि अनेक प्रकार के अलौकिक दर्शन हुए हैं। इस बारे में वे लिखते हैं—

''मैं कैसे बताऊँ कि इसके आगे मुझे कौन-कौन सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं। वे इतनी सूक्ष्म और कोमल थीं कि लेखनी भी उनका बयान करने में लज्जित होकर गड़ जायगी। फिर भी ज्योति मंडल में विहार करने वाले उन सत्य प्रकाशों की मर्त्य भाषा में एक झलक दिखाने की चेष्टा कदापि व्यर्थ नहीं हो सकती। दिलेरी के साथ मनोजगत् के परे अनंतता के छोर तक फैलने वाले अज्ञात किन्तु विचित्र विश्व की संस्मृतियों का एक अस्पष्ट चित्र खींचने की चेष्टा करूँ तो वह क्षम्य होंगी।''

❋ ❋ ❋

सन् १९४९ ई० में महर्षि रमण की बायीं बाँह में एक गाँठ उभरी जो वास्तव में कैंसर थी। भक्त चिन्तित हो उठे। पूरे वर्ष भर में चार बार डॉक्टरों ने आपरेशन किया और हर बार गाँठ उभर आती। अन्त में डॉक्टरों ने जवाब दे दिया।

भक्तों की चिन्ता देखकर उन्होंने कहा—''तुम लोग लकड़ी के अरार पर लकड़ी खरीदने जाते हो। मजदूर उसे उठाकर ले चलता है। उसे अपने गन्तव्य स्थल पहुँचने की जल्दी रहती है ताकि उस बोझे को पटककर राहत की साँस ले सके। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी भी अपने भौतिक शरीर को फेंकने के लिए चिन्तित रहता है।''

१४ अप्रैल, सन् १९५० ई० को आश्रम में काफी भीड़ थी। बाहर एक अमेरिकी पत्रकार ने देखा कि आसमान से एक तारा टूट कर नीचे आते-आते गायब हो गया। इस तारे को टूटते हुए मद्रास शहर के अनेक लोगों ने देखा था। तारे का टूटना अशुभ माना जाता है। यह अशुभ रमण आश्रम में हुआ।

उस रात को सभी भक्त जागते रहे। अगले दिन पुराने सभा भवन में महर्षि को समाधि दे दी गयी।

■



भूपेन्द्रनाथ सान्याल

काशी में गरुड़ेश्वर एक मुहल्ला है। इसी मुहल्ले में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी अपने कमरे में बैठे समागत शिष्यों तथा भक्तों को गीता के बारे में प्रवचन दे रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण था। बाहर गली में कुछ लोग आ-जा रहे थे।

सहसा योगिराज अपनी कथा रोककर एक युवक से बोले—''गोपी बेटा, सदर दरवाजे पर जाकर जरा खड़े हो जाओ। अभी कुछ देर बाद गोरे रंग का एक किशोर मुझे खोजता हुआ आयेगा। उसे अपने साथ भीतर ले आना।''

''जो आज्ञा महाराज।'' कहने के पश्चात् वह युवक बाहर चला गया।

योगिराज ने अपनी कथा को आगे बढ़ाते हुए कहा—''योगियों के अपने शरीर में ही पृथ्वी, जल और तेज इन तीनों महाभूतों का ज्ञान रहता है। पृथ्वी का अंश जल में घुल जाता है, जल का अंश तेज में समा जाता है और तेज का अंश हृदय के पवन में चला जाता है। फिर अन्त में एकमात्र पवन ही रह जाता है और वह भी केवल शरीर के रूप में रहता है। कुछ समय बीतने पर वह भी आकाश में समरस होकर लुप्त हो जाता है। उस समय उस शक्ति का कुंडलिनी नाम भी मिट जाता है और उसे 'मारुति' वाला नया नाम प्राप्त होता है।''

तभी गोपी के साथ एक सुदर्शन युवक भीतर आया। चेहरे की बनावट और पोशाक से बंगाली लग रहा था। क्षण भर लाहिड़ी महाशय चुप रहे। इसके बाद पुनः अपनी कथा कहने लगे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा कि ''गीता के रहस्य को समझना और समझाना

कठिन है। यह विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृति है। योग, धर्म, दर्शन, अध्यात्म सब कुछ इसमें है। अब आगे की कथा कल होगी।''

प्रवचन की समाप्ति पर एक-एक करके लोग जाने लगे। जगह खाली होते ही आगन्तुक युवक ने साष्टांग प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए योगीराज ने कहा—''भूपेन्द्र, तुमने व्यर्थ ही कष्ट किया। तुम जिस कामना से यहाँ आये हो, वह तो कई वर्ष पूर्व तुम्हें प्राप्त हो चुकी है।''

लाहिड़ी महाशय की बातें सुनकर भूपेन्द्र चौंक उठा। समझते देर नहीं लगी कि योगिराज अपनी अलौकिक-शक्ति के माध्यम से मेरे बारे में समझ गये हैं। मैं कौन हूँ, कहाँ से आ रहा हूँ, क्यों आया हूँ, यहाँ तक कि मेरा नाम तक जान चुके हैं।

भूपेन्द्र ने कहा—''तो क्या वही सत्य है। अब प्रत्यक्ष रूप से मुझे प्राप्त नहीं होगी?''

अपने स्वभाव के अनुसार गंभीर होते हुए लाहिड़ी महाशय ने कहा—''हाँ, वही। मैं जानता हूँ कि तुम अपनी आर्थिक कठिनाई तथा कच्ची उम्र के कारण विष्णुपुर से यहाँ तक आने में असमर्थ रहे और मैं वार्द्धक्य के कारण अब कहीं नहीं जाता। तुम्हारे पूर्व जन्म के संस्कारों ने मुझे बाध्य किया तभी मैंने वहाँ सूक्ष्म रूप में जाकर क्रिया सम्पन्न की। ऐसी घटना मेरे जीवन में कम ही हुई है। अब पुनः दीक्षा मैं नहीं दूँगा और न तुम्हें इसकी जरूरत है।''

भूपेन्द्रनाथ चुप रहा। उसने फिर कोई अनुरोध नहीं किया। लाहिड़ी महाशय ने कहा—''जाओ, खाना खाकर विश्राम करो। थके माँदे हो। कल सुबह मिलना। आगे की बातें बताऊँगा।''

अपने डेरे पर वापस आकर भूपेन्द्रनाथ दीक्षा के बारे में सोचने लगा। उसे याद है, आज से दो वर्ष पूर्व की बात है। उन दिनों बड़ी बहन के यहाँ रहता था। दीदी उसे बहुत चाहती थीं। बड़ी बहन का ससुराल विष्णुपुर में था। वहाँ के एक स्कूल में पढ़ता था। लाहिड़ी महाशय अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ अक्सर आते थे। जब आते थे तब पूरे विष्णुपुर में हलचल मच जाती थी। बड़े-बूढ़े उन्हें साष्टांग करते। लोग कहते—लाहिड़ी महाशय सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उच्चस्तर के योगी हैं। अगर वे चाहें तो इस पृथ्वी को ध्वंस करके नयी सृष्टि नये सिरे से बना सकते हैं।

विष्णुपुर में कुछ लोग लाहिड़ी महाशय के मंत्र शिष्य बन चुके थे। उनके शिष्य ही योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की अलौकिक कहानियाँ सुनाते रहते थे। भूपेन्द्रनाथ का किशोर मन इन कहानियों को सुनकर लाहिड़ी महाशय के प्रति आकर्षित होता गया। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह भी इस महापुरुष का शिष्य बनेगा।

दूसरे ही क्षण सोचता—क्या वे मुझे अपना शिष्य बनायेंगे? क्यों नहीं बनायेंगे। मैं तीनों वक्त संध्या गायत्री करता हूँ। झूठ नहीं बोलता। गलत कार्य नहीं करता। मुझ में कौन-सा दोष है। इस बार आयेंगे तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा। उनके पाँव पकड़

लूँगा और तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक वे यह नहीं कहेंगे कि 'अच्छा बाबा, तुझे शिष्य बना लूँगा। अब तो पैर छोड़ दे।' तब बड़ा मजा आयेगा।

धीरे-धीरे समय गुजरता गया, पर लाहिड़ी महाशय फिर नहीं आये। इसी बीच उनके रिश्तेदार का निधन हो गया जिसके यहाँ वे प्रति वर्ष आते थे। इस प्रकार रही-सही आशा समाप्त हो गयी। एक बार भूपेन्द्र के मन में आया कि वह काशी जाकर लाहिड़ी महाशय से मिले, पर यह शहर कहाँ है? विष्णुपुर से कितनी दूर है? इतना किराया कौन देगा? फिर अगर गया भी तो कहीं अबोध समझकर दुत्कार न दें। इसी ऊहापोह में वह काशी नहीं जा सका।

ठीक इन्हीं दिनों तक अद्भुत घटना हो गयी। स्कूल से लौटते समय वह घर की ओर लौट रहा था। एक बड़े मकान के सामने काफी लोग बैठे थे। मकान के सामने एक चौकी पर कोई पंडित जी कथा सुना रहे थे। राम-कथा की चर्चा कर रहे थे। कुतूहलवश वह खड़ा हो गया।

कथावाचक नाटकीय ढंग से कथा कहते हुए कहने लगे—नाम की महिमा अपरम्पार है। एक बार देवर्षिनारद को भ्रम हो गया कि उनसे बड़ा भक्त त्रैलोक्य में कोई नहीं है। अन्तर्यामी भगवान् से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। एक दिन उन्होंने कहा—"मर्त्यलोक में एक किसान अमुक देश के, अमुक शहर के, अमुक गाँव में रहता है जो मेरा प्रिय भक्त है। सोचता हूँ कि एक बार उसके पास जाकर उसके सुख-दु:ख का पता लगाऊँ।"

देवर्षि नारद ने कहा—"भगवान्, आपको कष्ट करने की क्या जरूरत। मैं चला जाता हूँ।

देवर्षि वहीं गए। उन्होंने देखा कि उसने सबेरे उठकर एक बार भगवान् के चित्र के सामने नमस्कार किया और प्रातः क्रिया आदि करने चला गया। जलपान के पश्चात् खेत में काम करने लगा। वहीं उसका लड़का भोजन ले आया। शाम को खा-पीकर सोते समय उसने एक बार पुनः कहा—"राम जी, सबका भला करना और उसके साथ मेरा भी।" इसके बाद वह गहरी नींद में सो गया। देवर्षि नारद को आश्चर्य हुआ कि दिन-रात में केवल एक बार उसने राम का नाम लिया और वह व्यक्ति भगवान् का प्रिय भक्त बना हुआ है। यहाँ मैं दिन-रात उनका नाम लेता हूँ, मेरा कोई मूल्य नहीं?

भगवान् के निकट देवर्षि ने सारा विवरण दिया। तभी भगवान् ने कहा—"देवर्षि, एक काम करो। सामने एक कटोरा तेल है। इसे लेकर तुम दिनभर धूप-हवा दिखाते रहो। चाहो तो त्रैलोक्य का सफर कर सकते हो, पर यह याद रखना कि इसमें से एक बूँद तेल गिरने न पाये।"

शाम को जब नारद जी वापस आये तब भगवान् ने पूछा—"कहिये देवर्षि, तेल सही सलामत है या कहीं गिराया भी?

देवर्षि ने कहा—"नहीं प्रभु। आपके निर्देश का ठीक से पालन किया है।"

भगवान् ने मुस्कराकर पूछा—"इस बीच तुमने मुझे कितनी बार स्मरण किया?"

नारद ने कहा—"आपने एक ऐसा लफड़ा दे दिया कि मेरी निगाहें कटोरी पर जमी रहीं। ऐसी हालत में आपका स्मरण तो दूर, अपनी वीणा भी नहीं बजा सका और न किसी से संभाषण ही कर सका।"

भगवान् ने कहा—"अब सोचो देवर्षि। एक जरा से कार्य के पीछे तुम मुझे स्मरण नहीं कर सके। मर्त्यलोक का वह किसान सुबह से शाम तक मेहनत करने के बाद एक बार मुझे स्मरण कर लेता है। क्या वह मेरा श्रेष्ठ भक्त नहीं है?"

इस कथा को समाप्त करते हुए कथावाचक ने कहा—"आप जो कुछ करते हैं, करते रहिये, पर निरन्तर राम का नाम लेते रहिये। आपको पूजा-पाठ या तीर्थदर्शन करने का अवसर न मिले तो कोई हर्ज नहीं। महर्षि वाल्मीकि जवानी में डाकू थे। उल्टा नाम जपने के कारण वे महर्षि हो गये। संसार के विभिन्न देशों में राम-कथा का प्रचार हो गया। हमारे संत-महात्मा इसीलिए इस नाम पर जोर देते हैं। भक्तगण राम-नाम की गोली बनाकर मछली को खिलाते हैं। बेलपत्र पर लिखकर शिव का अर्चन करते हैं। आप खाली समय में यही करिये। इससे पापों का क्षय होगा।"

इस प्रवचन का भूपेन्द्रनाथ के मन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उसने निश्चय किया कि अब वह बराबर राम नाम लिखेगा। कहा जाता है कि जिस दिन राम नाम की संख्या एक लाख पूर्ण हुई, उसी दिन उसे दिव्य दर्शन हुआ। उसने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। राम नाम लिखते रहने पर भी उसके अवचेतन मन में श्यामाचरण लाहिड़ी से दीक्षा लेने की आकांक्षा बनी रही।

एकाएक श्यामाचरण लाहिड़ी उसके कमरे में प्रकट हुए और उन्होंने कहा—"भूपेन्द्र, उठो। आज वह शुभघड़ी आ रही है जब तुम्हें दीक्षा ग्रहण करनी है। तुम्हारे पूर्व जन्म के संस्कारों ने मुझे यहाँ आने को बाध्य किया है। चलो, आसन बिछाकर पद्मासन लगाकर बैठो।"

योगिराज के कथनानुसार भूपेन्द्र आसन बिछाकर बैठ गया। पलक झपकते ही दीक्षा की थाली आ गयी। उसमें माल, फूल, अक्षत्, चन्दन, लोहबान आदि थे। योगिराज के निर्देशानुसार सारी क्रियाएँ वह करता रहा। इसके बाद कान में बीज मंत्र सुनाने के बाद योगिराज ने कहा—"इस मंत्र का जप नित्य सात्त्विक भाव से करते रहना। इसमें गलती न हो अन्यथा मुझे कष्ट होगा। धीरे-धीरे तुम आध्यात्मिक-शक्ति ग्रहण करोगे।"

इतना कहने के बाद योगिराज ने उसके दोनों भौंहों के बीच स्पर्श किया। तड़ित् वेग से उसका सारा शरीर सिहर उठा।

इस झटके कारण उसकी नींद खुल गयी। उसने विस्मय के साथ देखा—कमरे में खाट पर बैठा है। न दीक्षा सामग्री है और न गुरुदेव। लेकिन कमरे में धूप जलने की गंध है।

*　　*　　*

आज दो वर्ष बाद दीक्षा लेने आया तो गुरुदेव ने अस्वीकार कर दिया। इसका अर्थ यह है कि वह स्वप्न नहीं, सत्य था।

दूसरे दिन जब भूपेन्द्र गुरुदेव के निकट गया तब उन्होंने कहा—''कुछ दिन तुम्हें काशी में रुकना पड़ेगा। तुम्हें कुछ क्रियाएँ बता दूँगा ताकि तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन सुदृढ़ हो सके। अब तक तुमने साधना के माध्यम से जो उन्नति की है, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ।''

गुरुदेव से अपनी प्रशंसा सुनते ही भूपेन्द्र ने तुरन्त उनके चरणों पर मस्तक रख दिया और चरण-रज लेकर सर्वांग में लगाने लगा।

* * *

महाप्रभु चैतन्य के कारण बंगाल का नगण्य जिला नदिया संसार-प्रसिद्ध हुआ है। श्रीकृष्ण की महिमा का प्रसार चैतन्य के माध्यम से भारत के कोने-कोने में हुआ था। इसी जिले के साधनपाड़ा गाँव में पंडित कैलाशचन्द्र सान्याल तथा उनकी पत्नी श्रीमती भुवनेश्वरी देवी रहते थे।

माघ शुक्ल पक्ष अर्थात् जनवरी, सन् १८७७ ई०, बुधवार को इस दम्पति के यहाँ अष्टम संतान ने जन्म लिया। बंगाल में मान्यता है कि अष्टम संतान पुत्र और नवम संतान पुत्री होने पर भाग्यशाली होते हैं। माता-पिता ही नहीं, परिवार सभी लोग ऐसे बच्चों को अधिक स्नेह देते हैं।

अन्नप्राशन के दिन बालक का नाम भूपेन्द्रनाथ रखा गया। बालक ने अभी घुटने के बल चलना प्रारम्भ किया था कि सहसा सिर पर से पिता का साया उठ गया। भूपेन्द्रनाथ की आयु उस समय २० माह की थी। गाँव में पेट भरने लायक कोई सहारा न रहने के कारण भुवनेश्वरी देवी बच्चों को लेकर अपने भाई शिवचन्द्र राय के यहाँ चली गयी।

सहसा शिवचन्द्र राय की बदली साहबगंज में हुई। राय साहब सभी लोगों को लेकर यहाँ आकर बस गये। भूपेन्द्रनाथ की प्राथमिक शिक्षा स्थानीय स्कूल में प्रारम्भ हुई। भूपेन्द्रनाथ की माता धर्मपरायण महिला थी। विधवा हो जाने पर वे अत्यन्त कठोरता के साथ देवार्चन में रहने लगीं। शाम को बच्चों को बैठाकर पौराणिक और धार्मिक कहानियाँ सुनाया करती थीं।

कुछ दिनों बाद भूपेन्द्रनाथ की बड़ी बहन ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। विष्णुपुर में भूपेन्द्रनाथ अपने जीजा के मामा शिवदास भट्टाचार्य के यहाँ रहने लगा। बड़ी बहन ने आगे की शिक्षा के लिए स्थानीय स्कूल में भर्ती कराया। बचपन से ही शान्त और सौम्य होने के कारण भूपेन्द्रनाथ अपने सहपाठियों में ही नहीं, अध्यापकों की दृष्टि में लोकप्रिय हो गया।

विष्णुपुर अपने विशिष्ट मंदिरों के लिए सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक

देवी-देवताओं के मंदिर हैं। अवकाश के समय में वह इन मंदिरों में जाकर ध्यान लगाकर बैठ जाता। भट्टाचार्य परिवार में आश्रय लेने के कारण पूजा-पाठ तथा धार्मिक क्रियाओं से प्रभावित हो गया।

परम्परा के अनुसार १३वें वर्ष में उसका यज्ञोपवीत हुआ। कुलगुरु के निर्देशानुसार वह अत्यन्त शुद्धाचार से दैनिक कार्य करने लगा। गायत्री-पाठ, संध्या-पूजा आदि का पालन करता रहा। ठीक इसी समय एक घटना हुई जिसके कारण उसके जीवन में परिवर्तन हुआ।

यहाँ आने के बाद से वह अक्सर योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के बारे में विचित्र कहानियाँ सुना करता था। कभी-कभी स्वयं उसके मन में भी यह भावना उत्पन्न होती कि वह भी लाहिड़ी महाशय की तरह चमत्कार कर पाता। लाहिड़ी महाशय कैसे, किस विद्या से ऐसा कर लेते हैं? क्या करने पर चमत्कार किया जा सकता है? अक्सर उसका किशोर मन उड़कर काशी पहुँचने की कल्पना करने लगता था। उसने आगे चलकर यह निश्चय किया कि अगर इस बार लाहिड़ी महाशय आयेंगे तो वह उनका शिष्य बनकर उनकी सेवा करेगा। तब शायद वे चमत्कार दिखायेंगे।

भूपेन्द्र का यह सपना शीघ्र ही पूरा हुआ। एक अर्से बाद लाहिड़ी महाशय विष्णुपुर आये। यही उनका अन्तिम आगमन था। इस यात्रा के बाद फिर कभी नहीं आये। लाहिड़ी महाशय के आगमन का समाचार पाते ही भूपेन्द्र उनके ठहरने के स्थान पर पहुँचा। लाहिड़ी महाशय भक्तों और शिष्यों से घिरे बैठे थे। एक बार इच्छा हुई कि पास जाकर चरण-रज ले लूँ, पर भीड़ के कारण उनके निकट जाने का साहस नहीं हुआ। मन ही मन प्रणाम कर एक किनारे बैठ गया। उसे लगा जैसे लाहिड़ी महाशय असाधारण पुरुष हैं।

कुछ दिनों बाद उसे विष्णुपुर से वर्धवान आना पड़ा। इस बीच लाहिड़ी महाशय पुनः यहाँ नहीं आये। यहाँ आकर वह १०वीं क्लास में भर्ती हो गया, पर उसका मन लाहिड़ी महाशय के चरणों में लगा रहा। ठीक इन्हीं दिनों उसे स्वप्न में दीक्षा प्राप्त हुई जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

विष्णुपुर की अपेक्षा वर्धवान की जलवायु उसे रास नहीं आई। एकाएक बंगाल की प्राचीन बीमारी मलेरिया ने उस पर आक्रमण किया। दिन-प्रतिदिन उसकी हालत खराब होती गयी। यहाँ तक कि इलाज करने वाले डॉक्टर ने कहा—"रोगी का बचना कठिन है। अब वह जो कुछ खाने को माँगे, देकर उसकी अन्तिम इच्छा की पूर्ति करें।"

डॉक्टर की राय सुनकर घर के लोग रोने-पीटने लगे। इधर भूपेन्द्र की हालत ऐसी हो गयी कि तीन दिनों तक वह लगातार बेहोश रहा। चौथे दिन भूपेन्द्र को लगा जैसे कोई छोटी बालिका उसके सिरहाने बैठकर पूछ रही है—"पिता जी, क्या आप डर रहे हैं?"

भूपेन्द्रनाथ ने कहा—"हाँ।"

लड़की ने कहा-"आप डरिये नहीं। आपका मृत्यु-संकट टल गया है। अब आप स्वस्थ हो जायेंगे।"

इतना कहने के बाद वह लड़की इनके सिर पर हाथ फेरने लगी। आश्चर्य की बात यह हुई कि दूसरे दिन आप पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। आपको देखकर ऐसा लग रहा था जैसे आप बीमार ही नहीं हुए थे।

बाद में जब भूपेन्द्र ने अपने दर्शन के बारे में बताया तब लोगों ने अनुमान लगाया कि लड़की के रूप में माँ जगदम्बा आयी थीं वर्ना मृत्यु-पथ का यात्री रात भर में कैसे स्वस्थ हो सकता है।

लम्बे अर्से तक बीमार रहने के कारण भूपेन्द्रनाथ इंटर की परीक्षा नहीं दे सका। वहाँ से भागलपुर आकर तेजनारायण जुबली कॉलेज में भर्ती हो गया। ठीक इन्हीं दिनों पास में कुछ रकम आ जाने पर भूपेन्द्रनाथ काशी गया। उद्देश्य था कि योगिराज लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लूँगा। वहाँ से क्रियायोग की शिक्षा लेकर वह वापस आ गया।

चलते समय योगिराज ने भूपेन्द्रनाथ से कहा—''मैंने जितनी क्रियाएँ बतायी हैं, अगर निरन्तर करते रहोगे तो स्वतः इच्छा-शक्ति में वृद्धि होगी। कभी कोई कठिनाई अनुभव हो तो मुझे स्मरण करना। मैं सही मार्ग का निर्देश दे दूँगा।''

* * *

काशी से वापस आने के बाद आप तीव्र गति से क्रियाओं की साधना करने लगे। होस्टल में रहने के कारण साधना करने में किंचित् कठिनाई होती थी। इससे बचने के लिए आपने मध्य रात्रि का समय चुना। जब सभी सहपाठी सो जाते थे तब आप चुपके से छत पर जाकर गुरु द्वारा बतायी गयी क्रियाएँ करते थे।

भागलपुर में रहते हुए आप बराबर साधु-संतों की सेवा करने लगे। आप इस बात पर विश्वास करते थे कि इनकी सेवा से भले ही लाभ न हो, पर पुण्य मिलता है। क्रियायोग के प्रति बढ़ती साधना के कारण आप में आध्यात्मिक स्फुरण होने लगा। इसका अनुभव होते ही आप सावधानी से रहने लगे। लेकिन इससे शिक्षा में हानि हुई। आप इंटर की परीक्षा यहाँ भी नहीं दे सके।

सन् १८६८ ई० में आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। विवाह के पश्चात् कॉलेज-जीवन से अलग होकर अध्यापक बन गये। इन दिनों बंग भंग आन्दोलन चल रहा था। देश-प्रेम के कारण आप लोगों से देसी वस्त्र पहनने का अनुरोध करने लगे। गाँव-गाँव जाकर कपड़े की फेरी लगाने लगे।

इस कार्य से शीघ्र ही मन उचट गया। तब आपने साहबगंज में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना कर छात्रों को योग-व्यायाम की शिक्षा देने लगे। इस दिशा में सहयोग न मिलने पर आप निराश हो गये।

ठीक इन्हीं दिनों विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शांति निकेतन में विश्व भारती की स्थापना की। वहाँ के परिवेश तथा शिक्षा देने के ढंग से आप प्रभावित हुए। भूपेन्द्रनाथ

ने सोचा कि ऐसे विद्यालय के छात्र ही देश-समाज के कर्णधार बन कर देश को नयी दिशा देंगे। अपने दोनों भतीजों को विश्व भारती में भर्ती कराने के लिए ले गये।

बातचीत के सिलसिले में आपने रवि बाबू से कहा कि इस विद्यालय के जरिये ब्रह्मचर्य की शिक्षा दें। साहबगंज में स्थापित अपने आश्रम के बारे में आपने विस्तार से बताया।

सारी बातें सुनने के बाद रवि बाबू ने कहा—"निस्सन्देह आपका सुझाव और योजना अच्छी है। मैं चाहता हूँ कि आप विश्व भारती में ब्रह्मचर्य विभाग खोलें और इसकी सारी जिम्मेदारी लें।"

भूपेन्द्रनाथ इसके लिए तैयार नहीं हुए। यह जानकर रवि बाबू ने अपने अस्त्र का प्रयोग किया। उन्होंने कहा—"तब तो मैं आपके भतीजों को अपने विद्यालय में स्थान नहीं दे सकता। मैं आपके भतीजों को केवल इसी शर्त पर भर्ती करूँगा कि आप यहाँ के ब्रह्मचर्य विभाग का संचालन करें। योग्य शिष्य ही नहीं, योग्य शिक्षक भी तैयार करें ताकि आपकी अनुपस्थिति में यह विभाग चलता रहे।"

इस शर्त के आगे भूपेन्द्रनाथ को झुकना पड़ा। शान्ति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना करने के पश्चात् एक अर्से तक वे छात्रों को शिक्षा देते रहे। रवि बाबू आपके ज्ञान और व्यक्तित्व से कितने प्रभावित हुए, इसका प्रमाण सान्याल जी के नाम लिखे पत्रों से स्पष्ट हो जाता है।

आपने अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से रवि बाबू को यह भी बताया कि यहाँ कितने अध्यापक आपके लिए समर्पित सेवाएँ कर सकते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर शास्त्री, नेपालधर आदि विद्वानों को आपने खोजा और परखा था। यहाँ पाँच वर्ष सेवा करने के बाद आपने संन्यास जीवन अपनाया।

बीच-बीच में आप अपने गुरुदेव का दर्शन करने के लिए काशी आते थे। यहाँ बड़ादेव मुहल्ले में स्थापित 'योगाश्रम' में ठहरते थे। इस आश्रम की स्थापना हिन्दू धर्म के प्रचारक स्वामी कृष्णानन्द ने की थी। इस आश्रम में अपने विद्यार्थी जीवन में (सन् १६१२) श्री गोपीनाथ कविराज भी आते थे। यहीं उनकी मुलाकात सान्याल जी से हुई थी। भूपेन्द्रनाथ सान्याल उन दिनों बंगला के विभिन्न पत्रों में धर्म तथा अध्यात्म सम्बन्धी लेख लिखते थे। सान्याल जी के लेखों से प्रभावित होकर कविराजजी उनसे मिलने आये थे।

अपने एक संस्मरण में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"वे जब काशी आते थे तब मेरे यहाँ खबरें भेजते थे। यहाँ तक कि अनेक बार मेरे घर आकर मुलाकात भी की। मैं स्वयं भी उनके यहाँ जाता था, क्योंकि लाहिड़ी महाशय के साधना-जीवन के बारे में विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन करने की मेरी इच्छा थी। हम इस सम्बन्ध में नित्य तरह-तरह की बातें करते थे। वे लाहिड़ी महाशय के बारे में अपने अनुभव, साधना तत्त्व तथा अन्य अलौकिक बातें बताया करते थे। इन सब कारणों से थोड़े दिन के भीतर हम दोनों में गहरी मैत्री हो गयी थी।

वे मेरे प्रति जितने आस्थावान थे, मैं भी उनके प्रति उतना ही श्रद्धावान था। अगर कोई व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होने की इच्छा प्रकट करता था तो मैं उन्हें सान्याल महाशय के पास जाने की सलाह देता था। विदेशी तथा भारतीय जिज्ञासुओं को वे मेरे अनुरोध पर दीक्षा देते थे और उन्हें योग-मार्ग में प्रवेश कराते थे।

सान्याल महाशय गुरु-परम्परा में योगी थे ही, ऊपर से शास्त्र विहित आचार-मार्ग का अनुसरण करते हुए अपनी निष्ठा और पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते रहे।

उनके काशी आने पर मैं उनका दर्शन किये बिना रह नहीं पाता था। जब कभी मैं पुरी जाता था तब वहाँ अगर वे मौजूद रहते थे तब बराबर दर्शन करने अवश्य जाता था। वे अपने गुरु द्वारा लिखित श्रीमद् भागवत गीता की व्याख्या कर रहे थे। बाद में उसकी भूमिका लिखने का भार मुझे दिया। उनकी इच्छानुसार उक्त ग्रंथ की भूमिका मैंने लिख दी थी। मेरी भूमिका पाकर वे प्रसन्न हो गये थे।''

*　　*　　*

गुरु द्वारा निर्देशित क्रिया निरन्तर करते रहने के कारण सान्याल महाशय पर्याप्त आत्मोन्नति कर चुके थे। सान्याल महाशय ने अपने पूज्य गुरुदेव की स्मृति में सर्वप्रथम पुरी में एक आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की संगमरमर की मूर्ति की प्रतिष्ठाकर मन्दिर का रूप दिया था। बाद में आगे चलकर भागलपुर जिले के मन्दार कस्बे में एक आश्रम बनवाया। यहाँ भी लाहिड़ी महाशय की एक मूर्ति स्थापित की।[1] दोनों स्थानों पर सन् १६२५ ई० के पूर्व मूर्तियाँ स्थापित हो गयी थीं।

मन्दार में मूर्ति स्थापित करने के पश्चात् सान्याल महाशय ने 'श्यामाचरण विद्यापीठ' के नाम से सांगवेद विद्यालय खोला जहाँ अनेक छात्र संस्कृत की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

---

१. 'सन् १६२८ ई० में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का जन्मोत्सव मनाने का जब निश्चय किया गया तब लाहिड़ी महाशय के पौत्र श्री आनन्दमोहन लाहिड़ी ने इस पवित्र समारोह को उच्चस्तर पर मनाने का निश्चय किया। साथ ही यह भी सोचा गया कि लाहिड़ी महाशय की एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की जाय। उस समय तक योगिराज की कोई प्रतिमा स्थापित नहीं की गयी थी। इस योजना के निर्धारण के शीघ्र बाद ही श्री आनन्दमोहन कृष्ण नगर के प्रसिद्ध शिल्पी श्री यदुनाथ पाल से लाहिड़ी महाशय की एक सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति पाकर आश्चर्यचकित रह गये। श्री यदुपाल ने बताया कि एक स्वप्रदर्शन में उन्हें प्रतिमा बनाकर श्री आनन्दमोहन को भेंट करने का निर्देश मिला था।'

—एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ४६४।

उपरोक्त घटना सही है, परन्तु यह कहना कि उस समय तक लाहिड़ी महाशय की कोई प्रतिमा स्थापित नहीं की गयी थी, यह धारणा गलत है। मुमकिन है कि पुरी तथा मन्दार में सन् १६२५ ई० के पूर्व स्थापित प्रतिमाओं के बारे में श्री परमहंस योगानन्द को कोई जानकारी न हो । श्री यदुनाथ पाल की प्रतिमा १६२८ में स्थापित हुई थी।

आम लोगों का विश्वास है कि भागलपुर जिले का मंदार क्षेत्र सिद्ध स्थान है। सान्याल महाशय आगे चलकर यहीं बस गये। अक्सर तीर्थयात्रा करने चले जाते थे। शेष समय भगवत्-चिंतन, गीता पाठ, लेखन तथा शिष्यों को उपदेश देते थे।

यहाँ आपके अनेक शिष्य थे। आपके विदेशी शिष्य आपका दर्शन करने यहाँ आते थे। कभी-कभी आप योग विभूतियाँ दिखाते थे जिसके कारण स्थानीय लोगों में आपके प्रति गहरी आस्था थी।

आपके एक शिष्य थे—रुद्रनारायण बाबू। एक बार वे जमीन-जायदाद आदि के चक्कर में बुरी तरह उलझ गये। अगर सान्याल महाशय की शरण में आते तो निश्चित था कि उन्हें जेल की सजा हो जाती या बुरी तरह बरबाद हो जाते।

सान्याल महाशय की इस कृपा के कारण वे इनके शिष्य और कट्टर भक्त बन गये। भावुकतावश एक बार आपने अपने गुरु सान्याल महाशय से निवेदन किया—''गुरुदेव, आपकी कृपा से मुझे सब कुछ मिल गया। अब मैं कुछ नहीं चाहता। केवल एक इच्छा शेष है?''

सान्यालजी ने पूछा—''वह क्या?''

''अपने मृत्युकाल में आपको देखते हुए मेरा प्राण निकले—यही मेरी आकांक्षा है।''

सान्यालजी की बातें सुनकर उपस्थित लोग चकित रह गये। वह इसलिए कि सान्यालजी वयोवृद्ध हैं और उनके आगे रुद्रनारायण बाबू अभी काफी कम उम्र के हैं। रुद्रनारायण की मौत क्या गुरुदेव के पहले हो जायगी? क्या तबतक सान्याल महाशय जीवित रहेंगे? लेकिन इस प्रश्न को कोई वहाँ व्यक्त नहीं कर सका। यह अशोभनीय प्रश्न था।

इस घटना के २० वर्ष बाद रुद्रनारायण अस्वस्थ हुए। उन दिनों सान्यालजी अपने प्रिय शिष्य और सेवक पंडित ज्वालाप्रसाद तिवारी के साथ बनारस में थे। अचानक एक दिन सान्यालजी ने कहा—''तिवारीजी, चलो साहबगंज चलें। यहाँ रहते काफी दिन हो गया।''

साहबगंज में सान्याल महाशय के एक शिष्य अस्वस्थ हो गये हैं। मुमकिन है कि गुरुदेव उन्हें देखने के लिए जा रहे हैं। ज्वालाप्रसाद ने यह सोचकर साहबगंज का टिकट लिया।

मार्ग में जब जमालपुर स्टेशन आया तब सान्यालजी ने कहा—''तिवारीजी, साहबगंज अभी नहीं जाऊँगा। पहले मन्दार हो लूँ, फिर देखा जायगा।''

ज्वालाप्रसाद अपने गुरुदेव की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कहते थे। जब जैसी आज्ञा वे देते थे, उसी के अनुसार काम करते थे।

मन्दार आते ही सान्यालजी रुद्रनारायण के यहाँ गये। गुरुदेव को देखते ही रुद्रनारायण ने कहा—''बाबा, बड़ा कष्ट है। मुझे अच्छा कर दीजिए या इस कष्ट से हमेशा के लिए मुक्ति दिला दीजिए।''

दूसरे दिन सान्यालजी ने ज्वालाप्रसाद तिवारी से कहा—''रुद्रनारायण, सभी लड़के-पोते आदि को बुला लो।''

रात तक परिवार के सभी लोग आ गये। रुद्रनारायण ने परिवार के सभी लोगों को देखकर पूछा—''अरे, सभी लोग कैसे आ गये?''

भोर के समय ज्वालाप्रसाद के पास सूचना आयी—''रुद्रनारायण का देहांत हो गया। शव आँगन में रख दिया गया है। बाबा (सान्यालजी) को खबर भेज दी गयी है। आप भी आ जायँ।''

ज्वालाप्रसाद के पहुँचने के बाद सान्यालजी वहाँ पहुँचे और कहा—''मुझे पहले सूचित करना चाहिए था। जब सब समाप्त हो गया तब समाचार भेजा गया। खैर, कोई बात नहीं। तुम सभी लोग हरि नाम करो। ज्वाला, तुम गीता-पाठ शुरू करो।''

इतना कहकर सान्याल महाशय ध्यानस्थ हो गये। काफी देर बाद वे अपने आसन से उठे और शव के चारों ओर चक्कर काटने लगे। बाद में शव के सिरहाने बैठकर रुद्रनारायण के सिर को उठाने लगे।

जब उनसे नहीं उठाया गया तब सामने खड़े लोगों से उन्होंने कहा—''तुम लोग इनके सिर को जरा ऊपर उठा दो।''

लोगों ने शव के सिर को सहारा देकर ऊपर उठाया। उपस्थित सभी लोग यह देखकर दंग रह गये कि मृत रुद्रनारायण की आँखें खुलीं और बाबा को एक टक देखने के बाद वे सदा के लिए सो गये।

* * *

सन् १९५६ में भारत सरकार ने एक प्रतिनिधिमण्डल विदेशों में भेजा। उद्देश्य था—ग्राम विकास का अध्ययन करना। इस दल के सदस्य पटना के हरिनारायण ठाकुर भी थे। जब यह प्रतिनिधिमण्डल अमेरिका पहुँचा तब ठाकुर के पास इस आशय का एक प्रस्ताव आया कि यदि आप ग्राम विकास के अध्ययन के लिए अमेरिका के अन्य क्षेत्र सहित, ग्रीस, इजराइल आदि देशों में जाना चाहें तो फोर्ड फाउण्डेशन आपकी यात्रा का सारा व्यय-भार ले सकती है।

हरिनारायण सरकारी अफसर थे। इस मौके को छोड़ना उचित नहीं समझा। उन्होंने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। प्रतिनिधिमण्डल के शेष सदस्य लन्दन से पेरिस होते हुए स्वदेश रवाना हो गये। प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों को इस बात की गहरी शिकायत रही कि लन्दन या पेरिस में उन्हें घूमने की सुभीता नहीं दी गयी और न खाना ठीक से दिया गया। यह समाचार हरिनारायण के पास पहुँच गया।

इस मुसीबत से बचने के लिए हरिनारायण भारतीय दूतावास में मदद माँगने गये। आम तौर पर संसार में जितने भारतीय दूतावास हैं, वहाँ के कर्मचारी सामान्य नागरिकों के साथ सहयोग नहीं करते। भारतीय दूतावास में आने पर हरिनारायण ने देखा—सभी

अफसर गायब हैं। केवल एक महिला कर्मचारी है। उसे अपनी समस्या समझायी। वह तुरन्त सक्रिय हो गयी।

बगैर कोई पूछताछ किये महिला कर्मचारी ने रोम, पेरिस, इजराइल तथा लन्दन आदि भारतीय दूतावासों के नाम पत्र भेजा और उसकी प्रतिलिपि ठाकुर को दे दी।

इस महिला की तत्परता से ठाकुर प्रसन्न हो गये। दूतावास में मानसिक परेशानी थी, इसलिए इस चमत्कार की ओर ध्यान नहीं गया। होटल में आने पर उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि यह चमत्कार कैसे हो गया। कहीं अपरोक्ष रूप में गुरुदेव श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल कृपा तो नहीं कर रहे हैं। मन में यह भावना आते ही सूटकेस से गुरुदेव का चित्र निकालकर उन्होंने सिर से लगाया।

८ अगस्त को जब लन्दन के हवाई अड्डे पर ठाकुर उतरे तब माइक पर इनके नाम की घोषणा हुई। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि इतने यात्रियों के बीच केवल उन्हें क्यों बुलाया जा रहा है। काउण्टर पर गये तो पता चला कि अमेरिकी एक्सप्रेस कम्पनी उन्हें लन्दन घुमायेगी। इसके लिए कम्पनी प्रथम श्रेणी की कार और विदेशी मुद्रा भी देगी। उनके लिए उत्तम होटल की व्यवस्था भी की गयी।

लन्दन से पेरिस आने पर यहाँ भी वैसी सुविधाएँ मिलीं। पेरिस के बाद रोम में भी सारी सुविधाएँ प्राप्त हुईं तो उन्हें समझते देर नहीं लगी कि इस चमत्कार के पीछे गुरुदेव की कृपा अवश्य है। वे बेकार कष्ट कर रहे हैं। ठाकुर मन ही मन असंतुष्ट हो गये। रात को ध्यान लगाकर बैठे। गुरुदेव की छाया सामने आयी तो आपने कहा—"आप मेरे लिए इतना कष्ट क्यों कर रहे हैं? यह तो फोर्ड फाउण्डेशन की व्यवस्था है।"

गुरुदेव ने कहा—"कोई बात नहीं बेटा। बच्चों के लिए बड़ों को सब करना पड़ता है।"

ठाकुर ने अपनी ठकुराई दिखाई। उन्होंने जिद्द पकड़ ली कि गुरुदेव को कृपा करने की जरूरत नहीं। यह सुनकर सान्याल महाशय "तथास्तु" कहकर अन्तर्धान हो गये।

गुरुदेव का वरदहस्त हटने का पहला धक्का रोम के हवाई अड्डे पर उतरते ही मिला। जिस अमेरिकी कम्पनी की मदद से ठाकुर यात्रा का आनन्द ले रहे थे, उसी कम्पनी ने इस आशय की नोटिस दी कि लन्दन, पेरिस, रोम आदि स्थानों में आपने जो यात्राएँ की हैं, उसका सारा व्यय आप कम्पनी को तुरन्त भुगतान करें।

ठाकुर की जेब में उस समय कुछ डालर बचे थे। यात्रा-खर्च देने की कौन कहे, इस रकम से वे स्वदेश भी नहीं लौट सकते थे। अब ठाकुर की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी।

ठाकुर ने विनयपूर्वक कहा—"इतनी रकम मैं कैसे दे सकता हूँ। फिर यह परदेश ठहरा। मेरी परेशानी समझने की कोशिश कीजिए।"

कम्पनी के एजेण्ट ने कहा—"आपकी परेशानी से मेरा कोई मतलब नहीं है। मुझे रुपये चाहिए।"

ठाकुर ने कहा—''इस वक्त मैं आपसे बहस नहीं करना चाहता। कल सबेरे आपके अधिकारी से मिलकर सारी बातें तय करूँगा। कृपया यह बताइये कि मेरे लिए होटल में ठहरने और कल शाम को वापस जाने की व्यवस्था है न?''

एजेण्ट ने कहा—''नहीं। रुपये देने पर व्यवस्था होगी।''

काफी मिन्नत करने के बाद होटल में रहने का स्थान मिला। यहाँ आते ही ठाकुर व्याकुल भाव से छटपटाने लगे। अब उन्हें याद आया कि अगर मैं गुरुदेव के आगे जिद्द न करता तो यह नौबत न आती। मुसीबत के वक्त लोगों को भगवान्, गुरु, माता-पिता याद आते हैं।

इस समय ठाकुर को गुरुदेव की एक कविता याद आ गयी जिसका भावार्थ है—''पर्वत अपने ध्यान में मग्न रहता है, नदी मन्द गति से बहती है और योगी योगाभ्यास में मग्न रहता है। यह सब ईश्वर की कृपा से होता है। गृहस्थ नाना प्रकार की आसक्तियों को लेकर तथा नाना प्रकार की घटनाओं के बीच, नाना प्रकार की चिन्ताओं के साथ, नाना प्रकार के भावों में ईश्वर की पूजा करता है, यह भी ईश्वर की कृपा से संभव है। मन भले ही कुछ क्यों न चाहे, वह ईश्वर के पीछे दौड़ता रहता है। हे ईश्वर, तुम्हारे हृदय में ही सबके हृदय गुँथे हुए हैं और तुमसे प्रेरित होकर ही मनुष्य अपने मुख से स्वर निकालते हैं। इस प्रकार सभी वस्तुओं में ईश्वर का प्रकाश व्याप्त है, ऐसा हम सबको समझना चाहिए।''

इस कविता को दो बार पढ़ने के बाद मन कुछ शान्त हुआ। उसी रात को नींद में गुरुदेव आये और बोले—''मेरे बच्चे, घबरा मत। सबेरे सब ठीक हो जायगा। आखिर मैं किसलिए हूँ।''

ठाकुर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कई हजार मील दूर गुरुदेव हैं और वहाँ से अपने एक अदना शिष्य पर कृपा कर रहे हैं। मन ही मन गुरुदेव को प्रणाम कर वे गहरी नींद में सो गये।

दूसरे दिन कम्पनी के बड़े अफसर से मिलते ही जादू-सा असर हुआ। यहाँ तक समय सीमित रहते हुए भी उन्हें कार द्वारा नगर के विभिन्न क्षेत्रों में घुमाया गया। लौटने की सारी व्यवस्था हो गयी। एक प्रकार से मुसीबतों का तिलस्म टूट गया।

* * *

इस प्रकार की कई घटनाएँ शिष्यों के साथ हुई हैं। सान्याल जी की कृपा पाकर अनेक लोग धन्य हुए हैं। यही वजह है कि उनके अधिकांश शिष्य उन्हें 'पूज्य गुरु महाराज' या 'योगिवर' कहते आ रहे हैं।

सान्याल जी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का नित्य पाठ करते थे। वे यह मानते थे कि यह ग्रंथ इस युग का वेद है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने के अलावा सान्यालजी ने सबसे महत्व-

पूर्ण कार्य लाहिड़ी महाशय की गीता-टीका की व्याख्या की है। यह पुस्तक तीन खंडों में है। इसके अलावा विल्वदल (दो खण्ड), अभ्यास योग, दिनचर्या, दीक्षा और गुरुतत्त्व, आत्मानुसंधान और आत्मानुभूति, आत्मबोध, मोक्ष-साधन और योगाभ्यास नित्य कृत्य, स्तोत्रावली आदि पुस्तकें लिखी हैं।

आपकी योग सम्बन्धी पुस्तक से सहायता लेकर पं० गोपीनाथ कविराज ने 'आरोप-साधन' आदि लेख लिखे हैं।

इन पुस्तकों में चिन्तन की विशद गहराई है। यहाँ तक कि शिष्यों और भक्तों के नाम जो पत्र सान्यालजी लिखते थे, उसमें भी योग और अध्यात्म की चर्चा करते थे। एक शिष्य के प्रश्न करने पर आपने उत्तर दिया—

"स्थूल-शरीर की एक अवस्था समाप्त होने पर दूसरी अवस्था आरम्भ होती है। यह अवस्था-परिवर्तन तभी तक होगा जब तक स्थूल-शरीर की सत्ता है। आत्मा के साथ इस परिवर्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा नित्य एक रूप एवं अविनाशी है। शरीर का नाश होने पर जो शरीरान्तर प्राप्त होता है, वह भी लिंग शरीर के कारण। इसी कारण से शिशु हँसता है, रोता है, भूख से कातर होकर स्तनपान करता है। यह सभी जन्म जन्मान्तर के संस्कार हैं। किन्तु आत्मा सभी कर्मों और संस्कारों के अतीत होकर नित्यकाल के साक्षी रूप में वर्तमान है। अवस्थाओं में परिवर्तन हो रहा है, पर उस अवस्था का द्रष्टा आत्मा सदा एक रूप है। शैशव में 'मैं' था। यौवनावस्था में शैशव चला गया, पर शैशव काल का द्रष्टा 'मैं' वर्तमान में वही 'मैं' हूँ। आगे यह यौवनकाल चला जायगा तब वार्धक्य आयेगा। उस समय भी 'मैं' का अभाव नहीं होगा। यही आत्मा का सार है।"

इस प्रकार की गूढ़ बातें सान्यालजी शिष्यों को लिखा करते और अपने गुरु लाहिड़ी महाशय की भाँति प्रत्येक शिष्य का ख्याल रखते थे। अपने पत्रों में योग प्रणाली के बारे में भी लिखा करते थे।

१८ जनवरी, सन् १९६२ के दिन सबेरे उन्होंने अपने प्रिय शिष्य ज्वालाप्रसाद तिवारी से कहा—"ज्वाला, अब मैं जा रहा हूँ।"[1]

इसके बाद वे गीता सुनते-सुनते परमधाम को चले गये। सान्यालजी के बारे में पं० गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"वर्तमान समय में उनकी तरह आदर्श-पूत चरित्र देखने में नहीं आता।"

■

---

१. लाहिड़ी महाशय द्वारा निर्देशित द्वितीय क्रियायोग से सिद्ध साधक चैतन्य रूप से शरीर त्याग सकता है। उन्नत योगी ही द्वितीय क्रियायोग का प्रयोग महाप्रयाण के समय करते हैं, क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान रहता है।

योगी वरदाचरण

चंचल, उद्दाम गति से प्रवाहित होने वाली पहाड़ी नदी के मार्ग में जब सहसा कोई वृहद् शिलाखंड आ गिरता है तब उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। नदी अपना मार्ग खोजने के लिए चारों ओर छटपटाने लगती है। ठीक इसी प्रकार की स्थिति काजी नजरूल इस्लाम के जीवन में आयी थी।

उनकी आँखों का तारा, एकमात्र पुत्र 'बुलबुल' का निधन चन्द रोज की बीमारी से हो गया। पति-पत्नी दोनों ही उसे प्राणों से अधिक प्यारा समझते थे। इलाज में कोई त्रुटि नहीं हुई। दिन-रात दोनों उस मासूम की देखरेख करते रहे, पर चेचक जैसे भयानक रोग ने उसे अपना ग्रास बना लिया। नजरूल से अधिक आघात उनकी पत्नी को लगा। वे शय्यागत हो गयीं। इस दोहरी मुसीबत ने नजरूल को उद्भ्रांत बना दिया। उसकी सारी ओजस्विता जैसे पलक झपते ही गायब हो गयी।

नजरूल की यह दशा देखकर लोग चिंतित हो उठे। लोग आते, संवेदना प्रकट करते, सांत्वना देते और चले जाते। लेकिन मन को शांति नहीं मिल रही थी। बातचीत के सिलसिले में एक मित्र ने सलाह दी—"प्रथम पुत्र का शोक मर्मान्तक होता है। कुछ दिनों के लिए बाहर चले जाओ। स्थान परिवर्तन से शांति मिल जायगी।"

नजरूल ने कहा—"मुझसे बुरी दशा पत्नी की है। इसे लेकर कहाँ जाऊँ?"

मित्र ने कहा—"तब एक काम करो। किसी संत या फकीर के पास चले जाओ उनके आप्त वचन से मन को शांति मिल जायेगी।"

मित्र की राय सुनते ही नजरूल को अपने गुरु योगी वरदाचरण की याद आ गयी। तुरन्त उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी स्थिति में उनके निकट जाने पर शांति अवश्य प्राप्त होगी।

वरदाचरणजी उन दिनों लालगोला हाईस्कूल में हेडमास्टर थे। गुरु के पास जाते ही नजरूल अपने दु:ख के आवेग को रोक न सके। उनके सिर पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुए वरदाचरण ने कहा—"शांत हो जाओ, नजरूल। भवितव्य होकर ही रहता है। जो गया, उसके लिए शोक करना वृथा है। ईश्वर की यह इच्छा थी।"

नजरूल ने कहा—"अपने मन को कैसे समझाऊँ? मुझे शांति नहीं मिल रही है। कम से कम ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि उस दर्द को भूल जाऊँ, मेरा मन शांत हो जाय।"

वरदाचरण ने थोड़ी देर तक ध्यान लगाया। इसके बाद नजरूल के हृदय पर हाथ फेरने लगे। वह भावाविष्ट हो गया। थोड़ी देर बाद नजरूल ने आँखें खोलीं।

वरदाचरणजी ने कहा—''अब आज से तुम शांति अनुभव करोगे। तुम्हारी शक्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख होगी। चिंता की बात नहीं। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।''

नजरूल ने स्वत: अनुभव किया कि अब दु:ख का वह आवेग नहीं है, व्याकुलता में कमी आ रही है। बुलबुल के खोने का जो दर्द हृदय को मथ रहा था, उसमें कमी आ रही है।

तभी नजरूल ने पुन: निवेदन किया—''गुरुदेव, एक कामना है। एक बार, सिर्फ एक बार अपने 'बुलबुल' को देखना चाहता हूँ। उसे कलेजे से लगाकर चुम्बन लेना चाहता हूँ।''

वरदाचरण ने कहा—''नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। इससे मृतात्माओं को कष्ट होता है। इससे अच्छा है कि उसकी अकाल-मृत्यु की शांति के लिए प्रार्थना करो। जो बिछुड़ गया, उसकी स्मृति करना व्यर्थ है। इससे मनोकष्ट बढ़ता है।''

नजरूल का अतृप्त हृदय पुन: विकल हो उठा। वरदाचरणजी स्थिति को भाँप गये। उन्होंने कहा—''एक शर्त है। तुम स्पर्श नहीं करोगे। केवल कुछ क्षणों तक देख सकते हो। लेकिन यही प्रथम और अंतिम दर्शन होगा।''

''बड़ी कृपा होगी, गुरुदेव! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। कब मैं अपने लाल को देख सकूँगा?''

वरदाचरण ने एक मंत्र बताते हुए कहा—''रात को आठ बजे के बाद उस कमरे में आसन बिछाकर बैठना जिसमें बालक की सामग्री अभी तक मौजूदा हो? कमरे का दरवाजा बन्द रखना। साँकल लगाने की जरूरत नहीं। अभी जो मंत्र बताया है, उसे एकाग्र चित्र से जपते रहना। लेकिन यह याद रखना कि लड़के को छूना मत और न उससे बातें करना। अगर ऐसा किया तो आगे जो अनिष्ट होगा, उसकी जिम्मेदारी तुम पर होगी। फिर मेरे पास मत आना।''

''आप निश्चिन्त रहें गुरुदेव। मैं आपके आदेशों का पालन पूर्ण रूप से करूँगा।''

लालगोला से वापस आने के बाद नजरूल में भयानक परिवर्तन हो गया। चेहरा जरूर उदास है, पर उस पर गम्भीरता की छाप है।

* * *

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, गायक, कवि, पत्रकार श्री नलिनीकांत सरकार के यहाँ यतीशचन्द्र राय एक दिन आये और कहा—''मेरे लड़के का विवाह तुम्हारे गाँव में हो रहा है। मेरी इच्छा है कि बारातियों में नजरूल को साथ ले चलो। वहाँ सारा इन्तजाम है। कोई कष्ट नहीं होगा।''

''बात ठीक कह रहे हो, पर एक ही दिक्कत है। गाँव का वातावरण है, नजरूल मुसलमान है। डर है कि कहीं कट्टरपंथी विद्रोह न करे बैठें। ऐसी हालत में सारा आयोजन पंड हो जायगा।''

यतीशचन्द्र ने कहा—''इसकी चिन्ता मत करो। नजरूल के लिए स्पेशल इन्तजाम कर दूँगा।''

इसी बारात में सर्वप्रथम वरदाचरणजी ने नजरूल को देखा और नजरूल ने वरदाचरणजी को। योगी पुरुष अपनी दिव्य-दृष्टि से व्यक्ति की प्रतिभा को भाँप लेते हैं। नजरूल अपने मित्र नलिनीकांत की जबानी वरदाचरण की अलौकिक-शक्ति से परिचित था। इसी सूत्र से दोनों एक दूसरे के निकट आते गये।

योगी वरदाचरण किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। गुरु बनकर शिष्यों की भीड़ एकत्रित करना उन्हें पसंद नहीं था। व्यक्ति का आधार देखकर कुछ लोगों को योग की प्रक्रिया बता देते थे। कहते थे कि इसका अभ्यास बराबर करते रहना। किसी को कोई मंत्र बताकर जप करने का निर्देश देते थे। जो लोग इनसे मंत्र या योग की प्रक्रिया ग्रहण करते, ऐसे लोग वरदाचरण को, उनके न चाहने पर भी गुरु रूप में स्वीकार कर लेते थे। ऐसे लोगों में नजरूल भी थे।

नजरूल अपने प्राथमिक जीवन में अधिकतर प्रेम गीत या विद्रोही गीत लिखा करते थे। वरदाचरण से आशीर्वाद पाने के बाद उनकी धारा बदल गयी। योगी वरदाचरण ने अपनी यौगिक-शक्ति के माध्यम से उनकी छिपी प्रतिभा का उन्मोचन-मात्र कर दिया था।

गुरुदेव के निर्देशानुसार एक दिन रात को नजरूल आसन पर बैठे मंत्र का जाप कर रहे थे। ठीक इसी समय कमरे का दरवाजा खुला और बुलबुल ने प्रवेश किया। वही चेहरा, वही कद, वही पगध्वनि देखकर नजरूल प्रसन्नता से उछल पड़े । एक बार उसे गले से लगाने की इच्छा हुई, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे आसन से चिपक गये हैं। जीभ तालू से सट गयी है।

इधर 'बुलबुल' ठुमुक-ठुमुक कर सामने वाली आलमारी के पास गया। उसमें रखे अपने सामानों को टटोलता रहा। थोड़ी देर बाद वापस जाते समय एक बार अपने पिता की ओर देखकर मुस्कराया। फिर एकाएक गायब हो गया।

❋ ❋ ❋

बंगाल के सुप्रसिद्ध नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र श्री दिलीप राय की गणना विश्व के श्रेष्ठ गायकों में होती थी। दिलीप बाबू के गायन की प्रशंसा नेहरू जी भी कर चुके हैं। महर्षि अरविन्द के सम्पर्क में आने के कारण दिलीप बाबू में आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का विकास तेजी से हुआ। एक बार दिलीप बाबू ने कहा था—''मुझे शिष्य बनाकर योग की शिक्षा देने की कृपा करें।''

श्री अरविन्द ने कहा—''अभी वह समय नहीं आया है। समय आने पर सब हो जायगा।''

अरविन्द की इस उपेक्षा से दिलीप बाबू निराश हो गये। एक अर्से बाद इन्हें सनक सवार हुई कि किसी योग्य व्यक्ति से दीक्षा ले लूँ। तलाश करने पर इन्हें उपयुक्त

गुरु भी मिल गये। एकाएक मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि इस गुरु से दीक्षा लेना क्या उचित होगा? यह संदेह उत्पन्न होते ही वे नलिनीकांत सरकार के पास आये और दोनों व्यक्ति योगी वरदाचरण के पास गये।

दिलीप बाबू के प्रश्न को सुनकर योगी वरदाचरण ध्यानस्थ हो गये। कुछ देर बाद आँखें खोलने पर उन्होंने कमर के पास एक स्थान को दिखाते हुए पूछा—"क्या यहाँ दर्द होता है?"

दिलीप बाबू ने कहा—"नहीं तो।"

वरदाचरणजी के कपोलों पर सिकुड़न पड़ गयी बोले—"तो क्या मैंने सब गलत देखा?"

दिलीप बाबू ने कहा—"आपने क्या देखा?"

"मेरे सामने अरविन्द घोष खड़े थे। ठीक आपके पीछे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इसे कह दो, मैंने तो इसे ग्रहण कर लिया है। एक अर्सा पहले मैंने यह भी कहा था कि कमर के इस स्थान का दर्द दूर होते ही योगाभ्यास प्रारंभ कर सकता है। एक ओर अरविन्द यह सब बातें कह गये और इधर आप कह रहे हैं कि मुझे यहाँ दर्द नहीं है?"

दिलीप कुमार अवाक् होकर देखते रहे। वे हार्निया के दर्द से पीड़ित हैं, इस बात को कोई नहीं जानता। उसी के कारण यह दर्द अक्सर उभड़ता है। महर्षि आये और योगिराज को यह सब बताकर चले भी गये।

अन्त में दिलीप बाबू को कहना पड़ा—"आपका कहना ठीक है। हार्निया का कष्ट दूर हो जाने के बाद उन्होंने योगाभ्यास करने का निर्देश दिया था। लेकिन उन्होंने मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया है, इस बारे में कभी कुछ नहीं कहा।"

"क्या इस बारे में कभी कोई बातचीत उनसे आपकी नहीं हुई थी?"

दिलीप बाबू ने जिस ढंग से बातें हुई थीं, उसका उल्लेख किया। सारी बातें सुनने के बाद योगी वरदाचरण ने कहा—"उन्होंने यह कब कहा कि मैंने तुम्हें ग्रहण नहीं किया है। हार्निया का दर्द ठीक होते ही योग शुरू करने की आज्ञा देने का अर्थ ही है कि उन्होंने आपको शिष्य के रूप में अपना लिया है।"

इसके बाद दिलीप बाबू ने अपने अतीत तथा भविष्य के बारे में कई प्रश्न पूछे जिसका उत्तर उन्हें दिया गया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद दिलीप बाबू की इच्छा हुई कि काशीधाम का दर्शन कर आये । साथ में कई मित्रों के अलावा नलिनी बाबू भी चलने को तैयार हो गये। एकाएक दिलीप बाबू ने सोचा कि काशी में अनेक योगी, महात्मा रहते हैं। अगर किसी उच्चस्तर के योगी से आशीर्वाद लिया जाय तो अच्छा होगा पर उनमें कौन उच्चस्तर का है, इसकी जानकारी कैसे होगी? इस बारे में सलाह देने के लिए वे योगी वरदाचरण के पास आये।

वरदाचरणजी ने कहा—"तुम्हारा कहना ठीक है। आजकल संतों की इतनी भीड़ हो गयी है कि वास्तविक योगी-संतों को लोग पहचान नहीं पाते। ज्ञानी, अच्छे वक्ता

ही योगी-संत बनकर लोगों को ठगते हैं। काशी ही नहीं, संपूर्ण भारत में उच्चकोटि के अनेक संत हैं, पर वे अपने को कभी प्रकट नहीं करते। अज्ञानी बनकर रहने से अध्यात्म की ओर उन्मुख होने में आता है, क्योंकि संसार में इतने पापाचार हो रहे हैं जिन्हें दूर करना सहज नहीं है। अगर योगी-महात्मा इन कष्टों को दूर करने में तत्पर हों तो उनकी सारी शक्ति समाप्त हो जायगी। उन्हें परमार्थ की प्राप्ति नहीं होगी जिसके लिए वे साधना करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य सुन्दर है । मैं केवल एक महात्मा को जानता हूँ। वे तीन सौ वर्ष से अधिय वय के हैं। उनका नाम है—लाल बाबा। अगर वे कृपा करके दर्शन दें तो उनसे आशीर्वाद ले लेना।''

इतना कहने के बाद लाल बाबा का पूरा पता आदि लिखकर वरदाचरणजी ने दिया।

सभी लोग काशी आये। दूसरे दिन नलिनी बाबू को साथ लेकर वरदाचरणजी द्वारा दिये पते पर दिलीप बाबू आये। सँकरी गली में दो मंजिला मकान। चारों ओर सन्नाटा था। दरवाजे की साँकल बजाते ही दूसरी मंजिल की खिड़की से जटाधारी एक शक्ल झाँकती नजर आयी।

उक्त साधु ने कहा—''क्यों शोर मचाता है? भाग जा।'' कहने के साथ ही वह शक्ल गायब हो गयी।

इस घटना से दोनों व्यक्ति हतबुद्धि हो गये। अब क्या करें, समझ नहीं पा रहे थे। इसी ऊहापोह में थे। तभी पुनः वही शक्ल दिखाई दी। इस बार तीखे स्वर में आदेश आया—''अभी तक खड़ा है? भाग जा। गली के सभी लोग जानते हैं कि मैं आवारा, बदमाश और लम्पट हूँ। मेरे यहाँ तेरा क्या काम है?''

इस बार भी पहले की तरह चेहरा गायब हो गया। दिलीप बाबू ने कहा—''जब यहाँ तक आये हैं तब इन महात्मा से बिना मिले नहीं जाऊँगा। कम से कम यह तो मालूम हो जाय कि लाल बाबा यही हैं।''

तीसरी बार वही चेहरा पुनः बाहर निकला और उसने कहा—''हाँ, लाल बाबा मैं ही हूँ। जा, कल सबेरे आना।''

दिलीप बाबू ने विस्मय के साथ नलिनीकांत सरकार की ओर देखा। इसके बाद दोनों प्रसन्न चित्त से वापस चले आये। उन्हें इस बात पर संतोष हुआ कि वे ठीक जगह पर पहुँच थे।

दूसरे दिन सबेरे साँकल बजाने पर महात्माजी के शिष्य ने दरवाजा खोला और पूछा—''क्या बात है?''

दिलीप बाबू ने अपने आने का उद्देश्य बताया तो उसने कहा—''बाबा किसी से नहीं मिलते। आपको टरकाने के लिए सबेरे आने को कहा होगा।''

''कृपया बाबा को हमारे आने की सूचना दे दें। अगर वे दर्शन नहीं देना चाहेंगे तो हम वापस चले जायेंगे।'' नलिनीकांतजी ने कहा।

शिष्य महाशय ऊपर गये और वापस आकर इन दोनों व्यक्तियों को ऊपर भेज

दिया। दोनों व्यक्ति प्रणाम करने के बाद दर्शन, अध्यात्म, धर्म के बारे में प्रश्न करते रहे और बाबा बराबर उत्तर देते रहे।

चलते समय दिलीप बाबू ने कहा—''बाबा, कुछ परमार्थ दीजिए।''

बाबा ने कहा—''मुझसे किसी चीज की आशा मत रखो। मुझसे किसी को कुछ नहीं मिलता। मेरे एक शिष्य को नीचे देखा होगा। आज वह बारह वर्ष से मेरी सेवा कर रहा है। उससे पूछो, मुझसे उसे क्या मिला? मुझसे जो लोग कुछ पाना चाहते हैं, वे दूर रहकर प्राप्त करते हैं। अधिक दूर क्यों, जिस व्यक्ति ने तुम्हें यहाँ भेजा है, आज तक उससे मेरी मुलाकात नहीं हुई है। उसे क्या मिला?''

दिलीप बाबू के लिए सारी बातें रहस्यजनक थीं। जिस महात्मा से आज तक वरदाचरणजी मिले नहीं, उसके बारे में उन्हें जानकारी कैसे हो गयी? महात्माजी ने कैसे जान लिया कि हम वरदाचरणजी के निर्देश पर यहाँ आये हैं? इन्हीं सभी प्रश्नों से उलझते हुए दिलीप बाबू कलकत्ता वापस आ गये।

सारी कहानी सुनाने के बाद दिलीप बाबू ने वरदाचरणजी से कहा—''मेरे लिए तो यह अद्भुत घटना थी।''

वरदाचरणजी ने कहा—''रहस्य को रहस्य बना दो। केवल एक बात बता दूँ। यह महात्मा असाधारण संत हैं। दाराकिशोह के गुरु।''[1]

* * *

मुर्शिदाबाद जिले की ख्याति नवाबी शासन तथा कलापूर्ण साड़ियों के कारण रही है। इस जिले में अनेक दिग्गजों ने जन्म लिया है। इसी जिले के काँचनतला गाँव के मजुमदार वंश में वरदाचरणजी का जन्म हुआ था। आपकी प्राथमिक शिक्षा गाँव की चटशालाओं में हुई थी। बाद में उच्चशिक्षा के लिए आप बरहमपुर आये। लम्बा कद, गौरवर्ण, उन्नत ललाट, सौम्य आकृति थी। बड़े संयम से रहते थे। बचपन से ही अध्यात्म की ओर रुचि रहने के कारण सर्वदा गम्भीर बने रहते थे। इनके सहपाठियों या परिवार के लोगों को यह ज्ञात नहीं हो पाया कि आप एकान्त में क्या करते हैं। यज्ञोपवीत के बाद से ही आप प्राणायाम तथा ध्यान करते रहे। इस क्षेत्र में कुछ उन्नति कर लेने के बाद योग-शिक्षा के लिए योग्य गुरु की तलाश करने लगे।

१. कुम्भ कोणाम् के पूजनीय शंकराचार्य ने ब्रिटेन के पत्रकार डॉ० पाल ब्रण्टन को सम्भवतः इन्हीं महात्मा के बारे में बताया था। ब्रण्टन ने उनसे इच्छा प्रकट की कि किसी उच्चकोटि के संत का नाम सुझाइये, जिनसे दीक्षा लूँ। प्रत्युत्तर में जगत्गुरु शंकराचार्य ने कहा था—''तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सकने की योग्यता रखनेवाले केवल दो योगी इस देश में हैं। उनमें से एक काशी में एक बड़े मकान में छिपे रहते हैं। वह मकान साधारण लोगों की दृष्टि में छिपा रहता है। बहुत कम लोग उनका दर्शन कर पाते हैं। निश्चय ही अब तक कोई अंग्रेज उनकी शांति और एकांत में बाधा पहुँचा नहीं पाया है। मैं तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ। पर मुझे यही आशंका है कि वे शायद किसी अंग्रेज को अपना चेला बनाने को राजी नं होंगे।''

(गुप्त भारत की खोज, पृ० १६५-६६)

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य पंडित पंचानन भट्टाचार्य थे। इन्हीं भट्टाचार्य महाशय से वरदाचरणजी ने योग की दीक्षा ली थी।[1]

कॉलेज की शिक्षा पूर्ण करने के बाद आप नीमतीता हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। स्कूल में अध्यापन करने के बाद शेष समय आप योगाभ्यास करते थे। पत्नी के अलावा आपके पड़ोसियों या मित्रों को कभी इस बात की भनक नहीं लगी कि आप निरन्तर योगाभ्यास करते हैं। हमेशा अपने को छिपाकर रखते थे। इस बारे में कभी भूलकर कहीं चर्चा नहीं करते थे। आपमें अद्भुत वाक्-शक्ति थी। जिस वक्त आप भाषण देने के लिए खड़े होते थे, उस वक्त ऐसा लगता था जैसे वीणापाणि आपके कंठ में आकर बस गयी हैं। मधुर स्वर में धारा प्रवाह भाषण देने में आप सिद्धहस्त थे। घर पर पत्नी और पुत्र से स्नेह और कॉलेज में कठोर अनुशासन रखना आपका ध्येय था।

नीमतीता से आप लालगोला स्थित महेश नारायण हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य करने आये। इस स्कूल को आदर्श स्कूल बनाने के लिए आप अथक परिश्रम करने लगे। योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, समय की पाबन्दी और सुचारु रूप से कार्य के संचालन में सक्रिय रहे। राजा साहब के पुस्तकालय के लिए प्रसिद्ध क्रांतिकारी, कवि नलिनीकांत सरकार को पुस्तकाध्यक्ष बनाया। यहाँ महाराजा योगीन्द्रनारायण का एक वृहद् पुस्तकालय है।

श्री नलिनीकांत ने अपने क्रांतिकारी जीवन का उल्लेख करते हुए लिखा है— "प्रथम विश्व युद्ध के समय मैं लालगोला स्थित महाराजा के पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष था। उन दिनों सम्पूर्ण भारत क्रांतिकारियों के आन्दोलन से प्रभावित था। काशी-षड्यन्त्र के प्रमुख क्रांतिकारी नेता गोपेशचन्द्र राय को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए दो हजार रुपयों की घोषणा की गयी थी। गोपेशचन्द्र मेरे घनिष्ठ मित्र थे।"

एक दिन मेरे यहाँ एक लड़के को लेकर आये और कहा—"यह लड़का अब तेरे जिम्मे रहेगा। स्कूल में भर्ती कर देना। तू इसका सब कुछ है।"

इतना कहकर वे गायब हो गये। मैं कोई प्रश्न उनसे नहीं पूछ सका। गोपेश के जाने के बाद मैंने लड़के से पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

लड़के ने कहा—"धीरेन।"

दूसरे दिन लड़के को लेकर गाँव के स्कूल में गया। हेडमास्टर वरदाचरण मजुमदार मेरे मित्र थे। उन्हीं के बुलाने पर यहाँ काम करने आया हूँ। मैंने लड़के के बारे में झूठा परिचय देते हुए कहा कि यह मेरे दूर के रिश्ते से भतीजा है। यहाँ पढ़ने आया है। कृपया इसे अपने यहाँ भर्ती कर लीजिए।

---

१. कुछ लेखकों का कहना है कि योगी वरदाचरणजी ने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया था। बचपन में इन्हें स्वयं शंकर भगवान् ने दीक्षा दी थी। शायद यह बात सत्य हो। आमतौर पर यह माना जाता है कि बिना गुरु से दीक्षा लिए योग प्रक्रियाओं का सम्यक् ज्ञान नहीं होता।

वरदाचरणजी ने लड़के से कई प्रश्न पूछे। उन सभी प्रश्नों का उत्तर वह देता गया। इस तरह झूठ कहता गया कि मेरी जगह दूसरा कोई होता तो शायद ही भाँप पाता। सारी बातें सुनने के बाद वरदाचरण ने कहा—''अच्छा, कोशिश करूँगा, नलिनी, तुम दोपहर को एक बार मुझसे अकेले में मिलना।''

दोपहर को उनके कमरे में गया तो उन्होंने बिना किसी भूमिका के कहा—''तुम्हारे रिश्तेदार का लड़का काफी तेज मालूम पड़ता है। इसे अगर यहाँ भर्ती कर पाता तो स्कूल का गौरव बढ़ता, पर खेद है कि मैं इसे अपने यहाँ भर्ती नहीं कर सकता।''

''आखिर क्यों?''

''नया स्कूल है। कहीं पुलिस की नजर में आ गया तो व्यर्थ की परेशानी होगी।''

मैंने विस्मय से पूछा—''आखिर आपने लड़के में क्या देखा जिसके कारण पुलिस का भय हो गया?''

वरदाचरणजी ने कहा—''मैंने जो देखा, वह ठीक देखा है। मेरे देखने में गलती नहीं हो सकती।''

वरदाचरणजी ने अपनी आध्यात्मिक-शक्ति के माध्यम से यह समझ लिया कि यह क्रांतिकारियों का लड़का है और उनसे इसका सम्पर्क है। अगर इसे भर्ती किया गया तो कभी भी पुलिस यहाँ आ सकती है।

आगे सरकार ने लिखा है—''लालगोला में रहते हुए मैं चुपचाप दो कार्य और करता था। फरार विप्लवियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाना और हर सम्भव उनकी मदद करना। दूसरा कार्य था विप्लवी दल में साहसी कार्यकर्ताओं को भर्ती करना। वरदाचरणजी अपने स्कूल में कुछ छात्रों को योग की शिक्षा देते थे। उनमें से कुछ छात्रों पर मेरी नजर थी। उनमें से कतिपय लोगों को अपनी पार्टी में लेने के लिए ट्रेनिंग देता रहा। सारा काम चुपचाप होता रहा।''

अचानक एक दिन गाँव में हलचल मच गयी। बोर्डिंग हाउस को पुलिस ने घेर लिया। तलाशी में आपत्तिजनक कोई सामग्री नहीं मिली, फिर भी कई संदेहजनक छात्रों को पकड़कर पुलिस ले गयी। पकड़े गये छात्रों के चाल-चलन, व्यवहार से किसी को सन्देह नहीं होता था कि वे विप्लवी हैं।

उसी दिन दोपहर को वरदाचरण ने मुझे अपने यहाँ बुलाया। जब मैं उनके कमरे में गया तो तुरत कमरे का दरवाजा बन्द करके साँकल चढ़ा दी। फिर धीरे से बोले—''देखो भाई, मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा। यह पहले से ही कह देता हूँ। अब तुम कृपा करके यह बताओ कि तुम्हारी पार्टी में मेरे कितने छात्र सहयोग कर रहे हैं? विश्वास रखो, उन सभी छात्रों को 'गुड करेक्टर' का सार्टिफिकेट देकर विदा कर दूँगा। इससे उनकी कोई हानि नहीं होगी।''

मैंने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—''आप यह सब क्या कह रहे हैं? मेरी

कैसी पार्टी? मैं किसी भी पार्टी से सम्पर्क नहीं रखता। आप भ्रमवश मुझ पर सन्देह कर रहे हैं।''

देर तक वरदा बाबू मुझे समझाते रहे, पर मैं बराबर अस्वीकार करता रहा। कुछ दिनों बाद मैंने साश्चर्य देखा कि जितने छात्रों को मैंने विप्लवी बनाया था, उन सभी को एक-एक करके उन्होंने विदा कर दिया। ऐसी योग-शक्ति वरदाचरण में थी।

* * *

इसी प्रकार की एक और घटना का उल्लेख उन्होंने किया है।

एक दिन एक सहपाठी से लबे लड़क मुलाकात हो गयी। कुशल-मंगल के पश्चात् बातचीत के सिलसिले में काजी नजरूल इस्लाम की चर्चा हुई।

अनजाने सहपाठी के मुँह से निकल गया—''नजरूल तो मेरा गुरु भाई है।''

''तुम्हारा गुरु भाई?'' सरकार को विस्मय हुआ।

''हाँ, हम दोनों वरदा भैया के शिष्य हैं।''

वरदाचरण को लोग बातचीत के सिलसिले में 'दादा' कहते थे। नलिनी बाबू ने पूछा—''वरदाचरण के शिष्य कैसे बन गये?''

थोड़ी देर ऊहापोह करने के बाद मित्र ने कहा—''तुम मेरे घनिष्ठ मित्र हो। यह राज किसी के आगे मत खोलना। बात यह है कि मेरे जीवन में एक ऐसी घटना हो गयी है जिसे किसी के सामने कहने में लज्जा का अनुभव होता है। तुम्हें बताने में कोई हर्ज नहीं है। बहुत दिन पहले की बात है। एक दिन सबेरे सोकर उठा तो देखा—पत्नी का बिस्तर खाली है। सोचा, हाजत करने गयी होगी। मुझे क्या मालूम कि किसी से इश्क करने लगी है और आज मौका पाते ही उसके साथ भाग गयी। काफी देर तक इन्तजार करने पर जब वह नहीं आयी तब मुझे शंका हुई।''

मैंने उसके सामान की तलाशी लेनी शुरू की। कपड़े-जेवर आदि सामान गायब थे। तब स्थिति मेरे सामने स्पष्ट हो गयी। पड़ोसियों से पूछताछ करना बेकार है, समझकर मैं तनाव में रहने लगा। लेकिन दो-चार दिन के भीतर ही लोगों को मेरी स्थिति की जानकारी हो गयी।

यकीन करो, मैं अपनी पत्नी को बहुत चाहता था। कभी कोई कष्ट नहीं दिया। फिर भी उससे ऐसी गलती हो गयी। आखिर जब मेरा दिमाग काफी खराब हो गया तब वहाँ से चल पड़ा। तीन-चार माह तक उसकी खोज में जगह-जगह भटकता रहा।

ठीक इन्हीं दिनों अपने एक मित्र के आगे अपना दुखड़ा रोया तो उसने बताया कि योगी वरदाचरण के निकट चले जाओ। वे तुम्हें सही सुझाव देंगे। उनकी सलाह के अनुसार कार्य करना। 'अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें'। तुरत लालगोला जाकर उनके चरणों पर गिर पड़ा।

सारी घटना सुनने के बाद उन्होंने कहा—''जो औरत अपने पति की उपेक्षा

कर दूसरों के साथ भाग गयी, उसके लिए इतने उतावले क्यों हो? अगर तुमसे प्रेम होता तो क्या वह भागती? कुलटा पत्नी की अपेक्षा विधुर रहना ठीक है।''

यह राय सुनकर मैं रो पड़ा। मेरे मुँह से देर तक कोई शब्द नहीं निकला। बाद में मैंने कहा—''इतने दिनों के सम्पर्क को सहसा छिन्न-भिन्न करने को जी नहीं चाहता। कम से कम इतना बता दें कि वह कहाँ है?''

दादा वरदाचरण ने हँसकर कहा—''क्या करोगे जानकर? जो चला गया, उसे जाने दो। बदले की भावना दूर कर दो।''

मैंने कहा—''बदले की भावना मुझमें नहीं है। केवल यही पूछूँगा कि इतना कष्ट तुमने मुझे क्यों दिया? मैंने कौन-सा बुरा सलूक तुम्हारे साथ किया। दादा, मैं अपमान की पीड़ा को सह्य नहीं कर पा रहा हूँ।''

दादा को मेरी पीड़ा पर दया आयी। उन्होंने कहा—''एक शर्त पर तुम्हें उसका पता बता सकता हूँ। तुम उसके इस पाप के लिए कुछ नहीं कहोगे और न उससे घृणा करोगे। अगर उसे पहले की तरह पत्नी की मर्यादा देते हुए अपना सको तो मैं उसका पता बता सकता हूँ, अन्यथा उसकी खोज मत करो। उसे अपने पापों की सजा भोगने दो।''

इस बात को सुनकर मुझे शांति मिली। मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा—''मैं वायदा करता हूँ कि उसे पूर्ण पत्नी की मर्यादा दूँगा। इस घटना के बारे में कोई बात नहीं करूँगा। हम जैसे पहले थे, उसी तरह जीवन व्यतीत करेंगे।''

मेरी प्रार्थना सुनकर दादा कुछ देर चुप रहे। फिर आँखें बन्द कर ध्यानस्थ हो गये। काफी देर बाद उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने कहा—''तुम्हारी पत्नी को बहकाने वाला तुम्हारा ही मित्र था। उसे तुम्हारी पत्नी से नहीं, उसके जेवरों से प्यार था। जब तमाम जेवर समाप्त हो गये तब वह उसे असहाय अवस्था में छोड़कर भाग गया। आजकल वह दूसरों का बरतन-चौका करके दिन काट रही है। पेट भर अन्न जुटाना उसके लिए कठिन हो रहा है। तन पर अच्छे वस्त्र नहीं हैं। अगर तुम उसे देखोगे तो पहचान नहीं सकोगे। एक प्रकार से बड़ी दुर्दशा में है। अपने पापों के लिए निस्सन्देह अनुतप्त है। अब भी अगर ऐसी औरत को पाना चाहते हो तो मैं पता बता सकता हूँ।''

मैंने कहा—''आपसे वायदा करता हूँ कि उसे धर्मपत्नी की पूर्ण मर्यादा देते हुए घर ले आऊँगा।''

मेरी ओर गौर से एक बार उन्होंने देखा। शायद मेरे मनोभाव को पढ़ रहे थे। फिर उन्होंने नवद्वीप के उस इलाके का पता दिया। मकान का दरवाजा किधर है; मकान के आसपास का सारा भूगोल इस तरह बताते रहे जैसे सब कुछ देख रहे हों।

गुरुदेव के बताये पते पर गया। मुझे देखते ही पत्नी मेरे पैरों पर गिर पड़ी। वहाँ से गाँव न जाकर सीधे कलकत्ता चला आया। गुरुदेव की कृपा से हमें नया जीवन प्राप्त हुआ है। उनके बताये मंत्र का बराबर जप कर रहे हैं। अब हमारे यहाँ कोई समस्या नहीं है।''

* * *

श्री वारीन्द्र कुमार घोष कृष्णनगर में कुछ लड़कों से योगाभ्यास कराते थे। इन छात्रों में एक छात्र योगाभ्यास करते-करते पागल हो गया। वारीन्द्रजी मुसीबत में फँस गये। डॉक्टरों से इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। सहसा घोष महाशय को योगी वरदाचरण की याद आयी।

तुरत पागल लड़के का एक चित्र उनके यहाँ भेजा गया।

फोटो लेकर आनेवाले से योगी वरदाचरणजी ने कहा—''घोष बाबू से कहना कि हर किसी को योग की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। आधार समझकर ही योगाभ्यास कराना चाहिए। इस लड़के का हृदय बहुत कमजोर है। लड़ने की शक्ति इसमें नहीं है। इसके पागल होने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है। इसका एक घनिष्ठ मित्र था। दोनों एक साथ फुटबाल खेलते थे। खेल के मैदान में ही इसके मित्र की दुर्घटना के कारण मृत्यु हो गयी। मरने के बाद भी वह अपने इस मित्र को नहीं भुला सका। कहीं योग-साधना के माध्यम से मित्र उससे अलग हो जाय, इस भय से उसने इसे कसकर पकड़ रखा है। दुष्टात्मा है। घबराने की बात नहीं है। आगे क्या-क्या करना होगा, यह सब मैं लिख देता हूँ। घोष बाबू से कह देना कि निर्देशानुसार कार्य कर दें तो लड़का ठीक हो जायगा।''

कुछ दिनों बाद वह लड़का ठीक हो गया।

वरदाचरणजी जिन दिनों लालगोला रहते थे, उन दिनों अक्सर इनके यहाँ एक-दो अपरिचित संत-महात्मा आया करते थे। जो लोग वरदाचरण के योगैश्वर्य से परिचित थे, उन्हें संतों के आगमन से आश्चर्य नहीं होता था। कभी-कभी प्रश्न करने पर अंतरंग मित्रों को किसी संत के बारे में बता दिया करते थे।

कहा जाता है कि बार लालगोला स्थित स्कूल में स्कूल इंस्पेक्टर जाँच करने आया। उसकी शक्ल देखते ही स्कूल में खलबली मच गयी। सभी अध्यापक क्लास में अपने-अपने छात्रों को लेकर पढ़ाने लगे। इंस्पेक्टर सीधे हेडमास्टर के कमरे में आया। भीतर कुर्सी पर बैठते हुए उसने हेडमास्टर से हाजिरी रजिस्टर माँगा। सभी अध्यापकों के हस्ताक्षर देखने के बाद नीचे उसने अपना हस्ताक्षर कर दिया।

इसके बाद इंस्पेक्टर साहब हेडमास्टर के साथ प्रत्येक क्लास में मुआइना करने गये। एकाएक हेडमास्टर साहब ने कहा—''साहब, आप मेरे कमरे में जाकर बैठिये। मैं जरा जलपान के लिए आदेश दे आऊँ।''

इंस्पेक्टर साहब हेडमास्टर साहब के कमरे की ओर बढ़े और हेडमास्टर वरदाचरणजी दूसरी ओर मुड़ गये।

हेडमास्टर के कमरे में आकर इंस्पेक्टर साहब जलपान के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। एकाएक वरदाचरणजी ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा—''आप आ गये हैं सर। माफ कीजिएगा, वृन्दावन से एक संत आ गये थे, इसलिए आने में देर हो गयी।''

कहने के साथ ही वरदाचरणजी हाजिरी रजिस्टर खींचते हुए उसमें हस्ताक्षर करने गये तो देखा—उनके स्थान पर उनका ही हस्ताक्षर है। उन्हें आश्चर्य हुआ। एकाएक

मुँह से निकल गया—''मेरा हस्ताक्षर किसने किया?''

अब इंस्पेक्टर ने चकित होकर पूछा—''क्या कह रहे हैं? अभी थोड़ी देर पहले मैंने आपके सामने ही सभी अध्यापकों की उपस्थिति हस्ताक्षर देखने के बाद अपना हस्ताक्षर किया। अब आप पूछ रहे हैं कि मेरा हस्ताक्षर किसने किया?''

वरदाचरणजी को चुप रहते देख पुनः इंस्पेक्टर ने कहा—''अब शायद आप यह कहेंगे कि मेरे साथ क्लासों का मुआइना करने नहीं गये थे।''

वरदाचरणजी ने कहा—''साहब, विश्वास कीजिए मैं सीधे घर से............।''

कहते-कहते वे रुक गये। कुर्सी पर बैठने के साथ ही आँखें बन्द हो गयीं। क्षण भर बाद वे एक कागज लेकर न जाने क्या लिखने लगे।

लिखना समाप्त करने के बाद उन्होंने उस कागज को इन्स्पेक्टर की ओर बढ़ाते हुए कहा-''यह रहा मेरा त्यागपत्र। अब तक मेरी जगह जो सज्जन कार्य कर रहे थे, वह मैं नहीं था। मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति को बचाने के लिए मेरे इष्ट देवता आये थे। यह हस्ताक्षर उन्हीं का है। मैं तो सीधे घर से चला आ रहा हूँ।''

तब तक स्कूल के कुछ अध्यापक भी आ गये। सारी बातें सुनने के बाद सभी लोग आश्चर्य के सागर में गोते लगाने लगे।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि योगी वरदाचरण के परलोकवासी होने के बाद केवल दो व्यक्तियों ने उन्हें स्मरण किया। यद्यपि वरदाचरणजी अपने को छिपाकर रखते थे, पर जो लोग उनसे लाभ उठा चुके हैं, उन्होंने भी स्मरण नहीं किया।

■



नारायण स्वामी

श्रद्धेय पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी का मुझ पर असीम स्नेह है। आपके कनिष्ठ सहोदर का नाम नारायण स्वामी था। काशी तथा कलकत्ता में नारायण स्वामी के बारे में अनेक अलौकिक कहानियाँ सुनता रहा। यहाँ तक कि कुछ ऐसे लोग भी मिले जो अपनी आप बीती सुनाते रहे। चूँकि मेरे जीवन में कभी अलौकिक घटना नहीं हुई, इसलिए मैं इन सभी बातों को बराबर गप समझता रहा।

एक बार कलकत्ता में चतुर्वेदीजी ने कहा—''जरा चलो, हन्नू से मुलाकात कर आयें।''

उनके साथ एक विशाल भवन की तीसरी या चौथी मंजिल में स्थित एक कमरे में आया। वहाँ दर्जनों लोग मौजूद थे। कमरे के मध्य में भीमकाय पलंग था जिस पर नारायण स्वामी विराजमान थे। कई मारवाड़ी उनकी सेवा कर रहे थे। कोई चम्पी कर रहा था तो कोई पैर दबा रहा था। कोई रसोई घर में व्यस्त था तो कोई कमरे की सफाई कर रहा था। गोया शाही दरबार था।

पलंग के दोनों किनारे दर्जनों कुर्सियाँ थीं। हम बैठ गये। नारायण स्वामी बीड़ी पी रहे थे। उन्होंने पूछा—''कहो पंडत, सब ठीक। बिटिया मजे में है?''

यह सम्बोधन मुझे जरा अटपटा लगा। प्रणाम-नमस्कार दूर रहा, हाथ की बीड़ी भी सम्मान दिखाने के लिए उन्होंने नहीं फेंकी। पूर्ववत् कश लगाते रहे। श्मश्रुहीन आनन, कमर में लुँगी पहने थे। पलंग पर ढेरों पुस्तकें बिखरी हुई थीं।

नारायण स्वामी के बारे में इतना सुन रखा था कि आप कोई नम्बर बताते हैं

जिसका लाभ जुआ खेलने वाले उठाते हैं। यह पता नहीं कि घोड़े का रेस, फाटका या कौन सा, कैसा नम्बर होता है।

जाहिर है कि जब सटोरिये लाभ उठाते हैं तब वे प्रसन्न होकर अपनी रकम का उपयोग देवार्चन से लेकर संतों की सेवा में खर्च करते हैं। नारायण स्वामी का सारा खर्च शायद यही लोग उठाते थे।

कलकत्ता और काशी की कई गोष्ठियों में स्वामीजी को अध्यक्षता करते देख चुका हूँ। तंत्र, वेदान्त और धर्म पर साधिकार भाषण देते थे। इतनी विस्तृत जानकारी बहुत कम लोगों में देखने में आयी है।

सहसा मैं कैंसर से पीड़ित हो गया। निरामय के बाद स्वास्थ्य काफी खराब हो गया। मेरी हालत देखकर चतुर्वेदीजी ने कहा—''मुजफ्फरनगर की जलवायु बहुत अच्छी है। मेरे साथ चलकर वहाँ कुछ दिन रहो।''

मुजफ्फरनगर आने पर अनुभव किया कि यहाँ की जलवायु वास्तव में अच्छी है। वृहद् भवन, नीचे ७-८ कमरे थे। और प्रत्येक कमरे में ८-१० स्टील की आलमारियाँ थीं जिसमें पुस्तकें भरी थीं। मेरी समझ में तंत्र-साहित्य का इतना बड़ा संग्रह किसी भी पुस्तकालय में नहीं होगा। बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, उर्दू, संस्कृत भाषाओं की पुस्तकें थीं। पुस्तकों को देखने से स्पष्ट हो जाता था कि सभी पुस्तकों का अवलोकन हुआ है, क्योंकि पुस्तकों में लाल स्याही से निशान लगाये गये थे। इतने ग्रंथों का अध्ययन करना मंदराचल पर्वत उठाने के बराबर था। निस्सन्देह नारायण स्वामी अद्भुत व्यक्ति थे।

मुजफ्फरनगर में रहते समय रात को कभी-कभी ऐसा लगता था जैसे आँगन में कोई टहल रहा है। हल्की पदचाप की ध्वनि सुनाई देती थी। कमजोरी के कारण मैं अपनी जगह लेटा रहता था। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता था।

सहसा एक दिन चतुर्वेदीजी ने कहा—''चलो, हरिद्वार-ऋषिकेश का चक्कर लगा आयें।''

ऋषिकेश में गंगा किनारे लँगड़े बाबा का एक आश्रम है। लँगड़े बाबा का नाम स्वामी राममनोहर गिरि है। मैं आश्रम के सामने स्थित फूलों के बाग को देख रहा था। सहसा कमरे के भीतर से आवाज आयी—''मुखर्जी, इधर आओ।''

कमरे में जाते ही चतुर्वेदीजी ने कहा—''स्वामीजी नारायण स्वामी के बारे में कुछ सुना रहे हैं। सुनो।''

समझते देर नहीं लगी कि यहाँ नारायण स्वामी की चर्चा चल रही है। सम्भवत: चतुर्वेदीजी को यह आभास हो गया है कि मैं उनके योगैश्वर्य के बारे में विश्वास नहीं करता और अब एक अनुभवी संत की जबानी उनकी कहानी सुनाना चाहते हैं।

स्वामी राम मनोहर ने कहा—''मैं उनके वेदान्त ज्ञान से प्रभावित होकर एक अर्से तक उनके मुजफ्फरनगर वाले भवन में रहा। अपने सामने एक-दो नहीं, अनेक

अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करते देख चुका हूँ। मध्य रात्रि में वे नीचे के आँगन में विभिन्न प्रकार के जीवों के साथ नृत्य करते और उन्हें भोजन खिलाया करते थे। वह एक ऐसा भयानक दृश्य था जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। मुझे यह मालूम था कि बाबा शराब पीते हैं, वेश्याओं के यहाँ गाना सुनते हैं। उनके यहाँ कई वारांगनाओं को आते-जाते भी देखा था।''

एक दिन देखा कि दो सुन्दर युवतियाँ उनकी खाट पर बैठकर न जाने क्या बातें कर रही थीं। यह दृश्य मुझे नागवार लगा। मैंने जानबूझ कर खाँसा और तुरन्त दोनों युवतियाँ हवा में गायब हो गयीं। अपने कमरे में टहलते हुए न जाने किस अदृश्य व्यक्ति से बातें करते थे। अपर पक्ष की आवाज नहीं सुनाई देती थी, पर स्वामीजी की बातें अस्पष्ट रूप से सुनाई दे रही थीं। कभी-कभी मुझे यह सब घटनाएँ अजीबो-गरीब लगतीं। पूछने पर अक्सर टाल जाते या कहते, आँखों का भ्रम है।

एक दूसरी घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—''मैं नारायण स्वामी की वाक्-शक्ति का परिचय कई बार प्राप्त कर चुका हूँ।'' पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी की ओर देखते हुए गिरिजी ने कहा—''सुजानगढ़ वाली घटना तो आप जानते होंगे।''

मैंने सोचा कि यह कहानी सुनने से वंचित न रह जाऊँ, इसलिए पूछा—''वह कौन सी घटना थी?''

स्वामी राम मनोहर ने कहा—''नारायण स्वामी एक अर्से तक सुजानगढ़ में थे। यह घटना वहीं हुई थी। नारायण स्वामी अपने तन पर बहुत कम कपड़े रखते थे। अवधूत आदमी को बोझा लादना पसन्द नहीं था। राजस्थान गर्म प्रदेश, अक्सर शाम होने के बाद वे दिगम्बर होकर टहला करते थे। उन दिनों स्वामीजी जहाँ रहते थे, वहीं एक जज रहता था। मुमकिन है कि इन्हें दिगम्बर रूप में टहलते कई बार देख चुका हो। एक दिन प्रत्यक्ष रूप में देखते ही वह बिगड़ उठा। नारायण स्वामी चूकने वाले नहीं थे। बात बढ़ गयी। अन्त में जज साहब अपने पद की शान में आ गये और कहा—''ठीक है। कल सबेरे तुम्हें मजा चखाऊँगा।''

स्वामीजी अपने गणों के साथ वहाँ रहते थे। जज और स्वामीजी में होने वाली गाली-गलौज को वे लोग सुनते रहे । पता नहीं, सबेरे क्या होगा। सभी चिन्तित हो उठे। जज साहब के 'मजा चखाऊँगा' शब्द सुनते ही नारायण स्वामी ने कहा—''देखा जायगा।''

भोर के वक्त अपने एक भक्त को बुलाकर उन्होंने कहा—''देख, मैं डूँगरी (पहाड़) पर जा रहा हूँ। यह जज मुझे बुरी तरह खोजेगा। पहले कुछ मत बताना जब यह पागलों की तरह परेशान हो उठे और तुझसे पूछे तब तू इन्हें मेरे पास ले आना।''

इतना कह कर स्वामीजी एक ओर रवाना हो गये। सबेरा होने के बाद बीकानेर से तार आया कि जज साहब को गिरफ्तार कर लिया जाय और उन्हें जिला खारिज कर दिया जाय। इस तार को पाते ही जज साहब की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी

हो गयी। ऐसी कौन-सी गलती हो गयी जिसके कारण अन्नदाता ने यह आदेश भेजा? मुसीबत आने पर व्यक्ति की बुद्धि खराब हो जाती है। जज साहब की बेचैनी देखकर घर के लोग भी घबरा उठे।

अचानक पत्नी ने कहा—''मेरी समझ से कल रात को आप नंगे बाबा से झगड़ रहे थे, उनके कारण ऐसा हुआ होगा।''

जज साहब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। एक सामान्य साधु राज दरबार में रातो-रात कैसे अपना प्रभाव डाल सकता है? लेकिन पत्नी के अधिक दबाव डालने पर वे नारायण स्वामी की खोज में आये। यहाँ आने पर पता चला कि वे नहीं हैं। रमता योगी हैं, कहीं चले गये हैं। अब जज साहब बौखला उठे। उन्हें धीरे-धीरे यह विश्वास होने लगा कि शायद उस नंगे सन्त से हुए झगड़े के कारण यह सजा मिली है।

अब वे तेजी से पागलों की तरह सन्त की खोज करने लगे। उनकी चिन्ता-जनक स्थिति को देखकर नारायण स्वामी के भक्त ने कहा—''मालिक, आप एक बार डूँगरी तक देख आइये। अक्सर बाबाजी को उधर जाते देखा है। शायद वहाँ मिल जायँ।''

आशा की किरण पाकर जज साहब ने कहा—''अरे भाई, जरा मेरे साथ तू भी चल। पता नहीं, डूँगरी में वे कहाँ होंगे।''

गण स्वामीजी के निर्देशानुसार उन्हें लेकर डूँगरी तक आया। नारायण स्वामी वही दिखाई दिये। उन्हें देखते ही जज साहब दौड़ते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े। बोंले—''महाराज, मुझे बचाओ वर्ना मैं यही मर जाऊँगा।''

नारायण स्वामी ने कहा—''घबराने की जरूरत नहीं है बेटा। नौकरी भले ही चली जाय, पर जिला खारिज नहीं होगा।''

स्वामीजी की जबानी यह बात सुनते ही जज साहब चौंक उठे। उन्होंने अपने मुँह से कुछ नहीं कहा और यह साधु कैसे मेरे साथ हुई दुर्घटना को जान गया? शायद कल रात की घटना के कारण ही ऐसा हुआ है। जज साहब अब अपनी गलती समझ गये।

इसी बीच गिरिजी लघु शंका करने गये। हम लोग जज साहब की घटना पर सोचते रहे। वापस आने पर गिरिजी ने कहा—लगे हाथ एक और कहानी सुन लो। वे कितने अद्‌भुत पुरुष थे, इस घटना से मालूम हो जायेगा। नारायण स्वामी के चमत्कार से बीकानेर नरेश भी प्रभावित हुए थे। बात यह हुई थी कि जिन दिनों स्वामीजी साधनारत थे, उन्हीं दिनों बीकानेर नरेश गंगा सिंह वहाँ आ गये। यहाँ वे अपनी कोठी में ठहरे थे। उन दिनों नारायण स्वामी कुछ चमत्कार कर चुके थे किसकी चर्चा नगर में होती थी। सुजानगढ़ में उन्हें एक सिद्ध सन्त माना जाता था।

बात महाराजा के कानों तक पहुँची कि यहाँ आजकल एक सिद्ध संत रहते हैं। नगर के लोग उनका सम्मान करते हैं। कई लोगों की जान बचा चुके हैं। संत की इतनी प्रशंसा सुनने पर महाराजा को उत्सुकता हुई कि उनसे मुलाकात की जाय।

उन्होंने अपने कर्मचारी को आदेश दिया कि मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। उन्हें आदर सहित ले आओ।

आदेश पाते ही लोग संत की खोज में चल पड़े। छोटा कस्बा था। तुरन्त पता लगा कि संतजी थोड़ी देर पहले जसवन्त नगर गये हैं। घुड़सवार शीघ्र गति से उधर दौड़े । रास्ते में वे कहीं नहीं दिखाई दिये। वापस लौटकर सेवक ने सारा समाचार सुनाया। महाराजा ने कहा—''कोई हर्ज नहीं, फिर कभी मिल लेंगे।''

महाराजा राजधानी जाने के लिए कोठी से चल पड़े। महाराजा बीकानेर की अपनी रेलगाड़ी और कर्मचारी थे। महाराज रेल पर बैठे। ड्राइवर ने सीटी दी और गाड़ी स्टार्ट की, पर गाड़ी चली नहीं। एक, दो नहीं, तीन ड्राइवर इंजन की जाँच में व्यस्त हो गये। कारण क्या है, खोजने पर पता नहीं चला। महाराजा ने यात्रा स्थगित कर दी।

दूसरे दिन किसी दरबारी ने आकर सूचना दी कि जिस संत की कल तलाश हो रही थी, वे आ रहे हैं। महाराजा ने कहा—''उन्हें बाइज्जत यहाँ ले आओ।''

नारायण स्वामी का आदर के साथ स्वागत किया गया। थोड़ी देर बातचीत करने के बाद महाराजा ने कहा—''अगली बार आने पर आपसे पुनः बातें होंगी।''

महाराजा स्टेशन आये। गाड़ी पर बैठे और वह तुरन्त रवाना हुई। तुरन्त उनके आदेश पर गाड़ी रुक गयी। महाराज ने पूछा—''गाड़ी में क्या खराबी थी जिसकी वजह से कल नहीं चली?''

ड्राइवरों ने कहा—''कोई खराबी नहीं थी। हम लोग दिन भर ही नहीं, रात तक जाँच करते रहे। सबेरे तक गाड़ी स्टार्ट नहीं हुई। लेकिन आपके आते ही आज स्टार्ट हो गयी।''

महाराजा ने पुनः यात्रा स्थगित कर दी और सुजानगढ़ की कोठी में चले आये। कोठी में आते ही आदेश दिया कि संतजी को बुला लाओ।

नारायण स्वामी के आने पर महाराजा ने कहा—''आपसे बातचीत करने के लिए मैंने आज की यात्रा स्थगित कर दी।''

नारायण स्वामी ने कहा—''नहीं राजन्, मेरे कारण गाड़ी नहीं गयी और आज आपको मैं यहाँ ले आया।''

इसके बाद योगादि के बारे में सवाल-जवाब होते रहे। सहसा बीकानेर नरेश ने पूछा—''कृपया यह बताइये कि मैं पिछले जन्म में किस योनि में था?''

नारायण स्वामी ने कहा—''मैं बताऊँगा ही नहीं, वह स्थान आदि दिखा दूँगा। चल उठ।''

दोनों गन्तव्य स्थल की ओर चल पड़े । बीकानेर के कुछ दूर आगे लालगढ़ का जंगल है। यहाँ आने पर महाराजा ने देखा कि एक वृद्ध संत बैठे हैं।

नारायण स्वामी ने कहा—''पिछले जन्म में तू इसी संन्यासी का सेवक था।''

महाराजा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—''इस संन्यासी की उम्र कितनी है।''

नारायण स्वामी ने कहा—"डेढ़ सौ वर्ष के ऊपर है। तू पिछले जन्म में जाट था और इनके लिए लकड़ियाँ लाता था। यह जान ले कि कुछ दिनों बाद पुनः इनकी सेवा में आ जायगा।"

राम मनोहर गिरि ने कहा—"इस तरह की अनेक कहानियाँ हैं। कहाँ तक सुनाऊँ? कलकत्ते के मारवाड़ी तो अर्थ-लोभ के कारण इनकी सेवा करते थे वर्ना ऐसे अवधूत को वे टके को न पूछते।"

*　　　*　　　*

पंडित भीमसेन चतुर्वेदी काशी स्थित छोटी पियरी मुहल्ले में रहते थे। आपने प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पंडित प्रभुदत्त अग्निहोत्री से कर्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त की थी। मुजफ्फरनगर के प्रसिद्ध सेठ चैनसुख राम ने जब अग्निहोत्र लेना चाहा तब पंडित प्रभुदत्त ने पंडित भीमसेन को वहाँ भेजा। बाद में पंडित भीमसेन चतुर्वेदी सपरिवार वहीं रहने लगे। इनके आवास के लिए सेठ ने भवन भी दिया। लेकिन वहाँ चतुर्वेदीजी अस्थायी रूप से रहते थे।

इसी नगर में १३ फरवरी, सन् १६०६ ई० को नारायण स्वामी का जन्म हुआ। आपकी राशि का नाम नारायण था, इसलिए आपका नाम नारायण स्वामी हुआ। पुकारने के लिए हनुमद्दत्त रखा गया था, क्योंकि पिताजी हनुमान देवता की आराधना करते थे और उन्हीं की कृपा से आपका जन्म हुआ था। घर के लोग पूरा नाम न लेकर 'हन्नू' कहकर पुकारते थे।

आपकी प्राथमिक शिक्षा मुजफ्फरनगर में हुई। बचपन से ही आप मेधावी छात्र थे। जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते थे, वह कंठस्थ हो जाती थी। डी०ए०वी० कॉलेज के हिन्दी अध्यापक ने किसी बात पर आपको फटकारा। इस अपमान को आप पचा नहीं सके। कर्मकाण्डी ब्राह्मण का पुत्र, घर में सबसे छोटा होने के कारण दुलारू था, स्वाभिमान कूट-कूट कर आपकी रगों में भरा था। बात लग गयी।

टिफिन टाइम में बाहर आये और पैदल चल पड़े। कभी-कभी जीवन की सामान्य घटना व्यक्ति के जीवन की दिशा बदल देती है। अधिकांश महापुरुषों के जीवन में ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

मुजफ्फरनगर से एक स्टेशन आगे आप पैदल चलकर मंसूरपुर आये। यहाँ जो पहली गाड़ी मिली, उससे दिल्ली चले गये। दिल्ली में इधर-उधर चक्कर काटने के बाद एक दिन राजस्थान की ओर जाने वाली गाड़ी पर बैठ गए। न जाने क्या मूड में आया कि सुजानगढ़ स्टेशन पर उतर गये।

सुजानगढ में सरस्वती बाई नामक एक महिला को आप पर दया आयी। वह अपने यहाँ ले जाकर बच्चे की तरह खिलाती-पिलाती रही। लेकिन आपका मन यहाँ नहीं लग रहा था। एक दैवी-शक्ति आपको अपनी ओर आकर्षित करती रही। आखिर एक दिन आप वहाँ से पलायित होकर पुष्कर चले आये।

महर्षि रमण की तरह नारायण स्वामी का कोई गुरु नहीं था। वे भारत में प्रचलित किसी साधु सम्प्रदाय में कभी सम्मिलित नहीं हुए। उन्हें किसी सन्त, महात्मा या योगी ने बीज मंत्र नहीं दिया। अब यह बताना कठिन है कि साधना की प्रक्रिया में वे कैसे इतने उच्चस्तर तक पहुँच गये थे।

पुष्कर में तीन वर्ष रहने के बाद वे दिल्ली आये तो परिचितों ने इन्हें पकड़ लिया। मुजफ्फरनगर आने पर माँ इन्हें कड़े पहरे में रखने लगी।

१५ मार्च, सन् १६२८ ई० को आप माँ के स्नेह-बंधन से हमेशा के लिए मुक्त हो गये। माँ के निधन के बाद पुनः यायावरी को अपनाया। लेकिन एक विशेष परिवर्तन आपमें हो गया था। अब जहाँ कहीं जाते, उसकी सूचना घर पर दे देते थे।

अपने अवधूत-जीवन में आपने वेद, ज्योतिष, दर्शन और तंत्र का गहरा अध्ययन किया। अपनी अपूर्व मेधाशक्ति तथा विलक्षण प्रतिभा के कारण कई भाषाओं के ज्ञाता बन गये। मातृभाषा हिन्दी के अलावा बंगला, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी भाषा पर आपने समान अधिकार प्राप्त किया।

जिन दिनों आपकी उम्र १८ वर्ष थी, उन दिनों आप पुष्कर में थे। वहीं आपने 'शिवोऽहम्' नामक महाकाव्य लिखा। कहा जाता है कि महाकवि जयशंकर प्रसाद जिन दिनों 'आँसू' लिख रहे थे, उन्हीं दिनों, उसी शैली में आपने यह महाकाव्य लिखा था।

आप अंक-शास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। चौकोर और गोल यंत्र बनाकर लोग पूजा करते हैं। इस तरह अनेक यंत्र आपकी डायरी में दर्ज हैं। इसे आप 'नौकर' कहते थे। एक बार ६ फुट लम्बे और ४ फुट चौड़े कागज में अंक-शास्त्र का नायाब यंत्र आपने बनाया जिसे देखकर आपके यहाँ आने वाला एक विदेशी यात्री चकित रह गया।

* * *

नारायण स्वामी अपने ढंग के तांत्रिक थे। आम तौर पर वामाचारी पंच मकार के प्रेमी होते हैं।[1] नारायण स्वामी पंचमकारों की व्याख्या इस ढंग से करते हैं जिसके बारे में मुझे जानकारी नहीं थी।

कुलार्णव तंत्र में लिखा है—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकार पंचकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ॥

नारायण स्वामी इस श्लोक की व्याख्या इस तरह करते हैं—"मद्य, मांस, मीन,

---

१. साधक की जब कुंडलिनी-शक्ति जागृत हो जाती है तब वह मस्तक स्थित सहस्त्रार तक जाते समय, मूलाधार से प्रारंभ कर प्रति चक्र को अपने वाम भाग में परिवेष्ठित करती हुई, साथ ही तत्चक्रों में स्थित वर्णों को अपने अंग में मिला लेती है। समाधि भंग होने के बाद मस्तिष्क से मेरुचक्र आते समय वह प्रति चक्र को अब विपरीत दिशा में यानी दक्षिण भाग में परिवेष्ठित करती हुई नीचे आ जाती है। कुंडलिनी-शक्ति की इस प्रक्रिया को वामाचारी अपनाते हैं।

मुद्रा (मुद्रा का अर्थ है—भुना हुआ चिउड़ा, चावल, गेहूँ और चना) और मैथुन योगियों के लिए अनिवार्य है। वामाचारी इस श्लोक का अर्थ जिस रूप में करते हैं, वह वस्तुतः वास्तविक नहीं है।

गंधर्व तंत्र के अनुसार ब्रह्मरंध्र में समवस्थित सहस्रदल कमल है, उससे बह कर निकलने वाली अमृत धारा को मद्य बताया गया है—

जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं तथा ।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम् ॥

अर्थात् जीभ उलट कर गले के संयोग से वह अमृत योगी लोग पीते हैं। (यह वह शराब नहीं जो बाजार में 'अद्धा-पौवा' के नाम पर बिकता है।)

कुलार्णव तंत्र में ही मांस के बारे में स्पष्ट है—योग जानने वाले जो पुरुष अपने ज्ञान के खड्ग से पुण्य तथा पापरूपी पशुओं को मारकर अपने चित्त को परमतत्व में विलीन कर देता है, वही मांस खाने वाला कहलाता है।

मीन के बारे में आगम शास्त्र कहता है—गंगा (इड़ा) और यमुना (पिंगला) के नीचे (श्वास और प्रश्वास नामक) दो मत्स्य हैं। जो इन्हें खा जाय, वही मत्स्यसाधक हो जाता है।

मुद्रा के बारे में विजय तंत्र में लिखा है—"दुष्टों की संगति से बचे रहने को ही मुद्रा कहते हैं, क्योंकि सत्संग से मुक्ति मिलती है और दुष्टों का साथ होने पर बंधन होता है।"

रहा मैथुन का प्रश्न। इस बारे में कहा गया है—

इडापिंगलयोः प्राणान् सुषम्नायां प्रवर्त्तयेत् ।
सुषम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ॥
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नाम कीर्त्तितम् ॥

अर्थात् इड़ा और पिंगला में स्थित प्राणों (श्वास-प्रश्वासों) को सुषम्ना में प्रवर्त्तित कर दें, क्योंकि सुषम्ना ही शक्ति है और जीव ही परात्मा शिव है।[1] उनके (जीव और सुषम्ना) पारस्परिक संगम को ही देवताओं ने मैथुन बताया है।

नारायण स्वामी की इस व्याख्या से उन लोगों का भ्रम दूर हो जाना चाहिए जो पंचमकार का गलत अर्थ लगाते हैं। नारी संभोग, मत्स्य भोजन और मद्यपान से कैसे कोई साधक परमतत्व प्राप्त कर सकता है?

* * *

परिवार में साले का बड़ा महत्व होता है। श्रद्धेय पं० सीताराम चतुर्वेदी के साले पं० शिवनारायण उपाध्याय के साथ नारायण स्वामी विश्वविद्यालय से वापस लौट रहे थे।

अस्सी की चौमुहानी आने पर उपाध्यायजी ने कहा—"स्वामीजी, सुनता हूँ कि

१. तंत्र मत से कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार में जाकर शिव के साथ विलास करता है। कुंडलिनी का एक नाम वामा भी है—सा वामा शक्तिरूपा च सा शिखा चित्कला परा।

आप बड़े सिद्ध संत हैं। अनेक चमत्कार दिखा चुके हैं। आज आपकी परीक्षा लेना चाहता हूँ।''

नारायण स्वामी ने कहा—''बोल साले, कौन सी परीक्षा लेना चाहता है।''

उपाध्यायजी ने कहा—''आप ऐसा मंत्र पढ़िये कि तुरन्त पानी बरसने लगे।''

चलते-चलते स्वामीजी ने हाथ ऊपर उठाकर हिलाया और पानी बरसने लगा। बिना बादल, बेमौसम की बरसात से सड़क पर भगदड़ मच गयी। भदैनी के समीप उपाध्यायजी का प्रेस था। वहाँ तक आते-आते लोग भींग गये।

उपाध्यायजी ने कहा—''अब ऐसा कीजिए कि पानी बन्द हो जाय।''

पहले की तरह स्वामीजी ने हाथ ऊपर उठाकर घुमाया और पानी रुक गया।

स्वामीजी अपने मित्रों के साथ बैठ ताश खेल रहे थे। जिस मकान में वे ताश खेल रहे थे, उस परिवार के लड़के की जन्मकुंडली खो गयी थी। घर के सभी लोग सरगर्मी से खोजने में लगे थे। फलस्वरूप शोरगुल हो रहा था। कुंडली मिलाने के लिए कन्यापक्ष की ओर से पंडित आया था।

नारायण स्वामी ने एक आदमी से कहा—''देखो तो क्यों सब उधम मचा रहे हैं?''

घटना का पता लगते ही उन्होंने एक कुंडली बना दी और कहा—''इससे मिलान करके तिथि वगैरह तय कर लें।''

महीनों बाद लड़के के नाना के यहाँ असली कुण्डली मिली। मिलान करने पर देखा गया कि दोनों एक जैसी हैं। ग्रह-राशि यथास्थान है।

श्रीमती शान्ति देवी स्वामीजी की शिष्या हैं। उनका एक घरेलू नौकर था। पता नहीं, किस कारण से भूतग्रस्त हो गया। नौकर होने के कारण लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन सीढ़ी से उतरते समय वह गिरकर बेहोश हो गया।

लोग उसे डॉक्टर के पास ले गये। डॉक्टर ने कहा—''इसके बदन में खून बन नहीं रहा है। बचना मुश्किल है।''

अन्य कई डॉक्टरों ने यही सम्मति दी। अचानक शान्ति देवी को अपने गुरु की याद आयी। उसे वे गाड़ी पर लादकर नारायण स्वामी के पास लायीं। सारी बातें सुनने के बाद स्वामीजी ने उसे एक माला पहना दी और कहा—''एक सप्ताह तक माला न उतराने पाये। घबराने की बात नहीं है।''

एक सप्ताह बाद वह ठीक हो गया। इसी प्रकार की एक घटना मुजफ्फरनगर के रामकृष्ण शास्त्री के साथ हुई थी। उनके बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर उन्हें मुक्ति नहीं मिल रही थी। अक्सर वे परिवार के किसी न किसी सदस्य पर सवार होकर अपनी बात कहा करते थे।

यह बात स्वामीजी के निकट पहुँची। उन्होंने कहा—''शास्त्री, तुम ३१ हजार गायत्री पाठ करो और ३१ सौ हवन करा दो। सब ठीक हो जायगा।''

इस क्रिया के बाद रामकृष्ण शास्त्री के बड़े भाई की आत्मा को मोक्ष प्राप्त हो

गया। पानाजी नामक एक महिला स्वामीजी की शिष्या थी। एक बार वह स्वामीजी से मिलने के लिए मुजफ्फरनगर गयी। गाड़ी अपने निर्धारित समय से काफी देर में पहुँची। स्वामीजी का भवन स्टेशन से लगभग तीन मील दूर एक गली में था। सवारी न मिलने पर वह पैदल रवाना हुई और रास्ता भूल गयी। ठीक इसी समय एक महिला आयी और पूछा—''कहाँ जाओगी?''

पानी देवी ने कहा—''खटीकान मुहल्ले में नारायण स्वामी के यहाँ।''

''आओ।'' कहकर महिला आगे-आगे चली। गली के पास आते ही वह न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गयी। गली के भीतर मकान था। पाना देवी से अब गलती नहीं हुई।

घर पर आते ही स्वामीजी ने तुरन्त पूछा—''उस औरत ने तुम्हें सकुशल यहाँ पहुँचा दिया था न?''

पाना देवी हत्‌बुद्धि-सी स्वामीजी की ओर देखने लगी।

तभी स्वामीजी ने कहा—''चल, आज मुझे गाना सुनाते हैं।''

इतना कहना था कि न जाने कहाँ से दो बाईजी और साजिन्दे अपना सामान लेकर आ गये। काफी देर तक मुजरा होता रहा। रात को जैसे सब आये थे, उसी प्रकार भोर होते ही गायब हो गये।

जो लोग स्वामीजी से आर्थिक लाभ चाहते थे, उनकी इच्छा भी पूरी हो जाती थी। खासकर जो सटोरिये थे। एक बार गर्मी के दिनों में पंखा खोलकर बैठे और कहने लगे—''मामचन्द, मैंने ५६ इंच का पंखा लिया और लोग ४८ का बता रहे हैं। मैं लगवाऊँ ५६ इंच का और लोग कहते फिरें कि ४८ है ४८।''

मामचन्दजी धड़ा लगाते थे। इशारा समझ नहीं पाये। बोले—''कहने दीजिए स्वामीजी। उनके कहने से होता क्या है?''

दूसरे दिन बेचारे आये और रोने लगे—''बहुत दिनों बाद आपने कृपा की और मैं समझ नहीं सका। अगर ४८ पर धड़ा लगा देता तो मुझे कई हजार मिल जाते।''

इसी प्रकार एक बार कलकत्ते से अपने भवन के लिए ६ ताले लेकर आये। पं० विश्वम्भरदत्त तिवारी से बोले—''देख ६ ताले लाया हूँ। पूरे ६ हैं।''

तिवारीजी को धड़ा लगाने का शौक था, पर वे समझ नहीं पाये। दूसरे दिन स्वामीजी के पास आकर रोने लगे। इस प्रकार जो लोग भाँप जाते थे, वे रकम लगाकर लाभ उठाते थे।

एक बार स्वामीजी मुजफ्फरनगर वाले अपने मकान में कुछ लोगों के साथ ताश खेल रहे थे। इतने में एक लड़की आकर बोली—''पिताजी, भैया न जाने कहाँ हैं। माँ आपको बुला रही है, चलिये।''

लड़की के पिता ने कहा—''जा, जा! इधर-उधर कहीं गया होगा, आता ही होगा।'' कहने के बाद वे ताश खेलने लगे।

थोड़ी देर बाद पुनः वह लड़की आयी और बोली—''पिताजी, घर चलिये। माँ रो रही है। प्रकाश भैया का कहीं पता नहीं चल रहा है।''

आखिर झल्लाकर पिता को घर जाना पड़ा। उसके जाते ही नारायण स्वामी ने वहाँ बैठे एक व्यक्ति को दस रुपये देकर कहा—''तू यहाँ से सीधे स्टेशन चला जा। गाड़ी आ रही है। दिल्ली स्टेशन पर उतरकर मुसाफिर खाने में चले जाना। वहीं ४-५ लड़कों के साथ प्रकाश बैठा मिलेगा। अपने साथ वापस लेते आना। वह घर से भाग गया है।''

शाम को प्रकाश और उसके पिताजी स्वामीजी के पास आकर प्रणाम कर गये।

मुजफ्फरनगर में चुनाया कसाई रहता था। उसे यह मालूम था कि स्वामीजी लोगों पर कृपा करते हैं। उनकी कृपा से लोग मालामाल हो गये हैं। अपुत्रकों को पुत्र मिला है, रोगियों का रोग-कष्ट दूर हुआ है। एक दिन वह स्वामीजी के निकट आया। उन दिनों वह आर्थिक संकट में था।

उसकी कहानी सुनने के बाद स्वामीजी ने खिला-पिलाकर सो जाने की आज्ञा दी। थोड़ी देर बाद नारायण स्वामी ने कहा—''सामने के बक्से में दियासलाई के बण्डल हैं, निकाल ला।''

चुनिया ने बक्सा खोला तो देखा—उसमें नोटों के बण्डल हैं। दो-चार सौ नहीं, लाखों है। उसने सोचा कि अगर इसमें से एक बण्डल अपने लिए रख लूँ तो मेरी मुसीबत दूर हो जायगी। स्वामीजी के लिए कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन उसमें साहस नहीं हुआ।

दूसरे दिन पुनः स्वामीजी ने चुनिया से उसी बक्स में से दियासलाई निकालने के लिए कहा तो उसने कहा—''महाराज, उसमें दियासलाई नहीं है। नोटों के बंडल रखे हैं।''

स्वामीजी ने कहा—''तू पागल है। जरा अच्छी तरह देख भी।''

इस बार बक्स खोलने पर उसने देखा कि नोटों के बंडल की जगह पुस्तकें रखी हुई हैं। एक ओर दियासलाई है। उसकी समझ में नहीं आया कि यह कौन-सा जादू हो गया।

इस तरह का परिहास एक बार उन्होंने कलकत्ते में किया था। इस घटना से उनकी यौगिक-शक्ति का परिचय मिल जाता है।

श्री लक्ष्मीनारायण नवलगढ़िया स्वामीजी के शिष्य थे। अचानक वे अस्वस्थ हो गये। दवा से कोई लाभ नहीं हो रहा था। घर के लोग चिन्तित हो उठे। डॉक्टर बदलने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ।

एक दिन अपने नौकर को बुलाकर लक्ष्मीनारायण ने कहा—''मेरे गुरु नारायण स्वामी का घर तू जानता है। बड़तल्ला में रहते हैं।''

नौकर ने स्वीकार किया कि स्वामीजी का घर जानता है। तब उन्होंने कहा—

"स्वामीजी से जाकर कहना कि मैं उनका आशीर्वाद चाहता हूँ। बीमार हूँ, वर्ना स्वयं आता।"

नौकर जब नारायण स्वामी के पास पहुँचा तब वे सो रहे थे। उसने अपने मालिक का संदेशा सुनाया।

नारायण स्वामी ने कहा—"ठीक है। अब तू जा। मैं आ रहा हूँ।"

नौकर ने वापस आकर कहा—"स्वामीजी ने कहा है कि थोड़ी देर बाद आयेंगे।"

उसकी बात सुनकर घर के लोग हँस पड़े। लक्ष्मीनारायण ने पूछा—"मैं पूछता हूँ कि स्वामीजी से समाचार कहने के बाद तू कहाँ अटक गया था? यहाँ स्वामीजी आये और आशीर्वाद देकर चले भी गये। इधर तू कह रहा है कि वे थोड़ी देर बाद आयेंगे।"

नौकर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—"मालिक, मैं सीधे स्वामीजी के यहाँ से आ रहा हूँ। रास्ते में कहीं नहीं रुका। यकीन न हो तो ड्राइवर साहब से पूछ लीजिए।"

लोग परस्पर विरोधी कांड देखकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

इसी प्रकार की एक विचित्र घटना और हुई थी। कलकत्ते के प्रसिद्ध करोड़-पति सेठ रामकुमार बांगड़ ने विवेकानन्द रोड पर वैकुण्ठनाथ का एक भव्य मन्दिर बनवाया। मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए पुष्कर से श्री वीर राघवाचार्य को बुलाया गया।

राघवाचार्यजी स्वामीजी की अलौकिक शक्ति से परिचित थे और दोनों एक दूसरे को जानते थे। कलकत्ता आने पर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि नारायण स्वामी आजकल यहीं है तब वे स्वयं इनके पास आकर बोले कि "कृपया चलकर मंदिर देख लीजिए।"

नारायण स्वामी कभी जनेऊ नहीं पहनते थे। उस दिन न जाने क्यों नया जनेऊ पहनकर मन्दिर देखने चल पड़े। मन्दिर के सभी भागों को उन्होंने अच्छी तरह देखा। जगमोहन, उरुश्रृंग, स्तम्भ आदि देखते उन्होंने कहा—"मंदिर ठीक बना है। प्राण-प्रतिष्ठा भी ठीक हुई, पर अब वह बलि चाहता है।"

स्वामीजी के इस कथन का वास्तविक अर्थ कोई नहीं समझ सका। लोग मुँह सिकोड़कर रह गये। मुमकिन है कि स्वामीजी को उन लोगों ने सनकी समझा हो।

स्वामीजी के यहाँ नित्य शाम को दरबार लगता था। शिष्य और भक्त-मंडली बैठकर हर तरह की बातें करते थे। उस दिन शाम को जब लोग आये तब किसी ने पूछा—"स्वामीजी, आज आप बांगड़ मन्दिर कैसे चले गये?"

नारायण स्वामी ने कहा—"अपनी इच्छा से नहीं गया था। लोग मन्दिर देखने के लिए बुलाने आये थे।"

अधिक रात गये जब भक्त-मण्डली अपने-अपने घर वापस जाने लगी तब स्वामीजी ने कहा—"घर जाते समय तुम लोग जरा सेठ रामकुमार से मिलते जाना।"

किसी ने कहा—"रात अधिक हो गयी है, इस वक्त जाना ठीक नहीं है। कल सबेरे मिल लेंगे।"

स्वामीजी ने जोर देकर कहा—''हर्ज क्या है। इसी वक्त उनसे मिल लेना।''

''कोई खास बात है?''

स्वामीजी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। स्वामीजी के घर से निकलकर लोग सीधे अपने-अपने घर चले गये। कोई सेठ रामकुमार के यहाँ नहीं गया।

दूसरे दिन स्वामीजी के भक्तों में से कुछ लोग गंगा-स्नान करके वापस आते समय सुना कि सेठ रामकुमार का देहावसान कल रात को हो गया है।

शाम को नित्य की तरह जब भक्त-मण्डली स्वामीजी के यहाँ जुटी तब लोगों ने उलाहना देना प्रारंभ किया। स्वामीजी ने कहा—''इसीलिए तो मैंने कहा था। पर तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया।''

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ नारायण स्वामी के जीवन में हो चुकी हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि उनके जीवितकाल में उनसे लाभ उठाने वाला अब उनका स्मरण तक नहीं करते।

* * *

२० मार्च, १९७३ की रात को पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी को सूचना मिली कि नारायण स्वामी पक्षघात के शिकार हो गये हैं। रक्तचाप ५४० हो गया था। इस वक्त अस्पताल में भर्ती हैं। चतुर्वेदीजी तुरत गये। वहाँ जाने पर उन्होंने देखा—नारायण स्वामी का बायाँ अंग बेकार हो गया है।

अधिकतर संत जो योग विभूति का प्रदर्शन करते रहते हैं, वे अंतिमकाल में कष्ट उठाते हैं । उन्हें शिष्यों और भक्तों का पाप ग्रहण करना पड़ता है। प्रकृति की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के कारण शंकराचार्य को भगन्दर, रामकृष्ण परमहंस तथा महर्षि रमण को कैंसर हुआ था और कुछ लोगों को विषपान करना पड़ा।

२८ मार्च के दिन नारायण स्वामी परलोकवासी हो गये।

■



बाबा कीनाराम

वाराणसी के दक्षिणी भाग में स्थित काशी नरेश के महल में हलचल मची हुई थी। सबेरे से ही वेदपाठी वेद के चारों अंगों का पाठ कर रहे थे। नगर के गणमान्य नागरिकों के अलावा अनेक साधु-संत उपस्थित थे। राजा चेतसिंह यहाँ शिव मंदिर बनवाकर आज यहाँ शिवलिंग की प्रतिष्ठा करा रहे थे।

चेतसिंह ने आदेश दे रखा था कि ऐसे शुभ अवसर पर कोई अवांछनीय व्यक्ति समारोह में न आने पाये। वंश परम्परा से काशी नरेश शिव के भक्त थे। काशी के नागरिक भी गीता के अनुसार 'नराणां च नराधिपम्' यानी काशी नरेश का स्वागत 'हर-हर महादेव' के नारे से करते हैं। उन्हें शिव का प्रतीक समझते आये हैं।

सहसा महल में चेतसिंह का वज्र कंठ कंपित हो उठा—''यह नरपिशाच यहाँ कैसे आ गया? बाहर निकालो इस चाण्डाल को।''

कभी कर्मचारी भयभीत हो उठे। सामने बाबा कीनाराम खड़े थे। कई कर्मचारी बाबा की ओर लपके। तभी बाबा कीनाराम ने कहा—''तू ने मेरा अपमान किया? इसका फल तुझे शीघ्र मिलेगा। यह मत भूल कि तूने विदेशियों को शिकस्त दी है। वे तुझे ऐसा सबक सिखायेंगे कि मेरी तरह तुझे भी इस महल से विदा लेना पड़ेगा।''

कीनाराम की इतनी बातें सुनते ही चेतसिंह आपे से बाहर हो गये। राजा को क्रुद्ध देख पहरेदारों ने जबरन कीनाराम को घसीटना प्रारम्भ किया।

बाबा कीनाराम ने कहा—''देख लेना, यह बाबा का शाप है—''तेरा राज्य नष्ट हो जायगा। इस महल में उल्लू-चमगादड़ रहेंगे। तेरा वंश भी समाप्त हो जायगा।''

ठीक इसी समय महल के भीतर सदानन्द बख्शी ने प्रवेश किया। बाबा कीनाराम के प्रति इनकी गहरी आस्था थी। राजा साहब के यहाँ जाने के बदले वे बाबा को आदर-पूर्वक उनके आश्रम तक पहुँचा आये। महल में वापस आने के बाद मुँशी सदानन्द को सारी बातें मालूम हुईं।

उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि जो कुछ हुआ, अनुचित हुआ। बाबा कीनाराम सिद्ध पुरुष हैं। नगर के लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। जरूर किसी मतलब से आये होंगे। कहीं उनका शाप फलीभूत हुआ तब क्या होगा?

दूसरे दिन सदानन्दजी क्रीं कुंड स्थित बाबा के आश्रम में आये और राजा को दिये शाप के लिए क्षमा करने की प्रार्थना करने लगे।

बाबा कीनाराम ने कहा— "अब जो बात जबान से निकल गयी है, वह होकर ही रहेगी। उसे अपनी बहादुरी का गर्व हो गया है। लेकिन मैं साफ देख रहा हूँ कि उसका पतन होने वाला है।"

सदानन्द ने भीत स्वर में कहा—"तब हम लोगों का क्या होगा? मेरा अनुरोध है, आप राजा साहब पर कृपा कीजिए।"

बाबा ने कहा—"साधु का वचन कभी टलता नहीं। मैं तुम्हारे मनोभाव को समझ रहा हूँ। तुम्हारे वंश को कोई हानि न होगी। समझे सदानन्द। एक काम करना, भविष्य में तुम्हारे सभी वंशधर अपने नाम के पीछे 'आनन्द' शब्द अगर जोड़ लेंगे तो तुम्हारा वंश अनादि काल तक चलता रहेगा। अब तुम जा सकते हो।"

कीनाराम के शाप ने अपना प्रभाव दिखाया। राजा चेतसिंह को शिवाला के किले से भागना पड़ा। राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ आया।

* * *

भारत में एक-दो नहीं, अनेक मतावलम्बी रहते हैं। प्रत्येक का अपना मत है, दर्शन है और धार्मिक प्रक्रियाएँ हैं। इन्हीं संप्रदायों में अघोर भी हैं। अघोर पंथ के अनुयायी 'अघोरी' कहलाते हैं। इस पंथ के बारे में पं० गंगाशंकर मिश्र का कहना है— "अघोर पंथ शैवतंत्र की शाखा है। वैदिक साहित्य में शिव के सम्बन्ध में 'अघोर' शब्द का कई स्थलों में प्रयोग मिलता है—'अघोरैभ्यऽथ घोरैभ्यो घोर-घोरतरैभ्य:। सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्य:।' यह अघोर मंत्र कहा जाता है। महिम्नस्तोत्र में बतलाया गया है कि इससे बढ़कर दूसरा कोई मंत्र नहीं है—अघोरान्नपरो मंत्र। शिव के अघोर रूप के उपासक 'अघोरी' कहलाते हैं। सदा हाथ में नरकपाल धारण किये रहने के कारण पहले वे कापालिक या कपाली के नाम से प्रसिद्ध थे। पुराणों में उनकी चर्चा आयी है।"

अघोर सम्प्रदाय वालों के मठ आबू पर्वत, गिरनार, बोधगया, बनारस तथा हिंगलाज में थे। लेकिन अब बाबू पर्वत पर इनका मठ नहीं है। इस मत के अनुयायी

बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, अजमेर, मारवाड़, मध्यप्रदेश, पंजाब में पाये जाते हैं। अब असम में भी फैल गये हैं। बंगाल तथा असम के अघोरी शक्ति के और बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अघोरी शिव के उपासक हैं।

औघड़ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता बाबा कीनाराम भले ही न हों, पर इनकी ख्याति सर्वाधिक है। इनकी चमत्कारिक कहानियाँ आज भी लोगों की जबान पर मचलती रहती हैं। काशी-निवास काल में आपने इतने शिष्य बनाये जो अब अपने को 'कीनारामी' कहलाते हैं। इनके आश्रम में अनेक औघड़ों की समाधियाँ हैं।

* * *

कीनाराम का जन्म संवत् १६५८ वि० भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को, वाराणसी की चन्दौली तहसील स्थित रामगढ़ गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री अकबर सिंह रघुवंशी क्षत्री थे। कीनाराम अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। बचपन से ही आप राम के प्रति अनुरक्त थे। अवकाश के समय गाँव के अन्य साथियों को लेकर आप राम-धुन गाया करते थे।

उन दिनों बाल विवाह की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार १२ वर्ष की उम्र में आपका विवाह कर दिया गया था। विवाह के तीन वर्ष बाद गौना लाने की तिथि निश्चित की गयी। यात्रा के एक दिन पूर्व आपने अपनी माँ से दूध-भात खिलाने का आग्रह किया।

माँ बिगड़ गयी। बोली—''कल तुम्हें गौना लाने जाना है और आज दूध-भात माँग रहे हो? दही-भात खा लो।''

कीनाराम ने हठ पकड़ा। लाचारी में माँ को दूध-भात खिलाना पड़ा। दूसरे दिन जब यहाँ से लोग यात्रा की तैयारी कर रहे थे तभी ससुराल से सूचना आयी कि आपकी पत्नी का निधन हो गया है।

माँ ने रोते हुए कहा—''कोई न कोई अशुभ होगा, यह मैं समझ गयी थी। भला कोई यात्रा के समय दूध-भात खाता है? ऐसा जिद्दी लड़का है कि क्या कहूँ।''

कीनाराम ने कहा—''माँ, उसके मरने के बाद ही मैंने दूध-भात खाया था। इसके पहले नहीं। विश्वास न हो तो पिताजी से पूछ लो। वह कल शाम को ही मर गयी थी और दूध-भात मैंने रात को खाया था।''

माँ से यह समाचार सारे गाँव में फैल गया। लोग इस बात पर आश्चर्य करने लगे कि आखिर कीनाराम को इस बात की जानकारी कैसे हो गयी?

इस घटना के कुछ दिनों बाद पुनः आपके विवाह की बात चलने लगी। आपने विवाह करने से इनकार कर दिया, पर परिवार के लोगों का दबाव बढ़ता ही गया। एक दिन चुपचाप घर से निकल पड़े। घूमते-घामते गाजीपुर आ गये। उन दिनों गाजीपुर में रामानुजी-सम्प्रदाय के अनुयायी संत शिवराम रहते थे। नागरिकों में उनकी प्रसिद्धि

थी । कीनाराम भी यही चाहते थे कि किसी संत के निकट रहते हुए राम की आराधना करता रहूँ।

कीनाराम का उद्देश्य सुनकर शिवरामजी ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया। वे गुरु की सेवा करने के बाद जितना समय मिलता था, उतनी देर भजन करते रहे। कुछ दिनों बाद एक दिन न जाने किस प्रेरणा के कारण, आपने शिवरामजी से कहा—''महाराज, मुझे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लें।''

शिवरामजी ने सोचा—कहीं दीक्षा देने पर यहाँ से चम्पत न हो जाय। फिर ऐसा सेवक कहाँ मिलेगा। कीनाराम को टालने के लिए उन्होंने कहा—''अभी समय नहीं आया है। उपयुक्त समय आने पर दीक्षा दे दूँगा।''

कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद कीनाराम ने पुनः स्मरण दिलाया। इसी प्रकार कीनाराम बराबर स्मरण दिलाते रहे और शिवरामजी टालते रहे। अन्त में कई महीने बाद शिवरामजी ने कहा—''कीना, चलो, आज तुम्हें गंगा-तट पर दीक्षा दूँ।''

गुरु का आदेश पाते ही कीनाराम प्रसन्न हो उठे। आज बहुत दिनों के बाद उनकी इच्छा की पूर्ति हो रही थी। रास्ते में अपना आसन-कमंडल आदि कीनाराम को देते हुए शिवरामजी ने कहा—''तुम यह सब सामग्री लेकर घाट पर जाओ। मैं शौचादि से निवृत्त होकर आता हूँ।''

गुरु से सामग्री लेकर कीनाराम घाट पर आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महसूस किया कि गंगा की लहरें उनके पैरों से आकर टकरा रही हैं। तुरन्त आचमन कर वे कुछ ऊपर आकर बैठे। थोड़ी देर बाद यहाँ भी वही घटना हुई। अब वे काफी ऊपर आकर बैठे। पुन: गंगा वहाँ तक आकर उनके पैरों से टकराने लगी। इस अद्‌भुत घटना को देखकर वे हक्का-बक्का रह गये। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके भावी गुरु आ रहे होंगे।

शिवरामजी कीनाराम के पीछे मौन खड़े इस दृश्य को देख रहे थे। उन्हें लगा कि कीनाराम अवश्य ही असाधारण व्यक्ति है। यह एक अद्‌भुत ही नहीं, अस्वाभाविक घटना थी। शिवरामजी स्वयं ही चकित थे कि आखिर कीनाराम के रूप में यह बालक कौन है?

स्नान करने के बाद शिवरामजी अपने साथ कीनाराम को लेकर स्थानीय मंदिर में आये और वहीं दीक्षा दी।

दीक्षा-ग्रहण करने के बाद कीनारामजी प्रचण्ड रूप से जप-साधना में निमग्न हो गये। गुरु की सेवा करने के बाद जितना समय मिलता, उसका उपयोग साधना में लगाते रहे। कई महीने बाद अचानक एक दुर्घटना हो गयी। शिवरामजी की पत्नी का देहान्त हो गया।

शिवरामजी गृही-संत थे। पत्नी का अभाव उन्हें खलने लगा। दैनिक जीवन के कार्यों में उलझने बढ़ने लगीं। उन्होंने निश्चय किया कि पुनर्विवाह करके इस मुसीबत से छुटकारा पाया जाय। इस बारे में उन्होंने कीनाराम से सलाह माँगी।

कीनाराम ने कहा—''महाराज, अब इस उम्र में पुनर्विवाह आपको शोभा नहीं देगा। अच्छा हो कि शेष समय भजन-पूजन में लगायें।''

शिवराम को ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। अपनी इच्छा के विपरीत राय सुनकर वे नाराज हो उठे—''पत्नी के बिना मेरा काम नहीं चलेगा। मुझसे सारा बखेड़ा सम्हालते नहीं बनेगा।''

गुरु-शिष्य में वाद-विवाद बढ़ता ही गया। अन्त में कीनाराम ने कहा—''अगर आप पुनर्विवाह करेंगे तो मैं अन्य किसी गुरु की सेवा में चला जाऊँगा।''

शिवरामजी खिजलाकर बोले—''जाना है तो अभी चला जा। मैं तेरे ऐसे कृतघ्न का मुँह नहीं देखना चाहता।''

* * *

जब गुरु के प्रति अश्रद्धा हो जाय तो वहाँ न रहना ही उचित है। कीनाराम तुरत वहाँ से चल पड़े। मार्ग में नईडीह नामक गाँव के पास आने पर उन्होंने देखा—एक वृक्ष के नीचे एक बुढ़िया बेतहाशा रो रही है। कारण पूछने पर उसने बताया कि जमींदार का लगान बकाया हो गया है। उसके प्यादे मेरे लड़के को पकड़कर ले गये हैं और मार रहे हैं।

कीनाराम ने कहा—''इस तरह रोने से कहीं जमींदार को लगान मिल जायगा? चल, मैं तेरे लड़के को बचा दूँगा।''

बुढ़िया ने कहा—''महाराज, वह बड़ा जालिम आदमी है। बगैर रकम लिए वह मानेगा नहीं। आप बेकार जाकर परेशान होंगे।''

अब कीनाराम नाराज हो उठे। उन्होंने कहा—''इस तरह रोने से तेरा लड़का बच जायगा? चल, मेरे साथ। देखूँ, कैसा जमींदार है।''

बुढ़िया बाबा कीनाराम को लेकर जमींदार के यहाँ आयी। कीनाराम ने देखा—लड़के का हाथ बाँधकर धूप में बैठा रखा गया है। कीनाराम ने कहा—''जमींदार साहब, आप इस बेवा के लड़के को छोड़ दीजिए।''

जमींदार ने कहा—''मेरा लगान बाकी है। रकम चुका दीजिए और लड़के को ले जाइये।''

कीनाराम ने कहा—''लड़का जहाँ बैठा है, वहीं तेरी सारी रकम रखी है। किसी मजदूर से खोदवाकर निकाल ले।''

इसके बाद उन्होंने लड़के से कहा—''तू इधर आ जा, बेटा।''

जमींदार को बाबा की बातों पर विश्वास नहीं हुआ, पर यह सोचकर कि शायद यहाँ धन गड़ा हो, बाबा ने दिव्य दृष्टि से जान लिया हो, इस कुतूहलवश उसने वहाँ खुदवाया। वहाँ काफी रकम मिली। यह दृश्य देखकर जमींदार भय से विह्वल हो उठा। बाबा कीनाराम के पास आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

कीनाराम ने कहा—''माताजी, अब अपने बेटे को सम्हाल, कई सालों के लगान चुकता हो गये।''

इस चमत्कार को देखकर बुढ़िया भी स्तम्भित हो गयी थी। वापस आते समय उसने भाव-विह्वल होकर कहा—''बाबा, अब आज से यह बेटा आपका हुआ। लगान न दे पाती तो जमींदार न जाने कब तक इससे बेगार लेता। आपकी सेवा करेगा तो इसका जनम सफल हो जायगा।''

बाबा कीनाराम राजी नहीं हुए। उन्होंने बुढ़िया को काफी समझाया, पर वह अपनी जिद्द पर अड़ी रही। भगवान् की शायद यही इच्छा है। समझकर कीनारामजी ने उसे अपने साथ रख लिया। यही बालक कीनारामजी का प्रथम शिष्य बना जिसका नया नाम हुआ—बीजाराम।

यायावरों की तरह घूमते हुए दोनों व्यक्ति गिरनार पर्वत के पास आये। आबू पर्वत, गिरनार, हिंगलाज, पुष्कर, वीरभूमि, कामाख्या और हिमालय के अनेक क्षेत्र संतों की साधना भूमि हैं। आज भी यहाँ अनेक संत अलक्ष्य रूप में तपस्या करते हैं।

कीनाराम ने कहा—''बीजाराम, मैं पहाड़ पर जा रहा हूँ। जब तक न लौटूँ तब तक तुम यहीं इन्तजार करना और एक बात याद रखना कि यहाँ केवल तीन घर से भिक्षा माँगना। इससे अधिक नहीं। भिक्षा में जितना मिले, उसी से काम चलाना। चौथे घर मत जाना।''

कहा जाता है कि दत्तात्रेय ऋषि अमर हैं। यहीं बाबा कीनाराम की मुलाकात उनसे हुई थी और उन्होंने योग-साधना की दीक्षा दी थी। इस सम्बन्ध में स्वयं कीनाराम ने कहा है—

पुरी द्वारिका गोमती गंगा सागर तीर ।
दत्तात्रय मोहि कहँ मिले हरन महाभव पीर ॥
मोहि प्रबोधे विविध विधि त्रिकालज्ञ भगवान ।
अंतरहित होते भये बानी सत्य प्रमान ॥

कहा जाता है कि नाथ सम्प्रदाय के संत गोरखनाथ तथा वारकरी सम्प्रदाय के संत एकनाथ ने भी यहीं दत्तात्रेय ऋषि का दर्शन किया था। कुछ दिनों बाद गुरु-शिष्य गिरनार पर्वत से जूनागढ़ आये। यहाँ नवाब का शासन था। नगर में भीख माँगने की मनाही थी। जो व्यक्ति भीख माँगता था, उसे पकड़कर जेल में बन्द कर दिया जाता था, जहाँ अपराधी को चक्की चलानी पड़ती थी।

बीजाराम भीख माँगते पकड़े गये और नियमानुसार जेल की सजा हो गयी। इधर काफी देर हो जाने पर कीनारामजी चिन्तित हो उठे। ध्यान लगाने पर उन्हें सारा रहस्य ज्ञात हो गया। अब वे बीजाराम की तरह भीख माँगने निकले। इन्हें भी पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया।

जेल में आकर बाबा ने देखा—यहाँ अनेक संत-महात्मा चक्की चला रहे हैं।

इन्हें भी एक चक्की चलाने की आज्ञा दी गयी। आपने अपनी चक्की पर एक डंडा मारते हुए कहा—"चल बेटा, चक्की।"

चक्की चलने लगी। इसके बाद अन्य संतों की चक्कियों को डंडा मारकर उन्हें भी चालू कर दिया। इस अनहोने जादू को देखकर जेल के कर्मचारी भाग खड़े हुए। समाचार नवाब के पास पहुँचा। तुरन्त बाबा को दरबार में ले आने का आदेश दिया गया।

इस समाचार से नवाब डर गया था। ऊँचे दर्जे का फकीर है, कहीं बद्दुआ न दे दे। बाबा को प्रसन्न करने के लिए एक थाली में जवाहिरात पेश किये गये। बाबा ने उसे उठाकर मुँह में डाला और फिर थूकते हुए बोले—"यह न तो मीठे हैं और न खट्टे। मेरे किस काम के?"

नवाब ने कहा—"हजरत जो हुक्म दें, वही पेश किया जाय।"

बाबा को नवाब की मन:स्थिति का आभास हो गया था। हँसकर बोले—"संत और फकीर भीख माँगकर गुजारा करते हैं। तेरे यहाँ यह गुनाह है। ठीक है। अब आइन्दा भीख माँगने वाले संतों-फकीरों को शासन की ओर से अढ़ाई पाव आटा मुफ्त देने का हुक्म दे दे।"

इतने सस्ते में छूटते देख नवाब ने तुरत इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

❋ ❋ ❋

यहाँ से बाबा हिमालय की ओर चले गये। वहाँ काफी दिनों तक साधना करते रहे। वहाँ से वापस आने के बाद आप अचानक काशी में प्रकट हुए।

उन दिनों शिवाला मुहल्ले के क्रीं कुंड में बाबा कालूराम रहते थे। बाबा कालूराम पास ही स्थित श्मशान में मुर्दों की खोपड़ियों को चने खिलाया करते थे। एक दिन बाबा कीनाराम घूमते इधर आये तो यह दृश्य देखा। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया।

खोपड़ियों का आना बन्द हो गया। बाबा कालूराम औघड़ संत थे। ध्यान लगाते ही समझ गये कि यहाँ कीनाराम आ गये हैं, जिनके आने की प्रतीक्षा वे बहुत दिनों से कर रहे थे। इधर बाबा कीनाराम भी समझ गये कि बाबा कालूराम उच्चस्तर के संत हैं।

हँसते हुए कीनाराम ने कहा—"बाबाजी, आप यह क्या खिलवाड़ कर रहे हैं। चलिये अपने अस्थान (गद्दी) पर।"

कीनाराम की साधना-शक्ति को आजमाने के लिए बाबा कालूराम ने कहा—"इस वक्त तो मुझे भूख लगी है। क्या तुम ताजी मछली खिला सकते हो?"

कीनाराम ने कहा—"जरूर महाराज।" फिर गंगा नदी की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"गंगिया, एक मछली दे जा।"

तुरन्त एक मछली नदी से उछलकर इनके पैरों के पास गिरी। बीजाराम ने उसे पकाया और उन संतों ने मछली खायी।

थोड़ी देर बाद कालूराम की नजर गंगा में बहती एक लाश पर पड़ी। उन्होंने कहा—''देख मुर्दा आ रहा है।''

कीनाराम ने कहा—''यह तो जिन्दा है।''

''जिन्दा है तो उसे बुला।''

कीनाराम ने कहा—''कहाँ जाता है? चल इधर।''

वह लाश धीरे-धीरे किनारे आकर खड़ी हो गयी। कीनाराम ने कहा—''खड़ा होकर क्या देख रहा है? जा अपने घर चला जा।''

कीनाराम की सिद्धि देखकर बाबा कालूराम संतुष्ट हो गये। दोनों उठकर चल पड़े। कीनाराम को क्रीं कुंड में ले आये और कहा—''कीनाराम, मेरा काम समाप्त हो गया। मैं अब तक तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि यह जाग्रत् स्थान शून्य न रहे। यह जाग्रत् पीठ है। अब तुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं है। यहीं रहकर साधना करो। सब कुछ यहीं प्राप्त हो जायगा।''

कहा जाता है कि बाबा कालूराम ने उन्हें दीक्षा दी थी। वास्तव में बाबा कालूराम दत्तात्रेय मुनि के अवतार थे। बाबा कीनाराम को यहाँ की गद्दी देकर वे अन्तर्धान हो गये।

संतों के निधन के पश्चात् उनके शिष्य और भक्त अनेक कल्पित कहानियों को जन्म देते हैं। प्रत्यक्षदर्शियों तथा अनुभवी लोगों की बातें जीवित रहती हैं। कीनाराम बाबा के बारे में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रचलित हो गयीं। फलस्वरूप कालूराम बाबा को लोग भूल गये। शायद इसीलिए बाबा कीनाराम को कहना पड़ा—

कीना कीना सब कहै, कालू कहै न कोय ।
कालू कीना एक भये, राम करै सो होय ॥

* * *

बाबा कीनाराम की साधना की एक विशेषता यह थी कि प्राचीन औघड़ परम्परा से अलग हटकर वे राम-कृष्ण की ओर लग गये थे। यही कारण है कि बाबा कालूराम की अपेक्षा उनकी प्रसिद्धि अधिक हुई। भारत हमेशा से सात्त्विक और राजसिक साधनाओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखता आया है। तामसिक-साधकों के पास लोग चारों ओर से निराश होकर ही जाते हैं। तामसिक साधक मारण, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण आदि में विश्वास रखते हैं। सामान्य जनता सरभंग या औघड़ों को प्रायः सिद्ध रूप में देखती है। उनकी धारणा है कि इन सिद्धों ने श्मशान-साधना के द्वारा 'मसान' की सिद्धि की है। अर्थात् भूत, प्रेत, पिशाच आदि को वश में कर लिया है।

कुलार्णवतंत्र में लिखित प्रक्रिया को अघोरी अपनाते आये हैं—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारपंचकं देवी! देवता प्रीति कारणाम् ॥

इन्हें पंच मकार प्रिय है। सरभंगी[1] और कीनारामी दोनों ही मानव-मांस अथवा मल का भक्षण करते हैं, पर केवल विशेष अवसरों पर।

बाबा कीनाराम औघड़ होते हुए भी जन-सामान्य के निकट प्रिय थे। अन्तर से साधक और दयालु थे। उनके कारण ही क्रीं कुंड तथा औघड़ सम्प्रदाय की ख्याति फैली । आज भी क्री कुंड में प्रत्येक रवि-मंगल को महिलाएँ अपने बच्चों को सुखंडी रोग दूर कराने के लिए आती हैं। भाद्रपद शुक्ल षष्ठि को यहाँ मेला लगता है। काशी की गायिकाएँ इसी दिन यहाँ आकर अपना गायन प्रस्तुत करती थीं। उनमें विश्वास था कि इससे कभी उनका गला खराब नहीं होगा। सन् १९५८ से यह क्रम बन्द कर दिया गया।

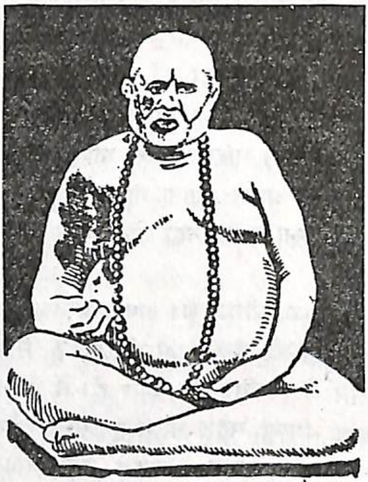
कीनाराम एक दार्शनिक औघड़ थे। अपनी पुस्तक 'विवेकसार' में एक जगह अपने बारे में कहते हैं—''मैं ही जीव हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही अकारण निर्मित जगत् हूँ, मैं ही निरंजन हूँ और मैं ही विकराल काल हूँ। मैं ही जन्मता हूँ और मरता हूँ। पर्वत-आकाश मैं हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मैं हूँ। सुमन और उसका वास, तिल और उसका तेल मैं हूँ। बंधन, मुक्ति, अमृत, हलाहल, ज्ञान-अज्ञान, ध्यान ज्योति मैं हूँ।''

इस प्रकार बाबा कीनाराम प्रत्येक अच्छे-बुरे में मौजूद हैं। उनका यही पक्ष बौद्धिक लोगों को आकर्षित करता आया है। संभवत: इसी कारण प्राचीन अघोर सम्प्रदाय से दूर हटकर कीनारामियों ने अपनी अलग पहचान बना ली है।

क्रीं कुंड के महन्तों में सर्वश्री कालूराम, कीनाराम (क्षत्रिय), बीजाराम (कलवार), धौताराम, गइबी राम, भवानी राम, जयनारायण राम, मथुरा राम (कुम्हार), जबरदस्त राम (ब्राह्मण), गौरीराम, भवानी राम (क्षत्रिय), दिनराय राम (कलवार), सरयू राम (ब्राह्मण), दलसिंगार राम (क्षत्रिय), राजेश्वर राम की समाधियाँ क्रीं कुंड में हैं। आपका निधन १८२६ ई० में हुआ था।

■

१. संतमत का सरभंग सम्प्रदाय।



सिद्धयोगी तैलंग स्वामी

आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम् जिले में एक गाँव का नाम है—होलिया। इस गाँव के जमींदार का नाम था—श्री नृसिंह धर। स्वभाव के उदार और प्रजा-वत्सल। कट्टर ब्राह्मण होने के कारण तीनों वक्त नियमित रूप से संध्या करते थे। इनकी पत्नी श्रीमती विद्यावती इनसे बढ़कर धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। गृह-देवता शंकर के पूजन में अधिक समय लगाती थीं। पूजा-पाठ के अलावा वे व्रत-उपवास अधिक करती थीं।

नृसिंह से यह छिपा नहीं रहा कि उनकी पत्नी क्यों इतना व्रत-उपवास रखती हैं। घर में किसी चीज की कमी नहीं थी। स्वभाव से मधुर होने के कारण सभी प्रजा इन्हें देवता की तरह मानते थे। ले-देकर इस दम्पति को एक ही कष्ट था। वे विवाह के दस वर्ष बाद भी निःसंतान थे।

पति को उदास देखकर विद्यावती के मन में टीस उत्पन्न हो जाती थी और कठोर व्रत करने लगती थी। मन्दिर में जाकर वह विग्रह के सामने व्याकुल होकर प्रार्थना करती—''भगवान, मेरी गोद भर दो। मेरे बाँझपन के कलंक को दूर कर दो। मेरे पति को उनका वंशधर दो।''

व्रत, उपवास और पूजन से जब उसकी मनोकामना पूरी नहीं हुई तब एक दिन उसने अपने पति से कहा—''शायद मेरे भाग्य में संतान-सुख नहीं है। मेरा अनुरोध है कि धर-वंश की रक्षा के लिए आप एक विवाह और कर लें।''

पत्नी का अनुरोध सुनते ही नृसिंह धर चौंक उठे। विस्मय से उन्होंने पूछा—''क्या कह रही हो? दूसरा विवाह का अर्थ है—सौत बुलाना। भले ही हम निःसंतान

हैं, पर हमारे घर में कितनी शांति है। दूसरी पत्नी के आते ही अशांति बढ़ जायेगी। मैं अब दूसरा विवाह नहीं करना चाहता।''

विद्यावती ने विनयपूर्वक कहा—''मेरा मन कहता है कि दूसरी बहन आकर धर-वंश को जीवन-दान देगी।''

नृसिंह ने कहा—''यह तुम्हारा सपना है। तुम केवल मुझे प्रसन्न करने के लिए ऐसा कह रही हो। मगर मैं अपनी प्रसन्नता के लिए तुम्हारा सुख नहीं छीनना चाहता। आगे ऐसा अनुरोध मत करना। अगर तुम्हें संतान की चाह है तो किसी बच्चे को गोद ले लेंगे।''

पति के इस निर्णय से विद्यावती को आघात लगा। वह उस समय चुप हो गयी। पर जब भी मौका पाती तब अनुरोध करती रही। इस विवाह को लेकर कई बार आपस में विवाद भी हुआ। अन्त में एक दिन नृसिंह ने खिजलाकर कहा—''तुम्हारे कारण मैं राजी हो रहा हूँ, पर यह याद रखना कि दूसरी पत्नी के कारण परिवार में अशांति हुई तो उसकी सारी जिम्मेदारी तुम पर होगी।''

नृसिंह ने द्वितीय विवाह किया। दूसरी पत्नी को गृहस्थी का सारा भार देती हुई विद्यावती बोली—''आज से तुम्हें सब कुछ देखना है। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। शेष समय भगवान् के दरबार में।''

कुछ दिनों बाद नृसिंह के परिवार में एक चमत्कार हुआ। सन् १६०७ ई० के प्रारंभ में (पौष मास, शुक्ला एकादशी, रोहिणी नक्षत्र) विद्यावती ने माँ बनने का गौरव प्राप्त किया। सर्वप्रथम उसकी कोख से नृसिंह धर के वंशधर ने जन्म लिया। यह एक ऐसा चमत्कार था जिसे देखकर दोनों चकित रह गये।

पुरुष के जीवन में दो ऐसे अवसर आते हैं जब उसे अपार प्रसन्नता होती है। प्रथम अपने विवाह में और द्वितीय प्रथम संतान के पिता बनने पर। लम्बे अर्से के बाद पिता बनने की खुशी में दीपावली जैसा उत्सव होलिया गाँव में मनाया गया। किसानों की लगान माफ कर दी गयी।

शिव की आराधना करने पर पुत्र की प्राप्ति होने के कारण विद्यावती ने अपने बेटे का नाम रखा—शिवराम और पिता ने परम्परा के अनुसार रखा—तैलंग धर। कुछ दिनों बाद नृसिंह की दूसरी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हुआ—श्रीधर। पिता का स्नेह और माता की ममता पाते हुए दोनों बच्चे बड़े होते गये। दोनों बालक विपरीत स्वभाव के बनते गये।

तैलंग धर अपने सहपाठियों से अलग-थलग रहकर न जाने किस दुनिया में खोया-खोया सा रहता था। उसे भीड़भाड़ और कोलाहल पसन्द नहीं था। विद्यावती जब भगवान् शंकर की पूजा करती तब वह पास ही आँखें बन्दकर बैठा रहता था। दूसरी ओर श्रीधर घर में चारों ओर दौड़धूप और उपद्रव किया करता था।

ज्येष्ठ पुत्र की स्थिति देखकर नृसिंह चिंतित हो उठे। इस उम्र में बालक को

चंचल और उपद्रवी होना चाहिए। आगे चलकर उसे धर-वंश द्वारा अर्जित सम्पत्ति की देखभाल करनी है। जमींदारी का काम सम्हालना है। किसानों से लगान वसूलना और उनके सुख-दुख में भाग लेना होगा, पर यह अजीब बौड़म बनता जा रहा है। बड़े होने पर अक्सर जब उसे जमींदारी का काम समझाने लगते तब वह गुमसुम बैठा रहता और मौका पाते ही खिसक जाता। हारकर पिताजी ने उसे डाँटना बन्द कर दिया।

कई वर्ष जब बुढ़ापे का दौर प्रारंभ हुआ तब नृसिंह ने सोचा कि तैलंग का विवाह कर दिया ताकि पत्नी के आने पर अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेगा। विद्यावती से सलाह करने के बाद नृसिंह योग्य लड़की की तलाश करने लगे। यह समाचार तैलंग से छिपा नहीं रहा।

उसने अपने पिता से कहा—''पिताजी, मेरे विवाह के लिए आप परेशान मत होइये। मैं विवाह नहीं करूँगा।''

''क्यों?''

तैलंग धर ने कहा—''मैंने विवाह न करने का निश्चय कर रखा है। मुझे यह सब झंझट पसन्द नहीं।''

पुत्र की बातें सुनकर नृसिंह अवाक् रह गये। अपने ज्येष्ठ पुत्र की आदतों से वे परिचित तो थे ही। उससे बहस करने की अपेक्षा उन्होने अपनी पत्नी से सलाह ली। विद्यावती ने कहा—''अच्छा, मैं कोशिश करूँगी।''

कई दिनों बाद विद्यावती ने कहा—''शिवराम सचमुच अविवाहित रहना चाहता है। काफी समझाया, पर वह मान नहीं रहा है। मेरा विचार है कि हम उस पर दबाव न डालें तो अच्छा होगा। आगे भगवान् शंकर की जो इच्छा होगी, वही होगा।''

नृसिंह ने कहा—''तुम्हारी बात समझ रहा हूँ, पर मेरे बाद उसे ही जमीन-जायदाद देखनी है। धर वंश की रक्षा करनी है, यह सब कैसे होगा?''

विद्यावती ने कहा—''आप शिवराम के बदले श्रीधर का विवाह कर दें। शिवराम का हठ जब दूर हो जायगा तब देखा जायेगा।''

नृसिंह ने कहा—''माँ होकर आखिर क्यों तुम ऐसा कह रही हो, समझ में नहीं आ रहा है।''

विद्यावती ने कहा—''तैलंग जब छोटा था तभी से मैं यह देख रही हूँ कि यह विचित्र स्वभाव का है। जब मैं पूजा करने बैठती थी तब मेरे साथ यह भी आँखें बन्द कर ध्यान लगाता था। मैं सोचती थी कि मेरी नकल कर रहा है जैसा कि बच्चों का स्वभाव होता है। लेकिन मेरी धारणा गलत निकली। मैंने एक दिन स्वयं अपनी आँखों से देखा कि विग्रह से एक प्रकाश तेजी से निकला और मेरे शिवराम के शरीर में प्रवेश कर गया। इस घटना के बाद से मैं बराबर शंकित रहने लगी। कई बार खिड़की से झाँककर मैंने देखा है कि शिवराम बाग में पीपल के नीचे आँखें बन्द कर ध्यान लगाता है। कल एक अजीब नजारा देखकर मैं बेहद डर गयी हूँ।''

नृसिंह ने विस्मय से पूछा—"क्या हुआ था?"

विद्यावती ने कहा—"शिवराम अक्सर जैसे ध्यान लगाकर पेड़ के नीचे बैठता है, कल भी बैठा था। लेकिन गौर से देखने पर देखा—उसके सिर पर पीछे से एक साँप फन काढ़े खड़ा है। यह दृश्य देखकर भय से मैं चीख उठी। तुरत गोपाल को भेजा। गोपाल ने आकर कहा कि वहाँ साँप नहीं है। बड़े भैया आँखें बन्द कर बैठे हैं। तैलंग से पूछा तो वह चुप रहा। मुझे तो ऐसा लगता है कि शिवराम के रूप में हमारे घर कोई संत आया है।"

पत्नी की बातें सुनकर नृसिंह मन ही मन मुस्करा उठे। उन्हें पत्नी की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे स्वयं तैलंग पर नजर रखेंगे। कई दिनों बाद स्वयं नृसिंह ने जब वही दृश्य देखा तब वे बेहद डर गए। इस घटना के बाद से उन्होंने फिर तैलंग को नहीं छेड़ा। उन्हें भी विश्वास हो गया कि तैलंग के रूप में उनके घर किसी देवदूत ने जन्म लिया है।

समय गुजरता गया। श्रीधर जमींदारी के काम में पिता का हाथ बटाने लगा और तैलंग माँ के साथ पूजा-पाठ, ध्यान आदि में लगा रहा। इसी बीच एक दिन नृसिंह दो विधवाओं और पुत्रों को छोड़कर परलोक चले गये। धर वंश पर बिना मेघ के वज्रपात हो गया।

पिता के निधन के पश्चात् तैलंग धर के स्वभाव में किंचित् परिवर्तन हुआ। अब वे विधवा माँ की पूजा में अधिक समय देने लगे और दोनों माताओं की सेवा में रहने लगे। नृसिंह धर के निधन के दस वर्ष बाद विद्यावती का भी निधन हो गया।

माँ के निधन के पश्चात् तैलंग धर ने घर से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। पिता के निधन के पश्चात् माँ को कोई कष्ट न हो, इस दृष्टि से वह माँ की सेवा में लगा रहा। अब जब माँ नहीं रही तब परिवार में अपना कौन है। सौतेली माँ और भाई पड़ोसी जैसे होते हैं। जायदाद से न पहले मोह था और न अब है।

श्मशान के जिस स्थान पर माँ की क्रिया हुई थी, वहीं तैलंग रहने लगा। श्मशान की भस्म सर्वांग में पोतकर हमेशा समाधि लगाये बैठा रहता। बड़े भाई की मति देखकर श्रीधर को बड़ा कष्ट हुआ। सौतेली माँ और भाई ने उसे काफी समझाया, पर वह घर वापस आने को राजी नहीं हुआ।

श्रीधर को जार-जार रोते देख तैलंग धर ने कहा—"मेरे भाई, मुझे विषय-सम्पत्ति से तनिक भी मोह नहीं है। अब आगे से सब तुम्हारा। तुम उसका भोग करो। मैं यह जान चुका हूँ कि यह शरीर नश्वर है। जिसे प्राप्त करने पर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, अब मैं उस ओर ध्यान लगाऊँगा। अच्छा होगा कि तुम सब मुझे भूल जाओ।"

श्रीधर भारी मन लिए वापस चला आया। बड़ा आग्रह करने पर तैलंग धर ने यह आज्ञा दे दी कि श्मशान भूमि पर एक कुटिया वह बनवा दे और दैनिक भोजन का प्रबंध कर दे।

इस घटना के बाद से तैलंग धर का स्थायी निवास श्मशान भूमि हो गया। साक्षात् शंकर की तरह वे श्मशानवासी हो गये। निरन्तर भगवत्-आराधना करने पर भी उन्हें इष्ट की सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। वस्तुत: उन्हें योग्य गुरु के दर्शन अभी तक नहीं हुए थे। अब तक जो भी साधना करते रहे, वह अपनी अन्तर्प्रेरणा से करते आ रहे थे।

एक अर्से बाद यानी सन् १६७५ ई० में एक दिन एक योगिराज होलिया गाँव की श्मशान भूमि में आया और सीधे तैलंग धर की कुटिया के पास जाकर कहा—''शिवराम।''

माँ द्वारा प्रदत्त नाम का उपयोग सौतेली माता भी नहीं करती थी। केवल माँ इसी नाम से पुकारती थी। घर के सभी तथा गाँव के लोग तैलंगधर कहते थे। आखिर किसने इस नाम से पुकारा?

कुटिया के बाहर आने पर तैलंगधर ने देखा एक सन्त खड़े हैं। उनके आनन से अपूर्व तेज निकल रहा है। उनके आगे तैलंग का मस्तक अपने आप झुक गया। सहसा तैलंगधर को कुछ दिन पूर्व देखे स्वप्न की घटनाएँ याद आ गयीं। उन्हें लगा—हो न हो, यह सन्त मेरे भावी गुरु हों। मन में यह विचार आते ही उन्होंने आगन्तुक सन्त को पुन: साष्टांग प्रणाम किया।

देर तक दोनों व्यक्ति आपस में बातचीत करते रहे। इतने में श्रीधर के यहाँ से भोजन आया। दोनों व्यक्तियों ने भोजन किया। आगन्तुक स्वामी का नाम भगीरथ स्वामी है। आप पटियाला में रहते थे। कुछ दिन हुए भगवत् प्रेरणा से यहाँ चले आये हैं। दक्षिण के विभिन्न तीर्थों का दर्शन करने के उद्देश्य से इधर आये हैं।

बातचीत के सिलसिले में भगीरथ स्वामी ने कहा—''कुछ दिन यहाँ विश्राम करने के बाद गिरनार होते हुए पुष्कर तीर्थ जाने का विचार है।''

तैलंगधर ने कहा—''महाराज, आपको आपत्ति न हो तो मुझे भी साथ ले लें। आपसे उपदेश सुनूँगा और आपकी सेवा करूँगा।''

भगीरथ स्वामी अपने साथ तैलगंधर को लेकर विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए पुष्कर तीर्थ आये। इस बीच उन्होंने तैलंग की शक्ति को पहचान लिया था। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि केवल प्रक्रिया समझाना है। अब नित्य भगीरथ स्वामी योग की विभिन्न क्रियाएँ तैलंगधर को बताने लगे। होलिया गाँव से पुष्कर तक आने में छह वर्ष लगे थे। इन दिनों तैलंग, स्वामी ७७ वर्ष की उम्र पार कर चुके थे।

आखिर वह शुभ दिन आया जिसकी प्रतीक्षा एक अर्से से तैलंग स्वामी कर रहे थे। भगीरथ स्वामी ने कहा—''तैलंग, कल सबेरे तुम्हें दीक्षा दूँगा।''

पुष्कर सरोवर में स्नान करने के पश्चात् तैलंगधर गुरु द्वारा निर्देशित आसन पर बैठे। सारी क्रियाओं के बाद उन्हें भगीरथ स्वामी ने बीज मन्त्र दिया। इसके बाद बोले—''अब तक तुम्हें योग की प्रक्रियाएँ बताता रहा। उसका अभ्यास करते रहना। अपने गुरु द्वारा प्राप्त उपाधि अब तुम्हें दे रहा हूँ, क्योंकि परम्परा के अनुसार शिष्य को गुरु

की शाखा की उपाधि ग्रहण करनी पड़ती है। आज से तुम तैलगंधर या शिवराम के नाम से नहीं, गजानन्द सरस्वती[1] के नाम से जाने जाओगे।''

संन्यास लेने के बाद तैलंगधर गजानन्द सरस्वती के रूप में स्वीकृत हुए। भगीरथ स्वामी ने धीरे-धीरे उन्हें अष्ट सिद्धि दे दी। जब तक किसी योगी को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं तब तक वह योगैश्वर्य नहीं दिखा पाता। अष्ट सिद्धियों का वर्णन करते हुए गुरुदेव ने बताया—

(१) अणिमा—अगर योगी चाहे तो वह अणु से भी सूक्ष्म रूप धारण कर सकता है और किसी जीव के रोम कूप के द्वारा उसके शरीर में प्रवेश कर सकता है। इसी को परकाया प्रवेश कहते हैं।

(२) लघिमा—योगी अपनी इच्छानुसार लघु या शरीर को हल्का बनाकर हवा में उड़ सकता है।

(३) महिमा—सिद्ध योगी अपनी इच्छानुसार पर्वत की तरह विशाल शरीर धारण कर सकता है।

(४) प्राप्ति—योगी जब जी चाहे कोई भी वस्तु कहीं से स्मरण करते ही पा सकता है।

(५) प्रकाम्य—उनका दृढ़ संकल्प स्थायी रहता है और इसी के द्वारा देर-सबेर सफलता प्राप्त करते हैं।

(६) वशित्व—पंचभूत और भौतिक पदार्थों पर उनका अधिकार होता है।

(७) इशितृत्व—सभी प्रकार के भौतिक पदार्थ उनके आज्ञाकारी होते हैं।

(८) यत्रकामावसायित्व— अपनी इच्छानुसार वे सभी भौतिक पदार्थों के स्वभाव तथा क्रिया को नियन्त्रित करने में समर्थ होते हैं।[2]

गजानन्द सरस्वती पुष्कर में दीक्षा लेने के बाद लगातार दस वर्ष तक गुरु की सेवा करते रहे। ठीक इन्ही दिनों गुरुदेव का शरीरांत हो गया। गुरुदेव के ब्रह्मलीन होने के बाद गजानन्द सरस्वती तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। उन दिनों आपकी उम्र ८८ वर्ष थी।

सन् १६६५ ई० में आप पुष्कर से चलकर विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए रामेश्वर आये। यहाँ देश के विभिन्न भागों से सन्त-महात्मा एकत्रित हुए थे। मेला लगने के कारण अनेक तीर्थयात्री भी आये थे। इसी मेले में होलिया गाँव के लोगों से अचानक मुलाकात हो गयी।

तैलंग को संन्यासी के रूप में देखकर सभी चकित रह गये। उन लोगों ने आग्रह किया कि जैसे आप पहले श्मशान वाली कुटिया में रहते थे, उसी प्रकार चलकर वहाँ रहिये। अब आपकी सौतेली माँ नहीं रहीं। श्रीधर भी काफी वृद्ध हो गये हैं।

---

१. कुछ विद्वानों का मत है कि संन्यास लेने के बाद उनका नाम गणपति सरस्वती रखा गया था।
२. अष्ट सिद्धि योग के प्रमाण के लिए भारत के महान् योगी, खण्ड १-२-३ में प्रकाशित योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी आदि की जीवनी देखें।

गजानन्द सरस्वती ने कहा—"मैं गुरुदेव की इच्छानुसार तीर्थयात्रा करने निकला हूँ। अब जन्मभूमि जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

इतना कहकर गजानन्द सरस्वती आगे बढ़ गये। मेले में अपार भीड़ थी। हर प्रांत से लोग आये हुए थे। अचानक एक जगह भीड़ देखकर गजानन्दजी वहाँ चले गये। उन्होंने देखा—कुछ लोग एक शव को तख्ती में बाँध रहे हैं। पास ही एक महिला तथा अन्य लोग जोर-जोर से रो रहे हैं।

यह दृश्य देखकर गजानन्दजी ने कहा—"आप लोग यह क्या कर रहे हैं? जीवित व्यक्ति को क्यों बाँध रहे हैं?"

स्वामीजी की बातें सुनकर सभी लोग चकित रह गये। जो लोग रो रहे थे, उनका रोना बन्द हो गया। तख्ती बाँधने वालों का हाथ रुक गया। स्वामीजी ने अपने कमण्डल से पानी लेकर शव पर छिड़का और मृत व्यक्ति कफन के भीतर छटपटाने लगा।

तुरत कफन फाड़कर रस्सियाँ काट दी गयीं। स्वामीजी ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। इसे तुरत दूध पिला दो।"

देखते ही देखते यह समाचार हवा की तरह चारों ओर फैल गया। नागरिकों तथा तीर्थयात्रियों की भीड़ स्वामीजी के दर्शन के लिए टूट पड़ी। उसी रात को आप चुपचाप चल पड़े।

कई नगरों से होते हुए स्वामीजी शिवकांची आकर ठहर गये। यहाँ से आगे बढ़ने पर अचानक एक परिचित व्यक्ति ने इन्हें प्रणाम किया।

स्वामीजी ने कहा—"सदा प्रसन्न रहो। क्या बात है?"

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"स्वामीजी महाराज, मैंने आपको देखते ही पहचान लिया कि आप सेतुबन्ध रामेश्वर वाले स्वामीजी हैं। आपने ही उस मृत व्यक्ति को जीवित किया था। मैंने अपनी आँखों से वह सारा दृश्य देखा है। अब आप कहीं नहीं जा सकते। मुझे आप सेवा करने का अवसर देने की कृपा करें।"

स्वामीजी ने सोचा—अजीब मुसीबत में फँस गये। उक्त अपरिचित ब्राह्मण की कातर-प्रार्थना को वे ठुकरा नहीं सके। स्थान मनोरम था। कुछ दिनों के लिए इस निर्जन स्थान में उन्होंने विश्राम करने का निश्चय किया।

ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी दासभाव से स्वामीजी की सेवा में लगे रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर स्वामीजी प्रसन्न हो गये तो उनके आशीर्वाद से सारा कष्ट दूर हो जायगा। आखिर एक दिन वह भी आया जब स्वामीजी ने कहा—"पण्डित जी, आपकी सेवा स्वार्थ रहित नहीं है, इसे मैंने जान लिया है। बोलो, मुझसे क्या चाहते हो?"

बड़े विनय के साथ ब्राह्मण ने कहा—"स्वामीजी, हम अपुत्रक हैं और घर की क्या स्थिति है, यह आपसे छिपा नहीं है। याचक ब्राह्मण ठहरा। कृपा करके आप मुझे पुत्र-धन की प्राप्ति का आशीर्वाद दें।"

स्वामीजी के आशीर्वाद से ब्राह्मण के घर एक पुत्र ने जन्म लिया। राज्य की

ओर से उसे निष्कर भूमि दान में प्राप्त हो गयी। स्वामीजी के आशीर्वाद से ब्राह्मण को सुखी होते देख गाँव के अन्य लोग आकर स्वामीजी को तंग करने लगे। साधना में व्याघात होने पर एक दिन गजानन्दजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

यहाँ से रवाना होते समय गजानन्दजी स्वामी ने निश्चय किया कि अब ऐसी जगह चलकर साधना करूँ जहाँ जल्द कोई परिचित न मिले। विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए स्वामीजी नेपाल चले आये। यहाँ आकर वे बस्ती से दूर घने जंगल में एक स्थान पर साधना करने लगे।

कहा जाता है कि नेपाल नरेश को शेर का शिकार करने का शौक था। इस सिलसिले में वे एक शेर का पीछा करते हुए इधर चले आये। गोली चलाने पर निशाना चूक गया। नेपाल नरेश शेर का पीछा करते हुए वहाँ तक आ पहुँचे जहाँ स्वामीजी बैठे हुए थे। उन्होंने आश्चर्य से देखा—जिस खूँखार शेर को मारने के लिए वे यहाँ तक आये हैं, वह स्वामीजी के पैरों के पास शान्तिपूर्वक बैठा हुआ है। स्वामीजी उसके शरीर पर हाथ फेर रहे हैं।

नेपाल नरेश और उनके साथ आये सैनिकों को देखकर शेर गुर्राने लगा।

स्वामीजी ने शान्तभाव से कहा—''इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यह शेर यहाँ से तब तक नहीं उठेगा जब तक मैं इसे आज्ञा न दूँ। आप इसी शेर का शिकार करना चाहते थे और अब इसे देखकर भयभीत हो रहे हैं। जब आप किसी को प्राण नहीं दे सकते तो किसी का प्राण लेने का क्या अधिकार है तुम्हें? हिंसा करना उचित नहीं है। अब वापस चले जाओ, राजन्।''

कुछ देर बाद शेर जंगल में अपनी जगह चला गया। इधर महल में वापस आने के बाद आज की इस अद्भुत घटना को नेपाल नरेश भुला नहीं पा रहे थे। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि उनके राज्य में एक ऐसा संत भी है जिसके पास जंगली शेर पालतू बिल्ली की तरह बैठा रहता है।

दूसरे दिन अनेक उपहार लेकर वे स्वामीजी की सेवा में हाजिर हुए। नेपाल नरेश को इतने उपहारों के साथ आया देखकर स्वामीजी मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—''राजन्, मैं आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गया। मैं फकीर आदमी हूँ। मुझे इन चीजों की आवश्यकता नहीं है। मेरा अनुरोध है कि यह सब सामग्री आप उन अभावग्रस्त लोगों में बाँट दें जिन्हें इसकी जरूरत हो। इससे आपका तथा राज्य का कल्याण होगा।''

नेपाल नरेश एक संत के यहाँ गये थे जिन्होंने महाराजाधिराज की सामग्रियों को लेने से इनकार कर दिया है। यह समाचार साथ आये सैनिकों की जबानी फैल गयी। यहाँ भी पीड़ित, आर्त और स्वार्थी लोगों की भीड़ आने लगी। फलतः एक रात आप यहाँ से तिब्बत की ओर चल पड़े।

कुछ दिनों तक तिब्बत में निवास करने के बाद मानसरोबर में योगाभ्यास करते रहे।

सन् १७२६ ई० में अचानक आप नर्मदा नदी के किनारे स्थित मार्कण्डेय ऋषि

के आश्रम में आकर साधनारत हो गये। यहाँ भारत के अनेक संत-महात्मा रहते थे। उनसे योग, दर्शन, अध्यात्म की चर्चा करते रहे। यहाँ का वातावरण स्वामीजी को इतना पसन्द आया कि यहाँ की कुटिया में रहने लगे।

नित्य नर्मदा में स्नान करने के पश्चात् योगाभ्यास करते थे। कहा जाता है कि इसी आश्रम में 'खाकी बाबा' नामक एक संत रहते थे। खाकी बाबा भी नित्य योगाभ्यास करते थे। एक दिन जब वे नदी किनारे बैठे अभ्यास कर रहे थे तब सहसा उनकी नजर नर्मदा के जल पर पड़ी। उन्होंने चकित दृष्टि से देखा—नदी का जल श्याम वर्ण नहीं, बल्कि दूध की तरह है।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि स्वामी गजानन्द उस दूध को अंजलि में भरकर पान कर रहे हैं। देर तक वे इस दृश्य को देखते रहे। एकाएक उनके मन में आया कि कहीं दृष्टिभ्रम तो नहीं है। यह सोचकर वे नदी किनारे आये और अपनी अंजलि में नर्मदा में प्रवाहित दूध को उठाया तो वह पानी नजर आया। दूर गजानन्द स्वामी की ओर देखा तो वे दूर जा चुके थे। और इधर नदी का स्वरूप वास्तविक रूप में परिणत हो गया था।

उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि स्वामी गजानन्द ने अपनी यौगिक शक्ति के माध्यम से यह चमत्कार किया है। खाकी बाबा अभी इस स्तर तक नहीं पहुँच सके हैं, इसलिए उन्हें आश्चर्य हुआ। इस घटना के कारण स्थानीय सभी संत उन्हें उच्चस्तर का संत समझकर श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

* * *

सात वर्ष मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में रहने के बाद पुनः एक बार यात्रा के लिए स्वामीजी चल पड़े। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए सन् १७३३ ई० के अंतिम दिनों प्रयाग में आकार रहने लगे। यहाँ नदी किनारे एक निर्जन स्थान में आकर साधनारत हो गये।

एक दिन नदी किनारे चुपचाप बैठे थे। हवा के झोंके खा नदी में लहरें नृत्य कर रही थीं। देखते ही देखते आसमान की रंगत बदल गयी। आसमान में गर्द के बादल आपस में उलझने लगे। नदी में ऊँची-ऊँची लहरें आपस में टकराने लगीं। किनारे की बालू उड़कर एक जगह से दूसरी जगह जाने लगी। बिजली की चमक के साथ बादल गरजने लगे और पानी बरसने लगा।

नदी किनारे खुले स्थान पर जो लोग बैठे हवा का आनन्द ले रहे थे, चारों ओर आश्रय की खोज में भागने लगे। गजानन्द स्वामी अपनी जगह स्थिर होकर बैठे रहे। रामतरण भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति जो स्वामीजी को पहचानता था, उसने पास आकर कहा—''महाराज, क्यों आप पानी में भींग रहे हैं। चलिये किनारे किसी दूकान में बैठें।''

स्वामीजी ने कहा—''मेरे लिए तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मुझे यहाँ कोई कष्ट नहीं है। वास्तव में यहाँ मैं एक विशेष कार्य से बैठा हूँ।''

"इस बरसात में कौन-सा काम है, भगवान्?"

स्वामीजी ने कहा—"उधर देखो, उस पार से यात्रियों को लेकर जो नाव आ रही है, वह थोड़ी ही देर में डूब जायेगी। मुझे उन लोगों को बचाना है।"

रामतरण ने देखा—सचमुच यात्रियों से लदी एक नाव इस पार आ रही है। लेकिन यह नाव क्यों डूब जायेगी? स्वामीजी को कैसे यह रहस्य ज्ञात हो गया? कौतूहलवश वह वर्षा से बचने की अपेक्षा यह देखने के लिए रुक गया कि स्वामीजी कैसे इतने यात्रियों को बचा पाते हैं। अभी वह इन बातों को सोच ही रहा था, कि स्वामीजी अपनी जगह से गायब हो गये। वह भयभीत होकर दूर जाकर खड़ा हो गया।

रामतरण ने देखा—सचमुच नाव डूब गयी। लोगों को चीखने का मौका भी नहीं मिला। थोड़ी देर बाद वह यह देखकर और भी चकित रह गया कि वही नाव किनारे लग रही है। सभी यात्री सुरक्षित अवस्था में हैं। केवल उनके कपड़े और सामग्रियाँ पानी से तर हैं। उसी नाव पर एक किनारे स्वामीजी उलंग स्थिति में बैठे हैं।

यात्रियों के चले जाने के बाद रामतरण ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए। इसके बाद उसने पूछा—"महाराज, आपने इन लोगों को कैसे बचाया, यह मेरी समझ में नहीं आया। क्या आप मनुष्य के रूप में देवदूत हैं या और कुछ ?"

स्वामीजी ने कहा—"वत्स, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह कार्य तुम भी कर सकते हो। इसके लिए शक्ति चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्वरीय-शक्ति है। आत्मबोध का अर्थ है—अपने को पहचानना। अगर हम अपने को पहचान लें तो ईश्वर को भी जान लेंगे। जब तक अपने को नहीं जान सकोगे तब तक भगवान् को नहीं जान सकोगे। मैं क्या हूँ, इसे जानने के लिए आत्मा, मन तथा बुद्धि इन तीन पदार्थों को जानना चाहिए। आत्मा ही शरीर का प्रधान है। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी का कर्ता है, वह सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है, मगर सूर्य स्वयं कुछ नहीं करता, ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा ही सूर्य की भाँति कर्ता होकर प्रकाश प्रदान करती है। इस प्रकाश के आश्रय में इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, आत्मा स्वयं कुछ नहीं करती।"

* * *

प्रयाग में चार वर्ष तक निवास करने के बाद स्वामीजी का आगमन काशी नगरी में हुआ। बचपन में उन्होंने जहाँगीर को किशोरावस्था में, शाहजहाँ को भारतीय संस्कृति और धर्म पर कुठाराघात करते देखा और वृद्धावस्था में औरंगजेब के धार्मिक-उन्माद को देखने लगे। काशी नगरी में बिन्दुमाधव और विश्वनाथ मंदिर ध्वस्त कर दिया गया था। नगर की जनता आतंकित और संकटापन्न थी। ठीक ऐसे माहौल में पूज्यपाद गजानन्द सरस्वती का अवतरण काशी में हुआ।

प्राचीनकाल से काशी में अनेक संत-महात्मा रहते आये हैं, पर वे यवनों के प्रकोप को दूर करने में असमर्थ रहे। काशी आकर स्वामीजी ने नगर के बाहरी इलाके

में स्थित लोलार्क कुण्ड के समीप डेरा डाला। नदी किनारे प्राय: चुपचाप ध्यानस्थ रहते थे। गंगा-स्नान करने वाले इन्हें देखते, दूर से प्रणाम करते और कुछ उपेक्षा के साथ आगे बढ़ जाते।

कभी-कभी आसपास के लोग आकर बैठ जाते और बाबा के बारे में जानकारी हासिल करते। बातचीत के जरिये लोगों को जब यह मालूम हुआ कि बाबा दक्षिण के तेलंगाना प्रदेश से आये हैं तब इन्हें अधिकतर लोग ''तैलंग स्वामी'' के नाम से जानने लगे। स्वामीजी के वास्तविक नाम को जानने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया।

आज भी नगर की अधिकांश अर्द्ध शिक्षित जनता कर्नाटक, आंध्र, केरल तथा तमिल प्रदेश के निवासियों को मद्रासी समझती है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में तेलंगाना की प्रसिद्धि थी। दक्षिण भारत के नागरिकों को तेलंगाना निवासी समझा जाता था।

साँवला रंग, नग्न देह, कमर में कोपीन, मुंडित मस्तक, उन्नत ललाट और भरपूर शरीर था। एक बार आप लोलार्क कुण्ड में स्नान करने के बाद जब ऊपर आये तो देखा तो कुष्ठ रोग से पीड़ित एक व्यक्ति गली में नाली के पास बेहोश पड़ा है। करुणा से विगलित होकर आप उसके निकट बैठ गये।

उसके शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे। स्वामीजी के स्पर्श से उसकी चेतना जाग्रत् हुई। स्वामीजी ने पूछा—''बड़ा कष्ट है?''

''हाँ, बाबा। मैं मरने के लिए ही काशी आया हूँ। भोलेनाथ मुझे मुक्ति दे दें तो इस पाप से छुटकारा मिल जाय। पता नहीं किस पाप की सजा भोग रहा हूँ।''

स्वामीजी ने पूछा—''क्या नाम है तुम्हारा?''

कुष्ठ रोगी ने कहा—''ब्रह्मा सिंह। अजमेर से यहाँ इसीलिए आया हूँ ताकि मुझे सदा के लिए मुक्ति मिल जाय। पता नहीं, भगवान् कब मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे?''

स्वामीजी ने कहा—''चिन्ता की बात नहीं है। जाओ, कुण्ड में स्नान कर लो। स्नान करने के बाद यह पत्र चबाकर खा जाना। तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा। और देखो, रोग अच्छा होने पर भगवान् की आराधना करते रहना। मैं पास ही घाट पर रहता हूँ। कुण्ड में स्नान करने के बाद मेरे पास रोज आना और बेलपत्र ले जाना।''

स्वामीजी की आज्ञानुसार ब्रह्मा सिंह नित्य लोलार्क कुण्ड में स्नान करने के बाद उनके पास जाकर बेलपत्र लेता और उसे खा जाता था। कुछ ही दिनों बाद वह रोग-मुक्त हो गया। बाबा की इस कृपा के कारण वह उनका सेवक बनकर सेवा करने लगा।

इसी प्रकार सीतानाथ बनर्जी नामक एक बंगाली युवक एक अर्से से तपेदिक से पीड़ित था। उसे यह विश्वास हो गया था कि अब वह चन्द दिनों का मेहमान है। सुखपूर्वक रहने के लिए वह गंगा किनारे आकर रहने लगा। अचानक एक दिन उसकी स्थिति चिन्ताजनक हो गयी। देखते ही देखते दर्शकों की भीड़ एकत्रित हो गयी।

ठीक इसी समय न जाने किधर से तैलंग स्वामी वहाँ आ गये। यहाँ इतनी भीड़

क्यों है, प्रश्न पूछने पर जब उन्हें कारण मालूम हुआ तब उन्होंने कहा—''जरा आप लोग हट जाइये।''

अधिकांश दर्शक तैलंग स्वामी से परिचित थे। उन लोगों ने तुरन्त रास्ता दिया।

स्वामीजी रोगी के पास बैठकर उसकी छाती सहलाने लगे। इसके बाद उसे सहारा देकर बैठाते हुए बोले—''चिन्ता की बात नहीं है, सब ठीक हो जायगा।''

घाट के किनारे से थोड़ी मिट्टी लाकर उसे देते हुए स्वामीजी ने कहा—''इसमें से थोड़ी खा लो। शेष मिट्टी प्रलेप की तरह अपनी छाती पर लगा लो। कल से नित्य गंगा-स्नान के बाद यही क्रिया करना। कुछ दिनों बाद तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा।''

* * *

कुछ दिनों बाद स्वामीजी भदैनी घाट से हटकर हनुमानघाट के पास आकर रहने लगे। घाट किनारे बैठे रहने पर प्रायः कुछ श्रद्धालु आपके पास आकर बैठते थे। समय-समय पर आप उन्हें उपदेश देते थे।

इसी मुहल्ले में एक महिला रहती थी जो नित्य गंगा-स्नान करने के बाद घाट-मार्ग से विश्वनाथ मन्दिर दर्शन करने जाती थी। एक दिन स्वामीजी पूर्ण रूप से नंग-धड़ंग बैठे थे। इन्हें वस्त्र-रहित देखकर वह महिला आगबबूला हो गयी।

कुछ दूर जाकर राह चलते लोगों से कहने लगी—''शर्म नहीं आती इस बूढ़े को। बीच बाजार में नंगा बैठा है। औरतों का चलना, फिरना मुहाल हो गया है।''

स्वामीजी अपनी आलोचना मौन भाव से सुनते रहे। प्रतिवाद में उन्होंने कुछ नहीं कहा। वह महिला भुनभुन करती हुई आगे बढ़ गयी।

इसी रात को उक्त महिला ने एक भयंकर स्वप्न देखा—स्वयं शंकर भगवान् उसे फटकारते हुए बोले—''आज तू ने मेरे ही एक गण का अपमान किया है, अब तेरी मनोकामना पूरी नहीं होगी। मेरे गण का अपमान मेरा अपमान है। अब वही गण तुझे अपने कष्टों से छुटकारा दिलायेगा। मैं कुछ नहीं करूँगा।''

स्वप्न में यह निर्देश पाते ही महिला चौंककर जाग गयी। एकाएक उसे ध्यान आया कि आज सुबह मैंने एक नंगे साधु को फटकारा था। जरूर वही स्वामी भगवान् के गण होंगे। यह विचार मन में आते ही वह महिला सबेरे जल्दी से स्नान करके तैलंग स्वामी के पास आकर साष्टांग प्रणाम करती हुई बोली—''भगवन्, कल मुझसे अपराध हो गया। मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं बड़ी अभागिन हूँ जो आपको पहचान नहीं सकी। आप दयालु संत हैं, जब तक आप क्षमा नहीं करेंगे तब तक मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।''

अन्तर्यामी बाबा से कोई बात छिपी नहीं रही। शान्त स्वर में उन्होंने कहा—''माँ, तू चिन्ता मत कर। तू मेरी माँ है। माँ का कार्य ही है—बेटे को डाँटना । मैं तो उस घटना को भूल चुका हूँ। तू भी भूल जा। बाबा के दरबार में तू अपने पति को निरोग बनाने के लिए जाती रही न? चिन्ता मत कर वह ठीक हो जायगा। पूर्व

जन्म का कुछ भोग बाकी है। ले, इस भस्म में से उसे थोड़ा खिला देना और शेष उसके पेट में प्रलेप की तरह लगा देना। वह निरोग जायेगा।''

कुछ ही दिनों में उसका पति चंगा हो गया। यह चमत्कार देखकर वह महिला नित्य स्वामीजी की पूजा विग्रह की तरह करने लगी। उसकी जबानी इस घटना का प्रचार चारों ओर हो गया। फलस्वरूप कष्ट से पीड़ित अनेक लोग अपने रोग-निवारण के लिए बाबा के पास आने लगे। भोलानाथ की तरह सभी लोगों को बाबा आशीर्वाद के साथ-साथ भभूत देते रहे। इस प्रकार स्वामीजी की यौगिक शक्ति का प्रसार बढ़ता गया।

बढ़ती भीड़ से परेशान होकर स्वामीजी वहाँ से हटकर दशाश्वमेध घाट पर आकर रहने लगे। आपकी अलौकिक शक्ति का प्रचार हो गया था। नगर का मुख्य घाट होने के कारण यहाँ भी श्रद्धालुओं का ताँता लगने लगा। लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए फल-मिष्ठान्न, वस्त्रादि सामान भेंट चढ़ाने लगे। तंग आकर आपने मौन व्रत धारण कर लिया। अब किसी के प्रश्न का उत्तर देने के बदले ध्यानस्थ हो जाते थे। भेंट में जो कोई कुछ भी लाता, उसे स्वीकार कर लेते और फिर लोगों में बाँट देते थे।

एक बार एक शरारती व्यक्ति अपनी कामना की पूर्ति के लिए बराबर आने लगा। वह क्या चाहता है, यह बात स्वामीजी से छिपी नहीं रही। इसके अलावा उन दिनों स्वामीजी मौन व्रत धारण किये हुए थे। बार-बार प्रश्न करने पर जब उसे कोई उत्तर नहीं मिला तब वह बदले की भावना से पीड़ित हो गया।

एक दिन एक हड़िया में चूना घोलकर ले आया और कहा—''बाबा, आपके लिए घर से गाढ़ा दूध ले आया हूँ। लीजिए, सेवन कीजिए।''

तैलंग स्वामी उसके मनोभाव को समझ गये। मन ही मन मुस्कराये। उस व्यक्ति की जिद्द थी कि बाबा मेरे सामने सारा दूध पी जायें। देखें, कितना सिद्ध हैं। पेट में जूना जाते ही बाबा को अपनी जिद्द का फल मिलेगा तब इनका मौन व्रत भंग होगा।

बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद किये स्वामीजी सारा घोल पी गये। थोड़ी देर बाद उठे और लघुशंका के जरिये सारा पानी तथा चूने को निकाल दिया। वह व्यक्ति तब तक बैठा बाबा के चेहरे को देख रहा था। बाबा को अपनी ओर तीव्र दृष्टि से देखते उसने देखा कि लघुशंका में सारा चूना निकल गया है । भय से वह भाग खड़ा हुआ।

रात को उस व्यक्ति की स्थिति चिन्तनीय हो उठी। पेट के दर्द के कारण वह छटपटाने लगा। दूसरे दिन भोर होते ही किसी सूरत से स्वामीजी के पास आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

उसकी दयनीय स्थिति देखकर आशुतोष स्वामीजी उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी ही देर बाद उसकी पीड़ा कम हो गयी। उसने कहा—''मुझे अपने अपराध की सजा मिल गयी, महाराज। आप मुझ पर हमेशा इसी तरह कृपा करते रहें।''

दशाश्वमेध घाट पर अधिक परेशानी अनुभव करने के कारण पंचगंगा घाट पर

चले आये। यहाँ बिन्दुमाधव मन्दिर के समीप रहने लगे। पंचगंगा घाट छोड़कर फिर आप आजीवन कहीं नहीं गये। आपकी अधिकतर लीला इसी घाट पर हुई है।

गंगा के उस पार काशी नरेश का क्षेत्र था और इस पार ब्रिटिश शासन की हुकूमत थी। यहाँ स्वामीजी दिगम्बर रूप में पड़े रहते थे।

एक बार यात्रियों की शिकायत पर पुलिस आपको पकड़कर ले गयी। उन दिनों काशी का जिलाधीश अंग्रेज था। जब उसकी अदालत में स्वामीजी बन्दी रूप में उपस्थित हुए तब उसने कहा—''इस तरह नंगा रहना अपराध है। मैं जानता हूँ कि अधिकांश संत नंगे बदन रहते हैं, पर इस तरह खुलेआम दिगम्बर रहना कानूनन अपराध है। भविष्य में आप धोती या अन्य कोई वस्त्र पहना करें।''

अचानक जज की निगाह स्वामीजी पर पड़ी। उसने देखा कि मेरी आज्ञा पर ध्यान देने के बजाय बन्दी दूसरी ओर देख रहा है। अपनी उपेक्षा उसे सहन नहीं हुई। तुरन्त उसने आदेश दिया—''इस साधु को पकड़कर जेल में बन्द कर दो।''

आदेश का पालन करने के लिए पुलिस आगे बढ़ी। अचानक अपने स्थान से स्वामीजी गायब हो गये। सारी अदालत हक्का-बक्का रह गयी। स्वामीजी पकड़े गये हैं, यह समाचार सुनकर अनेक भक्त और दर्शक भी मुकदमे का फैसला सुनने आये थे। जिलाधीश के आदेश को सुनकर वे लोग अप्रसन्न हो गये थे। अब स्वामीजी के गायब हो जाने पर सभी खुशी से उछलते हुए कह उठे—''हर हर महादेव।''

जिलाधीश और अन्य कर्मचारियों की स्थिति विचित्र हो गयी। चारों ओर खोजने पर भी वे कहीं दिखाई नहीं दिये।

ठीक इसी समय अदालत में एक बंगाली सज्जन आये जो इसी कचहरी में मैजिस्ट्रेट थे। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने जिलाधीश से कहा—''भारत में अधिकांश संत निर्वस्त्र रहते हैं। उनकी इस आदत को कोई बुरा नहीं मानता। फिर तैलंग स्वामी साधारण साधु नहीं हैं। मैं उनकी अनेक योग विभूतियों को देख चुका हूँ। आपको उन्होंने अपनी योग-शक्ति दिखाई है।''

बात समाप्त होते ही स्वामीजी पुनः उसी कठघरे में खड़े दिखाई दिये जिसमें इसके पूर्व खड़े थे। जिलाधीश पर इस चमत्कार का प्रभाव पड़ चुका था।

बंगाली मैजिस्ट्रेट ने आगे जिलाधीश को बताया—''इनके लिए वास-भवन और कारागार समान है। क्रोध, घृणा, हिंसा, भय से स्वामीजी काफी ऊपर उठ चुके हैं। चन्दन और विष्ठा में कोई अन्तर नहीं समझते। इनकी दृष्टि में दोनों बराबर हैं।''

जिलाधीश को स्वामीजी की इतनी प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। उसे यह ज्ञात था कि भारतीय नागरिक अपने यहाँ के सन्तों के प्रति काफी श्रद्धा रखते हैं। उसने जानबूझ कर स्वामीजी की ओर देखते हुए पूछा—''क्या यह फकीर मेरा भोजन खा सकता है?''

जिलाधीश अंग्रेज था। अंग्रेज सुअर-गाय का मांस खाते हैं। उसे इस बात की जानकारी थी कि हिन्दू गोमांस नहीं खाते। फिर सन्त तो कोई भी मांस नहीं खाता।

जिलाधीश के उद्देश्य को समझते ही स्वामीजी ने कहा—''जरूर खा सकता हूँ, पर उसके पहले आपको मेरा भोजन खाना पड़ेगा।''

जिलाधीश को यह ज्ञात था कि हिन्दू-साधु अधिकतर फल-मिष्ठान्न सेवन करते हैं। उसने कहा—''लाइये, देखूँ। आप तो............।''

अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाये थे कि तैलंग स्वामी ने अपने हाथ पर टट्टी करके जिलाधीश की ओर बढ़ाते हुए कहा—''मेरा आज का यही भोजन है। लीजिए, सेवन कीजिए।''

साहब की उस समय हालत ऐसी हो गयी जैसे 'काटो तो खून नहीं।' घृणा से उसने नाक-मुँह सिकोड़ लिया। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भरी अदालत में स्वामीजी ने बिना संकोच किये टट्टी को उदरस्थ कर लिया।

स्वामीजी के अन्तर्धान का प्रभाव उस पर पड़ चुका था और इस कांड को देखने के बाद उसने स्वविवेक से फैसला दिया कि भविष्य में स्वामीजी अपनी इच्छानुसार रहने को स्वतन्त्र हैं। इन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

कहा जाता है कि इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दूसरा जिलाधीश बनारस में आया। पंचगंगा घाट पर कुछ अंग्रेज टहलने गये थे। साथ में महिलाएँ भी थीं। इनकी नजर निर्वस्त्र तैलंग स्वामी पर पड़ी। उन्हें बड़ा नागवार लगा। जिलाधीश से शिकायत की गयी। उसने तुरन्त स्वामीजी को गिरफ्तार करने का आदेश दिया।

स्वामीजी गिरफ्तार होकर थाने में बन्द हो गये। शहर में सनसनी फैल गयी। कहीं जनता के विरोध पर पुलिस उस साधु को छोड़ न दे, इसलिए जिलाधीश स्वयं थाने पर जाँच के लिए गया तो देखा—तैलंग स्वामी जेल कोठरी के बाहर बरामदे पर टहल रहे हैं।

सिपाहियों की लापरवाही से नाराज होकर वह सभी को बिगड़ने लगा; पहरेदारों ने कहा—''हुजूर, हमारी लापरवाही नहीं है। स्वयं आप अपनी आँखों से देख लें। डबल ताला बन्द है। पता नहीं, कैसे बाबा बाहर निकल आये? हम पकड़ने जाते हैं तो गायब हो जाते हैं। कभी इधर तो कभी उधर दिखाई देते हैं।''

जिलाधीश को सिपाहियों की सफाई पर विश्वास नहीं हुआ। उसने आगे बढ़कर दरवाजे के तालों को टटोला। भीतर झाँकने पर अजीब दृश्य दिखाई दिया। कमरे में चारों ओर पानी फैला हुआ था। अजीब बू आ रही थी।

जिलाधीश ने पूछा—''हवालात में इतना पानी कैसे आ गया?''

पहरेदार के बदले स्वामीजी ने कहा—''रात को लघुशंका करने की इच्छा हुई तो थोड़ा-सा कर दिया। उस समय बाहर आने की इच्छा नहीं हो रही थी और भोर के वक्त मन में आया कि बाहर निकलकर टहल लिया जाय तो निकल आया। पहरेदारों ने मुझे नहीं निकाला।''

जिलाधीश को स्वामीजी की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। सभी सिपाही हिन्दू हैं

जिनकी साधुओं पर आस्था रहती है। जरूर ये लोग झूठ बोल रहे हैं। उसने तुरन्त आदेश दिया कि मेरे सामने बाबा को हवालात में बन्द करो। देखू, कैसे बाहर आता है।

स्वामीजी पुनः हवालात में बन्द कर दिये गये। उसी दिन जिलाधीश अपनी इजलास में एक मुकदमे की बहस को सुन रहा था। अचानक उसने देखा कि कमरे के एक कोने से स्वामीजी निकलकर सामने आकर खड़े हो गये। पूर्ण रूप से दिगम्बर थे।

उसे हक्का-बक्का देखकर स्वामीजी ने कहा—''पश्चिम के नास्तिक भारतीय योगियों के बारे में जानते ही कितना हैं? तुम लोगों में इतनी शक्ति नहीं है कि मुझे बन्द करके रख सको। भविष्य में किसी सन्त के साथ ऐसा व्यवहार मत करना वर्ना उसके कोप से बच नहीं सकोगे।''

स्वामीजी ने आगे कितनी चेतावनी दी, यह सारी बातें सुनने के पहले ही वह इजलास पर बेहोश हो गया। चारों तरफ तहलका मच गया। स्वामीजी अन्तर्धान हो गये थे।

होश में आने के बाद उसने फैसला दिया कि काशी के सर्वजन आदृत स्वामी तैलंगजी नगर में, कहीं भी, किसी भी रूप में रहने को स्वतन्त्र हैं। उनके साथ शासन की ओर से कभी छेड़छाड़ न की जाय।

*　　　　*　　　　*

सन् १८१० ई० की घटना है । उज्जैन के राजा काशी-दर्शन के लिए आये तो काशी नरेश के अतिथि हुए। एक दिन वे काशी नरेश के साथ घाटों की शोभा देखने के लिए नाव से निकल पड़े। रामनगर से दशाश्वमेध घाट पार कर पंचगंगा घाट पर जब नाव आयी तब उज्जैन नरेश ने देखा—एक संन्यासी नदी पर बैठा है। यह दृश्य देखकर वे चकित रह गये।

काशी नरेश से उन्होंने पूछा—''यह महात्माजी कौन हैं?''

काशी नरेश ने कहा—''आप हैं तैलंग स्वामी। आम जनता इन्हें योगी समझती है। लगभग सभी लोग इन्हें साक्षात् विश्वनाथ समझते हैं। अपनी अलौकिक शक्ति का इन्होंने काफी परिचय दिया है।''

इसके बाद काशी नरेश ने तैलंग स्वामीजी की कई घटनाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया। सारी बातें सुनने के बाद उज्जैन नरेश ने कहा—''अगर स्वामीजी इस नौका पर आने को तैयार हों तो मैं उनके दर्शन के अलावा कुछ बातें कर लूँगा।''

उज्जैन नरेश की इच्छा को जानकर काशी नरेश ने स्वामीजी के पास नाव ले चलने की आज्ञा दी। अचानक स्वामीजी हवा में उड़ते हुए नाव पर आकर बैठ गये और कहा—''कहिये राजन्, आप मुझसे क्या पूछना चाहते हैं?''

अपने जीवन में किसी व्यक्ति को इस प्रकार हवा में उड़ते कभी नहीं देखा था और प्रत्यक्ष रूप से इस चमत्कार को देखने पर नौका में बैठे सभी व्यक्ति विस्मय से भयभीत हो उठे। दोनों नरेशों ने नमस्कार किया और देर तक गूँगे बने रहे।

तैलंग स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर उज्जैन नरेश ने पूछा—''स्वामीजी, मेरी जिज्ञासा यह है कि परमात्मा ने हमें इस संसार में भेजा है। यहाँ हम नाना प्रकार के सुख-दु:ख भोग कर परमगति प्राप्त करते हैं। इसके बाद कोई गति होती है या नहीं? अगर होती है तो वह कैसी होती है?''

स्वामीजी ने कहा—''प्रज्ज्वलित अग्नि से जैसे सहस्त्रों चिनगारियाँ निकलती हैं, वैसे अक्षय परमात्मा से नाना प्रकार की जीवात्माओं की सृष्टि होती है और अन्त में उसी ब्रह्म में सब लीन हो जाती हैं। परमात्मा से उत्पन्न होकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि आत्मा व जीवात्मा एक ही परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। ज्ञानी मात्र इस बात को जानते हैं कि आत्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा परस्पर संयुक्त हैं।''

दरअसल काशी नरेश की समझ में स्वामीजी की बातें नहीं आयीं। फलस्वरूप उन्होंने आगे कोई प्रश्न नहीं किया। स्वामीजी के मन में कौतुक उत्पन्न हुआ। उन्होंने काशी नरेश के हाथ से तलवार लेकर उलट-पुलट कर देखने के बाद उसे गंगा नदी में फेंक दिया। स्वामीजी के इस कार्य से वे आगबबूला हो उठे। नौका पर बैठे उनके एक भक्त से काशी नरेश ने कहा—''यह कैसा साधु है जो दूसरे की वस्तु उठाकर फेंक देता है? बातें ऊँचे दर्जे की और काम इतना ओछा।''

उज्जैन नरेश भी कुपित हो उठे। उन्होंने कहा—''वास्तव में यह कपटी साधु है।''

स्वामीजी के भक्त ने कहा—''महाराज, आप लोग अप्रसन्न न हों। नाव किनारे लग जाने दीजिए, यहाँ काफी गोताखोर मिल जायेंगे। उनसे कहकर आपकी तलवार दिलवा देता हूँ।''

नाव किनारे पर लगते ही स्वामीजी उतरने लगे। यह देखकर काशी नरेश ने कहा—''स्वामीजी, आप यहाँ चुपचाप बैठे रहिये। जब तक मुझे मेरी तलवार नहीं मिल जाती तब तक आप कहीं नहीं जा सकते।''

काशी नरेश ने इरादा किया कि अगर मेरी तलवार न मिली तो इस धूर्त संन्यासी को गिरफ्तार कर ले चलेंगे। बड़ा आया है तत्त्व उपदेश देने वाला ढोंगी साधु। अन्तर्यामी तैलंग स्वामी को नरेश के मन की बात ज्ञात हो गयी। वे मन ही मन मुस्कराये।

नाव किनारे लगने ही वाली थी कि स्वामीजी ने नदी में हाथ डाला और दो तलवारें राजाओं की ओर बढ़ाते हुए कहा—''इनमें से जो तलवार अपनी हो, उसे पहचानकर ले लो।''

कहाँ तलवार के शोक में राजा उद्वेलित हो उठे थे और अब दो-दो तलवार सामने जादू की तरह पेश होने पर वे हतबुद्धि हो गये। इनमें से कौन-सी तलवार अपनी है, पहचानने में काशी नरेश असमर्थ थे।

उनकी मूढ़ता देखकर तैलंग स्वामी ने कहा—''जब तुम अपनी वस्तु स्वयं नहीं पहचान रहे हो तब यह तुम्हारी कैसे हुई? अगर यह तलवार तुम्हारी होती तो तुम निश्चित

रूप से पहचान लेते। जो वस्तु अपनी नहीं है, उसके लिए इतना क्रोध क्यों? अभी तुम परमात्मा, जीवात्मा और ईश्वर के बारे में जिज्ञासा प्रकट कर रहे थे और क्षण भर में तुम्हारी यह मनोदशा हो गयी? धिक्कार है ऐसे ज़ीवन पर।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी ने एक तलवार उनके हाथ में देकर दूसरी को गंगा नदी में फेंक दिया। इसके बाद नाव से नीचे उतर गये। सब कुछ पल भर में हो गया।

स्वामीजी को जाते देख दोनों नरेश तुरन्त नाव से उतर कर उनके पास आकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

काशी नरेश ने कहा—''मुझसे गलती हो गयी महाराज!'' मुझे क्षमा कर दें। हम पापिष्ठ हैं, इसीलिए आपको पहचान नहीं सके। आप दयालु हैं। अगर आप मेरे जैसे अज्ञानी पर दया नहीं करेंगे तो हमें शान्ति नहीं मिलेगी।''

इस कातर-प्रार्थना को सुनकर सदाशय संत कृपावान हो गये। बोले—''सभी महात्मा एक से नहीं होते। भविष्य में किसी संत का अपमान करने का साहस मत करना। पता नहीं, कब किस संत के क्रोध के कारण तुम्हारा अनिष्ट हो जाय।''

इतना कहकर स्वामीजी नदी में कूद पड़े और देखते ही देखते न जाने कहाँ अदृश्य हो गये। दोनों नरेश उनके आने की प्रतीक्षा में देर तक नाव पर बैठे रहे, पर वे वापस नहीं लौटे।

* * *

अम्बालिका नामक एक महिला नित्य गंगा-स्नान करने के पश्चात् तैलंग स्वामी का दर्शन करने जाती थी। साथ में फूल, फल ले जाती थी। स्वामीजी को वह साक्षात् बाबा विश्वनाथ समझती थी। अम्बालिका की एक ही लड़की थी—शंकरी। कभी-कभी वह भी माँ के साथ बाबा के पास चली आती थी। अपनी माँ की भक्ति देखकर वह भी बाबा के प्रति असीम श्रद्धा रखती थी।

इन्हीं दिनों काशी में चेचक रोग फैल गया। शंकरी चेचक से पीड़ित हो गयी। हालत सुधरने की अपेक्षा खराब होती गयी। बेटी की हालत देखकर माँ बेहाल हो उठी। नहाना-खाना सब कुछ अनियमित हो उठा।

एक दिन शंकरी की आवाज बन्द हो गयी। उस दिन की स्थिति देखकर अम्बालिका ने समझ लिया कि अब शंकरी नहीं बच सकती। वह अपनी बेटी के सिरहाने बैठकर रोने लगी।

ठीक इसी माहौल में शंकरी ने कहा—''माँ, तुम रो क्यों रही हो?''

बेटी की आवाज सुनते ही माँ चौंक उठी। अपने आँसुओं को पोंछती हुई बोली—''तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है। क्या करेंगे भगवान् पता नहीं। स्वामीजी की भी कृपा नहीं हो रही है। न जाने कितने लोगों पर उनकी कृपा होती है। मैं बड़ी अभागिन हूँ।''

लड़की ने चकित भाव से कहा—''नहीं माँ। स्वामीजी तो तुम्हारे पास खड़े हैं देखो।''

अम्बालिका चौंककर चारों ओर देखने लगी। उसे स्वामीजी नहीं दिखाई दिये। शायद लड़की प्रलाप कर रही है । बोली—''कहाँ हैं स्वामीजी?''

माँ की बातें सुनते ही शंकरी ने माँ के हाथ को पकड़कर स्वामीजी के चरणों में लगा दिया । तब उन्हें साक्षात् तैलंग स्वामी दिखाई पड़े।

स्वामीजी ने सांत्वना भरे शब्दों में कहा—''घबराओ नहीं बेटी। तुम्हारी बेटी शीघ्र स्वस्थ हो जायगी। अभी इसका मृत्यु-योग नहीं आया है।''

कुछ दिनों बाद शंकरी पूर्ण रूप से ठीक हो गयी।

अम्बालिका के घर में रामचन्द्र भगवान् की एक लकड़ी की बनी मूर्ति थी। शंकरी खेल-खेल में उस मूर्ति की पूजा किया करती थी जैसा कि आम बच्चे करते रहते हैं।

एक दिन उसके मन में आया कि इस लकड़ी की पूजा क्यों करूँ। माँ की तरह मैं तैलंग स्वामीजी की पूजा करूँगी। उनकी कृपा से मैं स्वस्थ हो गयी हूँ।

माँ उस समय घर पर नहीं थी। गंगा-स्नान तथा मन्दिर-दर्शन करने गयी थीं। शंकरी गंगाजल लेकर तैलंग स्वामी के यहाँ जाने के लिए उद्यत हुई। अचानक उसकी निगाह रामजी की मूर्ति पर पड़ी तो देखा—रामजी की मूर्ति गायब है। वहाँ स्वामीजी विराजमान हैं।

उसे चकित देखकर स्वामीजी ने कहा—''मैं आ गया हूँ। मेरी पूजा करो बेटी।''

पूजा करते-करते शंकरी को समाधि लग गयी। समाधि टूटने पर उसने देखा—वही काठ की मूर्ति सामने है। स्वामीजी गायब हैं। शंकरी ने सोचा—शायद वह नींद में सपना देख रही थी। तुरन्त तैलंग स्वामी के आश्रम में आयी।

यहाँ आने पर देखा कि स्वामीजी समाधि लगाये बैठे हैं। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि घर पर जो माला स्वामीजी को पहनायी थी, वही माला इस वक्त उनके गले में है।

जब समाधि भंग हुई तब शंकरी ने पूछा—''बाबा, यह माला आपको किसने पहनायी?''

बाबा ने मुस्कराकर कहा—''तुमने तो पहनायी थी।''

छोटी बच्ची इस जवाब को सुनकर दंग रह गयी। माला तो घर पर पहनायी थी, फिर यहाँ कैसे आ गयी? बाल-मन को इस प्रश्न का जवाब नहीं मिला।

शंकरी उन दिनों आठ साल की थी तब की एक घटना है। एक दिन स्वामीजी गंगा-स्नान के लिए चल पड़े। शंकरी को देखकर बोले—''चल मेरे साथ।''

उसे लेकर घाट पर आये। उसे किनारे पर बैठाकर स्वयं गंगा में स्वामीजी ने डुबकी लगायी। कुछ देर बाद ऊपर आकर बोले—''चल, तू भी नहा ले।''

शंकरी ने कहा—''मैं आपकी तरह तैरना नहीं जानती।''

बाबा ने कहा—''कोई हर्ज नहीं। तू मेरी पीठ पर सवार हो जा। मैं तुझे ले चलूँगा।''

बाबा की आज्ञानुसार शंकरी उनकी पीठ पर लटक गयी। कुछ दूर जाने के बाद बाबा ने डुबकी लगायी। तुरन्त शंकरी ने देखा-गंगा के गर्भ में स्थित एक भवन में बैठी है।

तैलंग स्वामी ने पूछा—''बेटी, बताओ तो इस वक्त कहाँ बैठी हो?''

शंकरी ने कहा—''यह तो नये ढंग का मकान है।''

सामने शंकरी की उम्र के बराबर एक लड़की खड़ी थी। उसकी ओर इशारा करते हुए शंकरी ने पूछा—''बाबा, यह कौन है?''

तैलंग स्वामी ने कहा—''ये भगवती देवी हैं। इन्हें प्रणाम करो बेटी।''

देवी को प्रणाम करने के बाद शंकरी ने पूछा—''बाबा, यहाँ हम सब हैं, पर गंगा माता कहाँ हैं?''

बाबा ने कहा—''हाथ लगाकर देखो बेटी।''

शंकरी ने चारों ओर हाथ लगाया तो पानी ही पानी था। थोड़ी देर बाद शंकरी ने अनुभव किया कि वह जमीन पर बैठी है। वही गंगा का किनारा, वही सीढ़ियाँ हैं। बाबा गंगा में स्नान कर रहे हैं।

उसने बाबा से पूछा—''बाबा, अब तक हम लोग कहाँ थे?''

तैलंग स्वामी ने कहा—''निष्काम धाम में। तुम निष्पाप शिशु हो, इसलिए वहाँ पहुँच सकी थी।''

* * *

विजयकृष्ण गोस्वामी दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में कट्टर ब्राह्म समाजी थे। उनकी प्रखर विद्वत्ता देखकर तत्कालीन अनेक ब्राह्म समाजी नेता उन्हें भावी नेता के रूप में वरण कर रहे थे। पर उनका तन-मन ईश्वर की खोज में व्याकुल था। वे ऐसे संत या योगी से मुलाकात करना चाहते थे जिसने प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को देखा हो। अपनी इस खोज के सिलसिले में वे भारत के विभिन्न प्रान्तों का चक्कर काटते हुए काशी आये।

यहाँ आने पर उन्हें पता चला कि इस समय काशी में एकमात्र सिद्ध महापुरुष तैलंग स्वामी हैं जिन्हें सारा नगर बाबा विश्वनाथ की तरह पूजता है। वे मौन रहते हैं। कभी-कभी भक्तों के प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं।

तैलंग स्वामी की अधिक प्रशंसा सुनने के बाद एक दिन वे उनका दर्शन करने के लिए गये। गोस्वामीजी यह देखकर दंग रह गये कि जिस बालू पर पैदल चल कर यहाँ तक आने में उन्हें कई जगह आराम के लिए रुकना पड़ा, उसी बालू पर स्वामीजी नंगे बदन लेटे हुए हैं।

मार्ग में साथ चलने वालों की जबानी उन्होंने यह भी सुना कि स्वामीजी गंगा नदी पर भासमान रहते हैं और कभी-कभी डुबकी लगाकर अदृश्य हो जाते हैं। इन सभी घटनाओं का प्रभाव गोस्वामीजी पर पड़ा।

लगातार दो-तीन बार दर्शन करने के बाद एक दिन गोस्वामीजी ने चिरपरिचित प्रश्न किया—''महाराज, क्या आपने प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को देखा है?''

स्वामीजी ने कहा—''मैं अगर कहूँ कि मैंने देखा है, फिर सवाल उठाओगे कि वह कैसा है? तुम स्वयं ईश्वर को देख सकते हो। यह कार्य गुरु की सहायता से ही हो सकता है।''

गोस्वामीजी ने पूछा—''आखिर कौन से गुरु सहायक होंगे? शिक्षा गुरु या बीज मन्त्र देने वाले या और कोई ?''

स्वामीजी ने कहा—''पहले यह समझ लो कि गुरु क्या हैं? इस संसार में साधक के लिए गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। गुरु ही माता-पिता है। अगर कभी शिव नाराज हो जायँ तो गुरु उसकी रक्षा कर सकते हैं। यहीं वजह है कि हमारे यहाँ गुरु वन्दना में कहा गया है—

अखंडमंडलाकारं व्याप्तयेन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुदैव परमब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हैं। जो गुरु परमब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करते हैं, उस गुरु को प्रणाम करना चाहिए।

गुरु दो तरह के होते हैं। एक शिक्षा गुरु और दूसरे दीक्षा गुरु । जब तक गुरु से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक इस चराचर जगत् का ज्ञान नहीं होता। जिस शक्ति के द्वारा हमारी आत्मा की उन्नति होती है और हम मुक्ति की ओर अग्रसर होते हैं, वही शक्ति हमारे गुरु हैं।

इसी प्रकार के प्रवचन अक्सर तैलंग स्वामी गोस्वामीजी को देते रहे। योग्य पात्र को ज्ञान देना उचित होता है। लेकिन इसके पीछे एक और रहस्य था जिसका ज्ञान गोस्वामीजी को नहीं था। आम तौर पर स्वामीजी इस तरह की बातें सामान्य लोगों से नहीं करते थे।

उस दिन गोस्वामीजी के आते ही स्वामीजी ने कहा—''गोस्वामी, चलो आज कुछ दूर टहल आयें।''

आज तैलंग स्वामी क्यों एक ब्रह्म समाजी के साथ टहलने जा रहे हैं, इस रहस्य को कोई समझ नहीं सका। स्वयं गोस्वामीजी भी भाँप नहीं सके। गंगा किनारे-किनारे

टहलते हुए वरुणा-संगम तक चले आये। पास ही आदि केशव का मन्दिर है।

यहाँ आने पर तैलंग स्वामी ने कहा—''जाओ, नदी में स्नान कर आओ। आज मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।''

तैलंग स्वामी का आदेश सुनकर गोस्वामीजी भड़क उठे—''आप मुझे दीक्षा देंगे? आखिर क्यों?''

''मेरी इच्छा हुई है।''

''अगर आपकी इच्छा है तो मेरी इच्छा नहीं है। आप जैसे व्यक्ति से मैं भूलकर भी दीक्षा नहीं ले सकता जो खड़े-खड़े शिवलिंग पर लघुशंका करते हैं।''

तैलंग स्वामी ने कहा—''मैं तुम्हें दीक्षा देकर ही रहूँगा, इसीलिए यहाँ ले आया हूँ। यही वह समय है जब मुझे यह क्रिया करनी है। यद्यपि मैं तुम्हारा असली गुरु नही हूँ, बाद में असली गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे। मुझे जितना आदेश मिला है, उतना करना है। जाओ, स्नान कर आओ।''

गोस्वामी जी ने कहा—''मैं यह सब ढकोसला नहीं मानता। मुझे आपसे दीक्षा नहीं लेनी है।''

इतना सुनते ही तैलंग स्वामी ने गोस्वामी को धर दबोचा और नदी में ले जाकर जबरन नहलाया। सुनसान स्थान, वे इस जबरदस्ती के विरुद्ध चीखते रहे, पर वहाँ कौन सुनता। इसके बाद स्वामीजी ने दीक्षा-कार्य प्रारम्भ किया।

क्रिया समाप्त होते ही गोस्वामीजी की मन:स्थिति में अद्‌भुत परिवर्तन हुआ। स्वप्नद्रष्टा की भाँति उन्होंने स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी ने कहा—''यह तुम्हारी अन्तिम दीक्षा नहीं है। उपयुक्त समय आने पर तुम्हारे वास्तविक गुरु दीक्षा देंगे। वहीं तुम्हें बीज मंत्र देंगे तभी तुम अपने इष्ट का दर्शन कर सकोगे जिसके बारे में तुमने मुझसे प्रश्न किया था।''

''मेरे वास्तविक गुरु कहाँ हैं?''

''यह जानने से तुम्हें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि तुम लाख कोशिश करो तो भी उनके पास नहीं पहुँच सकते, वे स्वयं कभी अवश्य बुला सकते हैं। वे स्वयं भी समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे दीक्षा ग्रहण करने के बाद तुम्हारा साधक-जीवन प्रारंभ होगा।''

* * *

कहा जाता है कि एक बार काशी में परमहंस रामकृष्ण देव आये। यहाँ आने पर उनकी आध्यात्मिक शक्ति अनजाने दिशा की ओर जाने के लिए आकर्षित होने लगी। परमहंसजी समझ गये कि कोई दिव्य आत्मा उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रही है। मंत्रमुग्ध भाव से वे कई लोगों को अपने साथ लेकर चल पड़े।

गर्मी का मौसम, दोपहर का वक्त, प्रचण्ड लू चल रही थी। दशाश्वमेध घाट से

उत्तर की ओर परमहंसजी अपने भक्तों के साथ रवाना हो गये। बीच-बीच में जहाँ घाट नहीं थे, वहाँ तप्त बालू पर चलना पड़ रहा था। साथ के लोग पादत्राण पहने हुए थे। केवल परमहंसजी नंगे पाँव थे। साथ चलनेवाले लोगों में रानी रासमणि के दामाद मथुरानाथ विश्वास भी थे।

सहसा परमहंसजी के साथ चलनेवाले लोगों ने देखा कि सामने से एक नंग-धड़ंग बाबा दोनों हाथ फैलाये तेजी से इनकी ओर चला आ रहा है। पास आते ही उन्होंने परमहंसजी को अपने अंक में भर लिया जैसे युगों बाद दो घनिष्ठ मित्र आपस में मिलते हैं। इस मिलन को देखकर परमहंसजी के भक्तों को समझते देर नहीं लगी कि यह अपरिचित महात्मा निस्सन्देह उच्चस्तर के हैं वर्ना इस प्रवण्ड गर्मी में इतनी दूर परमहंसजी न आते।

परमहंसजी ने तुरन्त साथ आये लोगों से कहा—"अरे भाई, तुम लोग खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो। बाबा के शरीर में साक्षात् विश्वनाथ हैं। अपना अहोभाग्य समझो जो ऐसे दिव्यात्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इन्हें प्रणाम कर अपना जीवन सफल बनाओ। आज मेरी काशी यात्रा सफल हो गयी।"

देर तक दोनों संत आपस में मौन वार्ता करते रहे। यहाँ से वापस लौटते समय मथुरा बाबू से परमहंसजी ने कहा—"आज बहुत दिनों बाद पूर्ण कलायुक्त संत का मैंने दर्शन किया। आहा, कितने सुन्दर लक्षण हैं। माँ काली के साक्षात् सेवक हैं न। माँ जगदम्बा की जिस पर कृपा होगी, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं सतायेगी।"

मथुरा बाबू ने चकित दृष्टि से पूछा—"तैलंग स्वामी काली के भक्त हैं, यह आपको कैसे मालूम हुआ? आप तो उनके आश्रम में भी नहीं गये।"

परमहंसजी ने कहा—"माँ काली के भक्त में जितने लक्षण होते हैं, वह सब स्वामीजी के शरीर पर मैंने देखा। उन लक्षणों को देखकर ही तो विश्वास हुआ। इन आँखों से कुछ भी छिपा नहीं रहता। बाबा असाधारण योगी हैं। इस बात का ज्ञान गले मिलते हो गया। पिछले तीन सौ वर्षों में इस तरह का योगी पैदा ही नहीं हुआ। इन्हें अपने शरीर का कोई ज्ञान नहीं। जिस बालू पर तुम लोग जूते पहनकर चलने में कष्ट अनुभव कर रहे थे, उस पर वे लेटे हुए थे। केवल इसी से उनके असाधारणत्व पर प्रकाश पड़ता है।"

इस घटना के बाद अक्सर परमहंसजी तैलंग स्वामी के पास आते रहे। दोनों व्यक्तियों में साधना के बारे में विचार-विमर्श होता था जिसे उपस्थित भक्त-मंडली नहीं समझ पाती थी।

एक दिन विचित्र घटना हो गयी। लोगों ने देखा कि परमहंसजी कुछ लोगों को लेकर आ रहे हैं। सभी के हाथ में बरतन हैं। परमहंसजी पास आकर बोले—"आज अपने विश्वनाथ को अपने हाथ से खीर खिलाऊँगा। देखूँ, मेरे बाबा कितना खाते हैं।"

परमहंसजी की बातें सुनकर तैलंग स्वामी मुस्करा उठे। वे पालथी मारकर बैठ

गये। इधर दनादन कटोरी में खीर उड़ेल-उड़ेलकर परमहंसजी तैलंग स्वामी को खिलाने लगे। देखते ही देखते बीस सेर खीर तैलंग स्वामी ने उदरस्थ कर ली।

उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर चकित रह गये। जो लोग तैलंग स्वामी के निकट रहते थे, उन्हें यह ज्ञात था कि स्वामीजी श्रद्धा और प्रेम से दिये गये भोजन को कभी अस्वीकार नहीं करते। कभी-कभी एक-दो सप्ताह भोजन नहीं करते और कभी केवल जल और बेलपत्र ग्रहण करके रह जाते हैं। बीस सेर खीर एक आसन में बैठकर खाना सभी के लिए असाधारण घटना थी।

* * *

तैलंग स्वामी के समकालीन भास्करानन्द और योगीराज श्यामाचरण लाहिड़ी थे। स्वामी भास्करानन्दजी के यहाँ कभी-कभी स्वामीजी चले जाते थे। उन दिनों स्वामी भास्करानन्द दुर्गाकुण्ड स्थित एक कोठी में रहते थे। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ थे, इसलिए तैलंग स्वामी उनके निवासस्थान पर नहीं जाते थे।

योगियों में एक विशेषता यह होती है कि वे अपने योग-बल से दूरस्थ योगियों को पहचान लेते हैं। तैलंग स्वामी के बारे में लाहिड़ी महाशय को जानकारी प्राप्त हो गयी थी। अपने इष्ट की प्रेरणा से वे एक दिन तैलंग स्वामी का दर्शन करने के लिए पंचगंगा घाट पर आये।

उस समय तैलंग स्वामी अपने भक्तों से घिरे घाट पर बैठे थे। इन्हें दूर से आते देख आकुल भाव से उनकी ओर दोनों हाथ फैलाते हुए चल पड़े। पास जाकर उन्होंने श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को अपने अंक में भर लिया। लगा जैसे राम-भरत का मिलन हो रहा हो। दोनों ही व्यक्ति एक दूसरे को मूकभाव से देखते रहे।

आसपास खड़े व्यक्ति चकित दृष्टि से दो योगियों का आलिंगन देख रहे थे। एक गृहस्थ योगी और दूसरा सर्वत्यागी। तैलंग स्वामी के भक्तों का विश्वास था कि उनके बाबा से बड़ा अन्य कोई योगी पुरुष इस संसार में नहीं है। यहाँ जो आता है, उसकी कामना बाबा पूर्ण कर देते हैं। कपटी और घमंडी लोगों की बाबा परवाह नहीं करते। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि एक गृहस्थ बंगाली को बाबा इतना सम्मान क्यों दे रहे हैं?

दोनों योगी घाट किनारे चुपचाप बैठे रहे। शायद वे एक दूसरे के प्रेम से गद्गद हो उठे थे या मूकभाव से एक दूसरे से प्रश्न कर रहे थे। कुछ देर रुकने के बाद श्यामाचरण लाहिड़ी ने बाबा को प्रणाम किया और फिर वापस चले गये।

उनके चले जाने के बाद एक शिष्य ने प्रश्न किया—''महाराज, अपराध क्षमा करें। मन में एक शंका उत्पन्न हुई है, इसलिए पूछ रहा हूँ। आप सर्वत्यागी तथा महान् योगी पुरुष हैं और यह बंगाली बाबू जो धोती-कुर्ता पहनकर आया था, वे सामान्य गृहस्थ हैं। बाल-बच्चे वाले हैं। आपने उन्हें इतना सम्मान क्यों दिया?''

तैलंग स्वामी ने मुस्कराकर कहा—''तुम्हारी शंका ठीक है। बंगाली बाबू गृहस्थ योगी हैं। तुम लोगों के पास वह दृष्टि नहीं है जिसके माध्यम से योगी और भोगी का अन्तर समझ सको। यह व्यक्ति साधारण नहीं, असाधारण योगी पुरुष है। पूर्व जन्म की साधना के कारण इस जन्म में इन्हें गृहस्थ घर में जन्म लेना पड़ा है। यही इनका अन्तिम जीवन है। इसके बाद पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा। तुम लोग देख नहीं सके, इनके अंग-अंग से योग के लक्षण प्रकट हो रहे थे। इनके आगमन की पूर्व सूचना मुझे मिल गयी थी। तुम लोगों को चाहिए कि ऐसे योगी के यहाँ जाकर उनका दर्शन करो।''

श्यामाचरण लाहिड़ी को काशी के निवासी बहुत कम जानते थे, लेकिन तैलंग स्वामी की प्रशंसा के कारण उनकी ख्याति फैल गयी। जिस साधक की प्रशंसा जीवन्त विश्वनाथ तैलंग स्वामी करते हैं, वह व्यक्ति निस्सन्देह असाधारण है।

* * *

एक देशी नरेश सपरिवार काशी-दर्शन करने आये। उन दिनों राजघराने में पर्दे की कठोर प्रथा थी। गंगा किनारे स्थित एक भवन में यह राजपरिवार आकर ठहरा। काशी आने का अर्थ है—गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त करना। रानी साहिबा सामान्य महिलाओं की तरह घाट पर स्नान नहीं कर सकती थी। ब्रिटिश शासन काल में देशी नरेशों का काफी दबदबा था। राजभवन से घाट किनारे तक पर्दा लगाया गया ताकि रानी साहिबा को कोई देख न सके। पर्दे के दोनों ओर पहरेदारों की कड़ी व्यवस्था की गयी। सामान्य नागरिकों में कोई शरारत न कर सके।

एक दिन राजा-रानी स्नान करने के बाद जब अपने भवन की ओर वापस लौट रहे थे तब एक अद्‌भुत दृश्य देखकर चौंक उठे। उनके सामने पर्दे के भीतर एक नंग-धड़ंग व्यक्ति खड़ा है।

राजा की भौंहें तन गयीं। इतनी कड़ी व्यवस्था के रहते यह व्यक्ति भीतर कैसे आ गया? क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। रानी तथा उनके साथ आयीं दासियों की हालत और भी खराब हो गयी।

राजा ने कड़ककर पूछा—''कौन हो तुम? भीतर कैसे आ गये?''

उस व्यक्ति ने कोई जवाब नहीं दिया। यह देखकर राजा उबल पड़ा। उसने 'संतरी' कहकर चीखा।

राजा की चीख सुनते ही कई पहरेदार भीतर की ओर आये। रानी तथा उनकी दासियाँ चुपचाप भवन के भीतर चली गयीं।

राजा ने नंगे व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए पूछा—''यह आदमी भीतर कैसे आ गया? जवाब दो वर्ना अभी तुम लोगों को गोली मार दूँगा।''

पहरेदार क्या जवाब देते? वे पर्दे के बाहर पहरा दे रहे थे। इनमें से किसी ने इस बाबा को पर्दे के भीतर जाते नहीं देखा था। सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

राजा को समझते देर नहीं लगी कि पहरेदारों की नजर बचाकर यह आदमी भीतर आ गया है। इसकी नीयत ठीक नहीं है।

तभी राजा ने कहा—"गिरफ्तार कर लो इसे और कोठी में ले चलो। वहीं इससे पूछा जायगा।"

कोठी के भीतर आकर राजा ने पुनः वही सवाल किया। वह व्यक्ति चुपचाप मौन खड़ा रहा। राजा भीतर ही भीतर क्रोध से फूलने लगा।

एकाएक एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ते हुए कहा—"अन्नदाता, गुस्ताखी माफ करें। इस महात्मा को जल्द छोड़ दिया जाय। यह बड़े अलौकिक महात्मा हैं। सारा नगर इनका सम्मान करता है। आप तैलंग स्वामीजी महाराज हैं।"

तैलंग स्वामी का नाम सुनते ही राजा नरम पड़ गये। उन्हें लगा जैसे इस नाम को वे कहीं सुन चुके हैं। पर कहाँ, यह स्मरण नहीं कर पा रहे थे। लेकिन उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि इतने बड़े संत चुपके से कैसे औरतों के बीच और वह भी इस रूप में आ गये? क्या यह संत है या कोई पागल।

चूँकि यह स्थल राजा का अपना राज्य नहीं था। फिर यहाँ ब्रिटिश हुकूमत है। बेकार झंझट लेने से क्या लाभ? राजा ने कहा—"ठीक है। इसे कोठी के बाहर निकाल दो, पहरा और कड़ा कर दो। अगर आगे ऐसी घटना हुई तो तुम सभी को निकाल दूँगा।"

उस दिन कोठी के भीतर इस घटना की चर्चा हर कोई करता रहा। कोठी में जो लोग काम कर रहे थे, उनमें कुछ स्थानीय व्यक्ति भी थे। वे तैलंग स्वामी को पहचान चुके थे। उन्हें इस बात का भय सताने लगा कि कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय।

उसी दिन आधी रात के समय अचानक राजा साहब की चीख पूरी कोठी में गूँज उठी। सभी लोग जाग गये। लोग राजा साहब के कमरे में आये तो देखा—वे बेहोश पड़े हैं। लोग उनकी सेवा में लग गये। पूरी कोठी में कोहराम मच गया।

राजा साहब के परिवार के लोगों ने इस हादसे के बारे में प्रश्न किये, पर कोई माकूल जवाब नहीं दे सका। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि निस्सन्देह कोई भयंकर दुर्घटना हो गयी है जिसके कारण राजा साहब बेहोश हो गये हैं।

दूसरे दिन होश में आते ही राजा ने पहरेदारों को बुलाकर कहा—"तुम लोग जल्द से जल्द यह पता लगाओ कि तैलंग स्वामी का स्थान कहाँ है और इस वक्त वे कहाँ दर्शन दे सकते हैं?"

आज्ञा पाते ही प्यादे नगर में तैलंग स्वामी की खोज में चल पड़े। उन्हें अधिक दूर जाना नहीं पड़ा। नगरवासियों से पता चला कि स्वामीजी पंचगंगा घाट पर उपस्थित हैं।

यह समाचार पाते ही राजा साहब दलबल सहित स्वामीजी के निकट आये।

उनके चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा—''अपराध क्षमा करे भगवान्, अनजाने अपराध हो गया।''

स्वामीजी ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

*   *   *

बंगाल के श्रीरामपुर निवासी जयगोपाल काशी में रहते थे। स्वामीजी के प्रति उनकी असीम भक्ति थी। नित्य शाम को सत्संग के उद्देश्य से आते थे। जब भी आते थे तब कभी दूध कभी फल या मिष्ठान्न लेकर आते थे। स्वामीजी को यह समझते देर नहीं लगी कि जयगोपाल किसी कामना के उद्देश्य से नहीं आता है बल्कि साधु-संतों के प्रति भक्ति होने के कारण आता है।

एक दिन जब वह आया तब उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी। उसने स्वामीजी से कहा—''पता नहीं क्यों आज सुबह से मेरा दिल धड़क रहा है। इस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए आज सबेरे आपके पास आ गया।''

तैलंग स्वामी ने ध्यान लगाया। कुछ देर बाद आँखें खोलते हुए बोले—''ठीक है। शाम को आना तब सारी बातें बता दूँगा।''

शाम को जयगोपाल जब बाबा की सेवा में उपस्थित हुए तब उन्होंने कहा—''तुम्हारे पिता अस्वस्थ हो गये हैं। आज सुबह तुम्हारी याद कर रहे थे। अब उनका निधन हो गया है।''

दूसरे दिन जयगोपाल जब अपनी जन्मभूमि श्रीरामपुर जाने की तैयारी कर रहे थे, ठीक उसी समय उनके पास पिता के निधन का तार आया।

*   *   *

सन् १८७४ ई० की घटना है।

पूज्य पृथ्वी गिरि महाराज के शिष्य स्वामी विद्यानन्द गिरिजी काशी आये और राजघाट स्थित एक मठ में ठहरे। मठ के लोगों ने कहा—''महाराज, इधर काफी दिनों के बाद आपका काशी में आगमन हुआ है। अब यहाँ अनेक मन्दिर बन गये हैं। अनेक संत-योगी पुरुष आजकल यहाँ निवास कर रहे हैं। इन सभी का दर्शन कर लीजिए। पता नहीं, फिर कब आपका आगमन होगा।''

स्वामीजी ने कहा—''काशी के सभी मन्दिरों के दर्शन मैं कर चुका हूँ। इस बार आने का एकमात्र उद्देश्य है—महात्मा तैलंग स्वामी के दर्शन। उनके अलावा मेरे लिए काशी में कुछ भी दर्शनीय नहीं है।''

एक दिन स्वामी विद्यानन्द अकेले तैलंग स्वामीजी के आश्रम में आये। इन्हें देखते ही तैलंग स्वामी ने अपने अंक में भर लिया। उपस्थित लोग यह दृश्य देखते ही रहे कि अचानक दोनों स्वामी शून्य या हवा में, न जाने कहाँ गायब हो गये।

चकित होकर लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इस प्रकार के दृश्य इसके पूर्व किसी ने नहीं देखा था। लगभग आधे घण्टे बाद स्वामीजी ठीक उसी स्थान पर प्रकट हुए जहाँ से अदृश्य हो गये थे। लेकिन इस बार वे अकेले थे। स्वामी विद्यानन्द का कहीं पता नहीं था।

कुछ लोग कौतूहलवश राजघाट स्थित उक्त मठ में गये जहाँ स्वामी विद्यानन्दजी ठहरे हुए थे। लोगों ने देखा—वहाँ स्वामीजी बैठे लोगों से वार्तालाप कर रहे हैं।

तैलंग स्वामी के बारे में कहा जाता है कि वे जल्द किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। भारत के अधिकांश संत अपने को अमर बनाये रखने के लिए मठ, आश्रम, भवन और मन्दिर की स्थापना करते हैं। अपने नाम का सम्प्रदाय स्थापित करते हैं। स्वामीजी ने इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया। शिष्यों की बड़ी फौज वे इसलिए नहीं बनाना चाहते थे कि अधिकांश शिष्य गुरु के बताये मार्ग पर नहीं चलना चाहते थे। अधिकतर लोग अपने स्वार्थ के लिए शिष्य बनने चले आते हैं। ऐसे शिष्यों के समस्त पापों का भार गुरु को वहन करना पड़ता है। अगर शिष्य गुरु के बताये जप-साधना को अधूरा रखता है तो उसे गुरु को ही पूर्ण करना पड़ता है।

प्राचीनकाल से अब तक सिद्ध संत शिष्य बनाने के पहले कठोर परीक्षा लेते आये हैं। जो लोग गुरु के बताये मार्ग का अवलम्बन करते हुए धैर्य के साथ साधना के मार्ग पर बढ़ते हैं, केवल वही परमार्थ प्राप्त करते हैं।

महान्-साधक का शिष्य बनने के लिए कितने धैर्य, लगन, निष्ठा और भक्ति की जरूरत होती है, गुरु-कृपा पाने के लिए कितनी मुसीबतें सहनी पड़ती हैं, इसका उदाहरण मुखर्जी बाबू के जीवन से प्राप्त होता है।

तैलंग स्वामी की यौगिक चर्चाओं को सुनकर उमाचरणजी काशी चले आये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्व जन्म के फल का प्रभाव उन्हें यहाँ तक ले आया था। दरअसल वे शिष्य बनने की कामना लेकर नहीं आये थे, वे यह जानने आये थे कि पुनर्जन्म क्या होता है। कुलीन ब्राह्मण होने के कारण उनमें ईश्वर और देव-द्विजों के प्रति भक्ति थी। धार्मिक बातों पर विश्वास करते थे। उनका ख्याल था कि सिद्ध पुरुष अपने ज्ञान के माध्यम से इस सत्य को प्रकट कर सकते हैं।

काशी आकर वे गंगा-स्नान करने गये। इसके पश्चात् तैलंग स्वामी के आश्रम का पता लगाकर वहाँ चले आये। स्वामीजी के पास न जाकर उमाचरणजी एक ओर खड़े हो गये। कुछ देर बाद तैलंग स्वामी की नजर इन पर पड़ी। स्वामीजी ने उँगली के इशारे से इन्हें सूचित किया कि आश्रम के बाहर चले जाओ।

उमाचरणजी की इच्छा थी कि कुछ देर और रुक जायें, पर इन्हें न जाते देख स्वामीजी के सेवक मंगलदास ठाकुर ने कहा—"स्वामीजी का आदेश हुआ है कि आप तुरन्त आश्रम के बाहर चले जायें।"

उसी दिन तीसरे पहर पुनः उमाचरणजी गये और सबेरे की तरह एक ओर खड़े

हो गये। उस समय भी मंगलदास ने इन्हें बाहर चले जाने का आदेश दिया। लाचारी में उमाचरणजी खिन्न मन से चले आये। पुनः दूसरे दिन इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। तीसरे दिन उमाचरणजी ने सोचा कि आज मैं नहीं जाऊँगा। इस निश्चय के बाद आदेश देने पर भी जब वे नहीं गये तब वहाँ दूध दूहनेवाले अहीर सेवक को आदेश दिया गया कि इस बंगाली बाबू को धक्के देकर बाहर निकाल दो।

आदेश का तुरत पालन हुआ। इस अपमान से उमाचरण इतने क्षुब्ध हो उठे कि घर आकर देर तक रोते रहे। एक संत इस तरह अपने एक भक्त के प्रति पेश आ सकता है, इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी। वे वहाँ किसी का कोई नुकसान नहीं कर रहे थे। चुपचाप खड़े होकर संत का दर्शन कर रहे थे। आखिर स्वामीजी ने मेरा इस प्रकार अपमान क्यों किया?

इतनी पीड़ा होने पर भी उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की। एक अज्ञात प्रेरणा से वशीभूत होकर वे नाना प्रकार की बातें सोचते रहे। उन्होंने यह भी सोचा कि अगर स्वामीजी के उन सेवकों को घूस में कुछ रकम दे दूँ तो शायद वे लोग मेरे साथ अभद्र व्यवहार नहीं करेंगे। मुमकिन है कि मेरी सिफारिश कर दें। राजा के पास पहुँचने के लिए द्वारपाल की पूजा अनिवार्य है।

इस प्रकार की बातें सोचते हुए वे चौथे दिन स्वामीजी के आश्रम में आये। स्वामीजी के प्रमुख शिष्य मंगलदास को चार और अहीर सेवक को दो रुपये घूस में देकर अपना उद्देश्य बताया।

दोनों व्यक्ति अयाचित धन पाकर प्रसन्न हो उठे, पर मंगलदास ने स्पष्ट किया—''अगर बाबा की इच्छा न हुई तो तुम यहाँ नहीं रह सकते। हमें बाबा की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा। यह ठीक है कि तब सख्ती से पेश नहीं आयेंगे।''

अहीर सेवक ने कहा—''आपके आते ही मैं तुरत रफूचक्कर हो जाऊँगा। इस प्रकार बाबा का आदेश मुझ पर लागू नहीं होगा।''

दोनों व्यक्तियों से अभय-दान पाने के कारण उमाचरण का साहस बढ़ गया। उन्हें इस बात पर भरोसा हो गया कि अब ये दोनों मेरा अपमान नहीं करेंगे। आज चाहे जो कुछ हो जाय, पर अपने मन की बात बाबा को सुनाकर ही दम लूँगा। इस प्रकार की कल्पना करते हुए वे मठ के भीतर आकर खड़े हुए।

ठीक इसी समय एक विचित्र घटना हुई। कलकत्ता से दो बंगाली बाबू बाबा का दर्शन करने आये। बाबा को प्रणाम करने के बाद दोनों चुपचाप खड़े हो गये।

अपनी आदत के अनुसार बाबा ने इन लोगों को इशारे से बाहर चले जाने को कहा। इनमें एक व्यक्ति समझदार था। वह बाबा का उद्देश्य समझकर बाहर की ओर चल पड़ा। दूसरा व्यक्ति जरा क्रोधी प्रकृति का था। वह सेवकों से उलझ गया। उसने कहा—''यह कौन-सा कायदा है जो हमें भगाया जा रहा है? हम तो इतनी दूर बाबा का दर्शन करने, इनसे उपदेश लेने आये हैं और यहाँ हमें जबरन भगाया जा रहा है।

यहाँ हम मेहमानी करने नहीं आये हैं। कुछ देर रुकने के बाद स्वतः चले जायेंगे।''

इस बाबू की बातें सुनकर बाबा अप्रसन्न हो उठे। उन्होंने अहीर सेवक को इशारे से सूचित किया कि इसे तुरत हटाओ। आजकल बाबा मौन धारण किये रहते हैं। दूसरों से बातें करने के लिए दीवारों पर लिखे श्लोकों के द्वारा अपने विचार प्रकट करते हैं।

बाबा की आज्ञा पाते ही अहीर सेवक ने उक्त बंगाली बाबू के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—''बाबा का दर्शन आप कर चुके। अब तुरत चलते-फिरते नजर आइये। बखेड़ा करेंगे तो उठाकर बाहर फेंक दूँगा।''

सेवक की बातें सुनकर बंगाली बाबू नाराज हो उठे। बोले—''इस प्रकार अपमान करने पर मैं नहीं जाऊँगा। यह कोई सभ्यता है?''

तभी बाबा ने इशारे से बंगाली बाबू को ठहरने को कहा और मंगलदास ठाकुर को बुलाया। दीवारों पर लिखे संस्कृत श्लोकों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने मंगलदास को लिखने को कहा। जब लेख पूरा हो गया तब उसे सुनाने की आज्ञा दी गयी।

मंगलदास ने उस कागज को पढ़ते हुए कहा—''अट्ठारह रुपये का जूता बाहर छोड़कर मुझे देखने आये हो? अगर कोई उसे चोरी कर ले जाय तो नंगे पैर वापस जाने में कष्ट होगा—यही बात तुम अपने मन में सोच रहे हो। अर्थात् मुझे नहीं देख रहे हो, बल्कि तुम्हारा मन अपने जूते की ओर है। क्या यह बात सच नहीं है? झूठ कहने की जरूरत नहीं। अब तुम जल्द से जल्द बाहर चले जाओ और अपना जूता पहनकर घर वापस जाओ। अभी तक तुम्हारा वह जूता वहाँ मौजूद है।''

मंगलदास के वक्तव्य को सुनकर वहाँ उस वक्त जितने लोग मौजूद थे, सभी स्तब्ध रह गये। बाबा कैसे इस बाबू के मन की बात समझ गये?

उमाचरण मुखर्जी ने धीरे से उक्त बंगाली बाबू से पूछा—''क्या यह बात सही है कि यहाँ आने के बाद आप अपने जूते के बारे में सोच रहे थे?''

बंगाली बाबू बाबा के कथन से अप्रतिभ हो गये थे। लज्जित भाव से उन्होंने कहा—''जी हाँ, महाशय। बात सही है। मैं दर्शन करते समय अपने जूते के बारे में ही सोच रहा था। कल ही खरीदा है। पूरे अट्ठारह रुपये का है। अब तक स्वामीजी के प्रति मेरी श्रद्धा जागृत नहीं हुई थी, अब मैं इन्हें नहीं छोड़ूँगा, भले ही कष्ट उठाना पड़े। जो व्यक्ति त्रिकालदर्शी है, उसके चरणों की धूल पाना सौभाग्य की बात हैं।''

बंगाली बाबू मन ही मन अपनी मूर्खता के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। लेकिन तीर हाथ से निकल चुका था। इस भूल के लिए क्या करूँ, यही सोच रहे थे कि सहसा पुनः बाबा ने आदेश दिया—''तुम दोनों यहाँ से चले जाओ।''

दोनों चुपचाप चले गये।

इन दोनों के जाने के बाद बाबा ने उमाचरण को भी जाने का आदेश दिया। उदास होकर वे भी चले गये। लेकिन इससे वे पूरी तरह मायूस नहीं हुए । नित्य नियम

से बाबा का दर्शन करने आते रहे और बराबर चले जाने का आदेश पाकर वापस चले जाते थे।

तेरहवें दिन जब वे बाबा के सामने उपस्थित हुए तब अचानक वे फूट-फूटकर रोने लगे। अपने को सम्हालना उनके लिए कठिन हो गया।

इन्हें रोते देखकर बाबा ने दयार्द्र होकर बैठ जाने का इशारा किया। यह आदेश पाते ही उमाचरण का सम्पूर्ण आवेग आँसुओं में बदल गया। वे तैलंग स्वामी के चरणों पर मस्तक रखकर देर तक रोते रहे।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने मंगलदास को इशारे से कहा कि आज इन्हें जाने को कह दो। कल सबेरे आने को कह दो।

स्वामीजी का यह आदेश पाते ही उमाचरणजी प्रसन्नता से विभोर हो उठे। आज बहुत दिनों बाद इन चरणों के दर्शन की आज्ञा प्राप्त हुई है। घर आकर वे बड़ी बेसब्री के साथ दिन गुजरने की प्रतीक्षा करने लगे। काशी आने के बाद यह पहली रात थी जब उन्हें गहरी नींद आयी।

दूसरे दिन गंगा-स्नान के बाद स्वामीजी के पास पहुँचे। बाबा के चरणरज को सिर से लगाया।

बाबा ने मंगलदास को इशारे से बुलाकर एक पत्थर, एक टुकड़ा गेरू और एक लोटा पानी लाने का आदेश दिया। सारी सामग्री उमाचरण के निकट रखने के बाद मंगलदास ने कहा—"बाबा का आदेश है कि आप यहाँ बैठकर गेरू घिसें।"

दोपहर के वक्त बाबा ने उमाचरण को इशारे से कहा कि अब घिसना बन्द कर दो। घर चले जाओ। घर पर भोजन-विश्राम के बाद शाम को आना।

शाम को आने पर उमाचरण ने देखा कि सबेरे जितना गेरू घिसकर रख गये थे, उस गेरू से इस वक्त एक ब्रह्मचारी दीवारों पर श्लोक लिख रहा है। शाम के वक्त भी इन्हें गेरू घिसने का आदेश दिया गया।

दूसरे दिन भी यही कार्य दिया गया।

आदेश का पालन करना ही था। जो हाथ ऑफिस में कलम चलाते थे, उन्हें यहाँ गेरू घिसना पड़ रहा था। थोड़ी देर बाद घिसने की गति मन्द पड़ गयी। दोनों हाथों की कलाइयाँ दर्द करने लगीं।

यह दृश्य देखकर बाबा ने इशारे से कहा कि जरा जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ।

यह क्रम पन्द्रह दिनों तक चलता रहा। उमाचरण मन ही मन रोते रहे कि किस मुसीबत में फँस गया। हाथों की दशा शोचनीय हो गयी थी। भोजन के वक्त कौर मुँह तक ले जाने में कठिनाई का अनुभव करते थे। आकृति पर मायूसी छा गयी। इधर वे जितना घिसते, वह सब ब्रह्मचारीजी मठ की दीवारों पर लिखकर समाप्त कर देते थे।

इनकी यह हालत देखकर बाबा ने एक दिन मंगलदास से पुछवाया कि बंगाली बाबू हिन्दी पढ़ना जानते हैं या नहीं।

उमाचरण ने कहा—''हाँ, बिहार में रहने के कारण उन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान है।''

स्वामीजी ने अपने कम्बल के नीचे से एक बड़ा-सा चोंगा निकाला। चोंगे के भीतर से कुछ कागज निकालकर मंगलदास को देते हुए कहा कि इन कागजों में हिन्दी लिपि में काफी श्लोक लिखे हैं। इन श्लोकों का बंगला में अनुवाद करने को कह दो।

अपने लिए यह कार्य पाकर उमाचरणजी को बड़ा संतोष मिला। जान बची लाखों पाये। कम से कम गेरू घिसने से मुक्ति तो मिली। अनुवाद करने के कार्य में उन्हें पर्याप्त आनन्द मिला।

लगातार कई दिनों तक श्रम करने के बाद अनुवाद-कार्य पूर्ण हो गया। बाबा ने उनकी जबानी सुना। इस प्रकार धीरे-धीरे वे बाबा के समीप आते गये।

एक दिन एक अद्‌भुत घटना हो गयी। उमाचरण को स्वप्न में विश्वास नहीं था कि सहसा बाबा की ऐसी कृपा हो जायगी। यह ठीक है कि वे इसी आशा को लेकर बाबा के पास आये थे।

उस दिन शाम के समय जब वे बाबा के निकट गये तब बाबा ने बड़े स्नेह के साथ स्वागत किया। थोड़ी देर बाद उन्हें अपने साथ लेकर बगल वाले कमरे की ओर जाते हुए मंगलदास से इशारे से कहा कि इस कमरे में कोई आने न पाये। यहाँ बैठकर तुम देखते रहना।

मंगलदास को अवाक् होते देख मुखर्जी महाशय दंग रह गये। इस कमरे में आकर मुखर्जी महाशय ने देखा—यहाँ महादेव और काली देवी की मूर्ति है। फर्श पर एक आसन बिछा है और पास ही एक दीप चल रहा है।

उमाचरण को यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि इस कमरे में आते ही स्वामीजी ने अपना मौनव्रत भंग कर दिया। जब से वे स्वामीजी के पास आने लगे तब से एक दिन के लिए भी उनके श्रीमुख से एक शब्द नहीं निकला। सारा कार्य इशारे से या दीवार पर लिखे श्लोकों के जरिये करते थे।

कमरे में आकर आसन पर स्वामीजी बैठ गये और मुखर्जी को सामने बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने कहा—''तुम जिस प्रश्न को लेकर मेरे पास आये हो, उसके प्रति इतनी शंका क्यों है? त्रिकालदर्शी, आत्मतत्त्वज्ञ महर्षि, देवर्षि, पुण्यात्मा, सिद्ध, महात्मा आदि अपने तपोबल से इसका निर्णय कर गये हैं। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका नहीं करना चाहिए। उन लोगों ने जो कुछ कहा है, सारी बातें सत्य हैं। जीव की अपनी समस्त दुष्कृति, सुकृति के अनुसार सुख-दुःख भोगने के लिए जन्म लेना पड़ता है। अगर मनुष्य थोड़ा प्रयत्न करे तो वह अपने पूर्व, वर्तमान और भविष्य के जन्म के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। अफसोस तो इस बात का है कि इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करता।''

थोड़ी देर चुप रहने के बाद स्वामीजी ने पुनः कहना प्रारंभ किया—जब इस प्रश्न की जानकारी के लिए तुम इतनी दूर और मेरे पास आये हो तब तुम्हें सारी बातें

बता देना उचित होगा। तुम्हारी दिव्य चक्षु से दिखा दूँगा। जब मनुष्य का जन्म होता है तब उसका गठन पूर्व जीवन की कृतियों को लेकर होता है। अगर इस जीवन में वह विद्वान् है तो अपने पूर्व जीवन में जरूर विद्वान् रहा होगा। इस जीवन में अच्छा वादक या धार्मिक है तो अपने पूर्व जीवन में भी वह वादक या धार्मिक रहा होगा। अगर इस जीवन में कोई चोर है तो वह अपने पूर्व जीवन में साधु कदापि नहीं था। अगर पुनर्जन्म न होता तो हम भगवान् को सर्वशक्तिमान कैसे मानते? अब तुम यह विचार करके देखो कि इस जन्म में तुम्हारी आकृति, विद्या, बुद्धि, स्वभाव आदि किस प्रकार के हैं तब तुम्हें यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि तुम अपने पूर्व जन्म में किस स्वभाव के थे। वर्तमान जीवन की भलाई-बुराई से तुम स्वत: अच्छी तरह परिचित हो। यह मानी हुई बात है कि भला करने पर भला और बुरा करने पर बुरा होता है। सच पूछो तो पूर्व जन्म में सुकर्म करने के कारण इस जन्म में तुम्हारा जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ है। अगर इस जन्म में ब्राह्मणोचित कार्य करते रहोगे तो आगे उन्नति करोगे। यदि पाप-कार्य करोगे तो चाण्डाल के यहाँ जन्म लोगे। अब मैं इस बारे में अधिक बातें न कहकर तुम्हारे पूर्व जन्म के बारे में बता रहा हूँ।''

इतना कहने के पश्चात् स्वामीजी उमाचरण मुखर्जी के पूर्व जीवन के बारे में बताने लगे। उन्होंने कहा—''पहले इस जन्म के बारे में बता रहा हूँ। तुम्हारा नाम अमुक मुखर्जी है। तुम्हारे पिता का नाम अमुक मुखर्जी है। तुम अमुक गाँव के निवासी हो; तुम्हारे मकान में इतनी कोठरियाँ हैं। मकान के उत्तर एक तालाब है जिसके किनारे अमुक-अमुक वृक्ष हैं। तुम्हारे गाँववाले भवन में अमुक-अमुक व्यक्ति रहते हैं।''

स्वामीजी एक के बाद एक करके मुखर्जी बाबू का वर्तमान इतिहास कहते गये। सारी बातें सुनने पर वे चकित रह गये। स्वामीजी के वर्णन से यह साफ झलक रहा था जैसे वे यहाँ बैठे-बैठे सारा दृश्य देख रहे हैं। आश्चर्य की बात यह है कि काशी आने के बाद से उमाचरणजी ने अपने बारे में किसी को आज तक कुछ नहीं बताया है।

स्वामीजी ने आगे कहा—''अब पिछले जन्म के बारे में सुनो। पिछले जन्म में तुम ब्राह्मण थे। अमुक गाँव के अमुक नाम के जमींदार थे। अपने उस जीवन में धार्मिक और शिष्टाचारी थे। तुम जिस कमरे में रहते थे, उसका दरवाजा दक्षिण दिशा की ओर है। उस कमरे के दरवाजे के ऊपर तुमने अपने हाथ से संस्कृत के तीन श्लोक लिखे थे जो आज भी मौजूद हैं। मन में आये तो उस गाँव में जाकर देख आना।''

उमाचरणजी को लगा जैसे आज उनका जीवन सफल हो गया है। बाबा के पास अगर न आते तो जीवन का यह रहस्य ज्ञात न होता। यह एक प्रकार से अच्छा हुआ जो बाबा की फटकार और उनकी परीक्षा से न घबराकर बराबर सेवा में लगे रहे। सच्चे मन से श्रद्धा करने के कारण आज उन्हें यह सारी बातें मालूम हो रही हैं।

स्वामीजी कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—''अब तुम्हें कुछ अद्भुत बातें बता रहा हूँ। अमुक गाँव में अमुक नाम का एक व्यक्ति रहता है जो तुम्हें बहुत प्यार करता

है और स्वयं तुम भी उन्हें आदर देते हो। जानते हो ऐसा क्यों हो रहा है? वह व्यक्ति पूर्व जन्म में तुम्हारे पिता थे। पिता-पुत्र का सम्बन्ध होने के कारण यह सौहार्द है। चूँकि इस जन्म में तुम दोनों अपना शरीर बदल चुके हो, इसलिए एक दूसरे को पहचान नहीं पा रहे हो। तुम्हारे एक चाचा मुंगेर में हैं, उनका नाम अमुक है। वह भी तुम्हें स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। इसी आकर्षण के कारण नित्य तुम्हारे यहाँ रात के ९-१० बजे तक अड्डेबाजी करते हैं। तुम दोनों को एक दूसरे को बिना देखे शांति नहीं मिलती। इसका कारण पूर्व जन्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस जन्म में शरीर-परिवर्तन के कारण तुम लोग एक दूसरे को नहीं पहचान पा रहे हो।''

स्वामीजी ने उमाचरणजी के बारे में जितनी बातें बतायीं, वह सब जाँच करने पर सही प्रमाणित हुईं। तैलंग स्वामी द्वारा बताये उस भवन की तलाश में मुखर्जी बाबू गये जहाँ उन्होंने अपने पूर्व जन्म में संस्कृत के श्लोक लिखे थे। आश्चर्य की बात यह है कि सभी श्लोक सही अवस्था में प्राप्त हुए। दरवाजे के ऊपर लिखे श्लोक थे—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अर्थात्—मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र को त्यागकर नूतन वस्त्र धारण करता है, वैसे ही देह धारण करने वाले जीव जीर्ण शरीर को त्यागकर नूतन शरीर का आश्रय लेता है।

रूचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषाम् ।
नृणमेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

अर्थात्—नदियाँ जैसे नाना पथगामी होने पर भी अन्त में एक ही समुद्र में लीन होती हैं, वैसे ही मनुष्यों की प्रवृत्ति व उपासना के पथ पृथक् होने पर भी अन्त में ब्रह्म प्राप्ति ही सबका लक्ष्य है।

निर्ममस्या प्रेमयस्य निष्कलस्या शरीरिणः ।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥

अर्थात्—ब्रह्म अहंकार व परिणाम शून्य, नित्य शुद्ध, शरीर-हीन होने पर भी साधकों के हित के लिए नाना रूपों में कल्पित होते हैं।

इन श्लोकों को पाकर उमाचरणजी फूले नहीं समाये। बात भी सही है। अगर कोई व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के ऐश्वर्य और ज्ञान को पा जाता है तो उसे अतिरिक्त प्रसन्नता होती है। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उक्त जमींदार वास्तव में धार्मिक प्रकृति के थे। सभी किसान और परिवार के लोग उन्हें आदर देते थे।

मुखर्जी बाबू को स्वामीजी का एक और उपदेश याद आ गया जिसमें उन्होंने कहा था—''जीव के लिए मुक्ति से बढ़कर सार-वस्तु कुछ भी नहीं है और आत्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। मुक्ति और आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक शास्त्र-अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मुख्य बातें जानने से ही कार्य-सिद्धि हो जाती है। मुक्ति को छोड़कर मनुष्य की दूसरी गति नहीं है। सब समय मुक्ति की

कामना होती है। जबतक ज्ञान का उदय नहीं होता तबतक आना-जाना और कष्ट भोगना पड़ता है। जगत् में जो कुछ देख रहे हो, सब भूल है। संसार में राजा, प्रजा या किसी को भी निर्मल सुख भोगने का अधिकार नहीं है।''

एक दिन स्वामीजी के मन में न जाने कैसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि उमाचरणजी के माध्यम से कुछ उपदेश लिखवा दें। उन्होंने कहा—''तुम कहीं से कुछ कॉपी, कागज खरीद लाओ। मैं कुछ उपदेश लिखवाना चाहता हूँ। मैं कहता चलूँगा और तुम उसे लिखते रहना। कुल बारह विषय लिखाऊँगा ईश्वर, गुरु-शिष्य, संसार, चित्तशुद्धि, धर्म, उपासना, पुनर्जन्म, आत्मबोध, तन्मयता, तत्त्वज्ञान, सृष्टि और कुछ मुख्य बातें। आगे चलकर कोई इसे मनन करेगा तो ज्ञान प्राप्त करेगा।''

दूसरे दिन उमाचरणजी बाजार से कागज खरीद कर ले आये। बाबा व्यासजी की तरह प्रवचन देते रहे और गणेशजी की तरह उमाचरणजी उसे लिखते रहे। कॉपी पर कॉपी पूर्ण होती गयी। इस लेखन-कार्य से उमाचरणजी स्वामीजी के अन्तरंग बनते गये।

मंगलदास ने एक दिन अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा—''मुझे ऐसा लग रहा है कि बाबा आपको शीघ्र ही अपना शिष्य बना लेंगे।''

यह एक ऐसा संदेश था जिसे सुनकर उमाचरणजी खुशी से उछल पड़े। चकित दृष्टि से देखते हुए उन्होंने प्रश्न किया—''क्या बाबा ऐसा कह रहे थे?''

मंगलदास ने कहा—''बाबा ऐसा कह तो नहीं रहे थे, पर आपकी प्रशंसा इधर बराबर करते रहते हैं। कहते हैं कि बंगाली बाबू बड़े सज्जन हैं।''

अपने बारे में बाबा की यह राय सुनकर उमाचरणजी भाव-विभोर हो उठे।

एक दिन बाबा जब आराम कर रहे थे, उस समय उमाचरणजी उनके पैर दबा रहे थे। एकाएक बाबा ने कहा—''क्यों बंगाली बाबू, अब मुझसे दीक्षा लेने की फिक्र में हो?''

उमाचरणजी आँखें बन्द कर मन ही मन प्रार्थना करने लगे कि बाबा, आपकी कृपा हो जाय। प्रकट रूप में उन्होंने कहा—''बाबा, आपकी कृपा-दृष्टि जब मुझ पर है तब इससे बढ़कर मुझे क्या चाहिए?''

स्वामीजी ने कहा—''इस विषय पर रात को विचार करेंगे। एक प्रकार से यह एक कठिन समस्या है। अभी तक तुम आजाद हो, मुक्त हो। जब दीक्षा लोगे तब बंधन में फँस जाओगे। बहरहाल इस वक्त घर जाओ। शाम को जब आओगे तब अन्य बातें होंगी।''

शाम को जब उमाचरणजी आश्रम में आये तब उन्हें अपने साथ लेकर स्वामीजी जी बगल के छोटे कमरे में आये। वहाँ अपना आसन ग्रहण करने के बाद स्वामीजी ने कहा—''मैं समझ गया हूँ कि तुम योग की शिक्षा लेना चाहते हो, पर वास्तव में तुम उसके योग्य नहीं हो। योग कठिन साधना है। कठोपनिषद् में कहा गया है—

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥

तां योगमिति मन्वन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्यतौ ॥

अर्थात्—जब पाँचों इंद्रियाँ और तर्क-वितर्क, ज्ञान-विज्ञान, मन-बुद्धि सभी निचेष्ट हो जाते हैं तब उसी को परमगति कहते हैं। यही योग है। इसके लिए असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। वह तुममें नहीं है। तुम योग-शिक्षा के अधिकारी नहीं हो। वास्तव में तुम उपासना-मार्ग के उपयुक्त हो, इसलिए उसी की शिक्षा लो।''

उमाचरण ने विनम्र होकर कहा—''आप मुझे जिस पद्धति के उपयुक्त समझते हैं, उसी मार्ग पर चलने की आज्ञा दीजिए। मैं आपके निदेशों का पालन निष्ठापूर्वक करूँगा। इसमें कोई त्रुटि नहीं होगी।''

बाबा कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—''इसी माघ मास में तीन तारीख को पुष्य नक्षत्र में चन्द्रग्रहण लगेगा तबतक तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि बिना शरीर शुद्ध हुए दीक्षा नहीं ली जा सकती। चन्द्रग्रहण के दिन तुम्हारा शरीर शुद्ध करूँगा। मैं कुछ वस्तुओं के नाम बता रहा हूँ, उसे एक कागज पर लिख लो। इनको ग्रहण के समय किसी सद् ब्राह्मण को दान कर देना। इसके बाद गंगा-स्नान करके एक आसन पर बैठ जाना।''

बाबा ने आवश्यक चीजों की सूची लिखने के बाद एक मंत्र बताया। इसके बाद उन्होंने कहा—''आसन पर बैठकर इस मंत्र को जपते रहना। इससे शरीर शुद्ध हो जायगा।''

उमाचरणजी ने अपनी शंका प्रकट की—''ग्रहण के समय कोई सद्ब्राह्मण दान क्यों लेगा? ग्रहण का दान तो चाण्डाल लेते हैं। यह तो कठिन समस्या है।''

मुखर्जी बाबू की कठिनाई समझते ही बाबा हँस पड़े। उन्होंने कहा—''ग्रहण के समय एक व्यक्ति तुम्हारे पास स्वयं आकर मेरे द्वारा लिखायी गयी सामग्रियों की माँग करेगा, उसी को दे देना। इससे तुम्हारे काम की सिद्धि हो जायगी।''

आसानी से समस्या हल होते देख उमाचरणजी को संतोष हो गया। अब सद्ब्राह्मण की तलाश में परेशान नहीं होगा पड़ेगा। बाबा उसके लिए प्रबंध कर देंगे। अब वे बेसब्री से चन्द्रग्रहण की प्रतीक्षा में दिन काटने लगे।

निश्चित दिन गंगा किनारे सारी चीजें लेकर उमाचरणजी आये। चारों ओर अपार भीड़ थी। पता नहीं, इस अपार जनसमूह में कौन व्यक्ति उनके पास आयेगा। वे इधर-उधर चक्कर काट रहे थे कि सहसा एक व्यक्ति ने पास आकर कहा—''आप अमुक-अमुक चीजें किसी सद्ब्राह्मण को देना चाहते हैं?'

उमाचरणजी ने कहा—''जी हाँ।''

उस व्यक्ति ने कहा—''तब मुझे दे दीजिए। मैं ही वह व्यक्ति हूँ।''

सारी चीजें लेकर वह व्यक्ति भीड़ में न जाने कहाँ गायब हो गया। उमाचरणजी गंगा-स्नान के पश्चात् आसन पर बैठकर स्वामीजी द्वारा बनाये मंत्र का जाप करने लगे।

दूसरे दिन बाबा के यहाँ जाकर प्रणाम करने के पश्चात् उन्होंने कहा—"बाबा, आपके निर्देशों का पालन कर चुका।"

बाबा ने कहा—"तुम्हारा शरीर भी शुद्ध हो गया।"

इसके बाद देर तक बाबा उमाचरणजी को गुरु-शिष्य के सम्बन्धों के बारे में उपदेश देते रहे। बाद में उन्होंने कहा—"अब कल तुम्हें विधिवत् दीक्षा दूँगा।"

इसी दिन तीसरे पहर अपनी आदत के अनुसार उमाचरणजी आश्रम में बाबा का दर्शन करने आये तो देखा—तीन अपरिचित संन्यासी बाबा के साथ किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर बातचीत कर रहे हैं। बाबा उन्हें देर तक अपनी बातें समझाते रहे। उमाचरणजी के पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

कुछ देर बाद तीनों संन्यासी चले गये। उनके जाने के बाद मूसलाधार वर्षा प्रारंभ हो गयी।

उमाचरणजी ने बाबा से घर जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने कहा—"अभी नहीं। चुपचाप बैठे रहो।"

बाहर तूफानी हवा के साथ-साथ वर्षा का वेग बढ़ गया। गलियों में पानी भर जाने की आवाजें आने लगीं। प्रतीक्षा करते दो घंटे गुजर गये, पर पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। इस बीच बाबा से आज्ञा प्राप्त न होने पर उमाचरणजी ने सोचा—शायद आज बाबा अपने आश्रम में आश्रय देंगे।

इतना सोचना था कि बाबाजी ने कहा—"अब तुम घर जा सकते हो।"

इस आदेश को सुनकर मुखर्जी बाबू चौंक उठे। बाहर अभी तक तीव्र गति से पानी बरस रहा था। बिजली चमक रही थी और बादल गरज रहे थे। मकानों की नालियों से तेजी से पानी गलियों में गिरने की आवाजें आ रही थीं। ऐसे भयंकर मौसम में कैसे घर तक जायेंगे?

उमाचरणजी ने दयनीय भाव से स्वामीजी की ओर देखते हुए कहा—"बाबा, पानी का वेग जरा कम हो जाय तब चला जाऊँगा।"

बाबा ने कहा—"नहीं, बस तुरत रवाना हो जाओ।"

इस आदेश की अवहेलना करने का साहस नहीं हुआ। डरते-डरते चल पड़े। सहन पार करने के बाद मंगलदास से मुलाकात हुई। उनसे उमाचरणजी ने कहा—"बडी़ मुसीबत हो गयी। बाहर कितना घना अंधेरा है, पानी बरस रहा है। ऐसे भयंकर मौसम में बाबा का आदेश हुआ कि घर चला जाऊँ। सोचा था कि पानी कम होने पर चला जाऊँगा। अब आप ही बताइये कि कैसे जाऊँ?"

मंगलदास ने कहा—"डरने की कोई बात नहीं है, बंगाली बाबू। आप गुरुदेव का नाम लेकर आगे बढ़ जाइये। इस आज्ञा के पीछे बाबा का कोई उद्देश्य अवश्य होगा, वर्ना वे ऐसा न कहते।"

मंगलदास की सलाह सुनने के बाद उमाचरणजी वापस लौटकर बाबा का चरण-

स्पर्श करने के बाद घने अंधियारे में निकल पड़े।

बाहर घुटने भर पानी भर गया था और तेजी से नदी की ओर नाले के रूप में बह रहा था। अंधेरा होने के कारण सामने कुछ भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था। मूसलाधार वृष्टि के कारण कान के पर्दे जैसे सुन्न पड़ गये थे।

लेकिन ऐसे दुर्योग में उमाचरण को विचित्र अनुभव होने लगा। उनके पैर घुटने भर पानी में डूब गये थे, पर उनके शरीर के किसी भी हिस्से में एक बूँद पानी नहीं गिर रहा था जबकि वर्षा तेजी से हो रही थी। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक गली से एक आदमी लालटेन लेकर आगे बढ़ गया। घने अंधकार में रोशनी पाकर मुखर्जी बाबू आश्वस्त हो गये।

उन्होंने सोचा—एक से दो भले। उन्होंने आगे चलने वाले व्यक्ति को रुकने के लिए आग्रह किया। शायद वर्षा के शोर के कारण उसे सुनाई नहीं दिया। यह देखकर उमाचरणजी तेजी से आगे बढ़े ताकि उस व्यक्ति का साथ हो जाय। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि तेजी से आगे बढ़ने पर भी दोनों व्यक्तियों में समान दूरी कायम रही। उस व्यक्ति के पास पहुँचने को कौन कहे, बीच के फासले में कमी नहीं कर सके।

फिर यह सोचकर उन्होंने तेज चलना बन्द कर दिया कि उसकी लालटेन की रोशनी में रास्ता साफ दिखाई दे रहा है, केवल पैरों में पानी का स्पर्श हो रहा है। इसी प्रकार चलते हुए वे घर के पास पहुँचे तो लालटेन वाला व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया। क्षण भर के लिए वे स्तंभित रह गये। उन्होंने यह समझते देर नहीं लगी कि यह चमत्कार बाबा के कारण ही हुआ है। शायद इसलिए बाबा ने इस दुर्योग में मुझे घर आने की आज्ञा दी। मन ही मन स्वामीजी को प्रणाम करने के बाद वे घर के भीतर गये।

दूसरे दिन मठ में जाते ही नियमानुसार बाबा के साथ उमाचरणजी को गंगा-स्नान के लिए जाना पड़ा। बाबा का गंगा-स्नान अपने ढंग का होता है। कम से कम दो घंटे वे पानी में रहते हैं। कभी-कभी डुबकी लगाकर नीचे न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं। कहीं दिखाई नहीं देते। कभी-कभी पानी के ऊपर बहाव के विपरीत दिशा में भासमान रहते हैं। जब तक बाबा पानी से बाहर नहीं निकलते तबतक उमाचरणजी को नदी किनारे बैठे इन्तजार करना पड़ता है।

उस दिन बाबा जब स्नान करने के बाद ऊपर आये तब उनका शरीर उमाचरणजी ने अच्छी तरह पोंछ दिया। बाद में दोनों व्यक्ति आश्रम में आये। मठ में आकर बाबा वेदी पर बैठ गये और उमाचरणजी को अपने सामने बैठने की आज्ञा दी। वे नीचे फर्श पर बैठ गये।

आश्रम में दर्शनार्थियों का आना-जाना जब कम हो गया तब दीक्षा का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। पहले बाबा ने कुछ क्रियाएँ बतायीं, फिर उनके कान में बीजमंत्र दान किया।

इसके बाद बाबा ने कहा—''उमाचरण, अब मैं कुछ गूढ़ बातें बता रहा हूँ। इन निर्देशों का सर्वदा सावधानी से पालन करना। विषय कार्य के लिए जितना बोलना सावधानी से पालन करना। विषय कार्य के लिए जितना बोलना आवश्यक है, उतनी बातें करना। बेकार की बातें कहकर समय नष्ट मत करना। इससे तेज का क्षय होता है। किसी भी धर्म से द्वेष मत करना। जिसको जिस धर्म में विश्वास है, उसे उसी से मुक्ति मिलती है। आहार-विहार से धर्म की हानि नहीं होती, केवल मुक्ति में विलम्ब होता है। मुसलमान-ईसाई भी मुक्ति पा सकते हैं। व्याकुल भाव से जो ईश्वर को पुकारेगा, उसे दर्शन अवश्य होगा। तुम जिन घटनाओं को देखकर चकित हो रहे हो, इनमें एक भी आश्चर्यजनक नहीं है। मनुष्य अगर सच्चे माने में मनुष्य हो तो वह भी अलौकिक कार्य कर सकता है। केवल आहार-विहार के लिए मनुष्य की सृष्टि नहीं हुई है। भगवान् में जो-जो शक्तियाँ हैं, मनुष्य में भी ठीक वही शक्तियाँ हैं। भगवान् ने मनुष्य में यह सब शक्तियाँ देकर जीवों में उसे श्रेष्ठ बनाया है। वास्तव में कोई उस शक्ति का उपयोग करना नहीं जानता। अगर किसी की इच्छा होती है तो कार्य-प्रणाली न जानने के कारण वह हताश हो जाता है। यदि दस दिनों के भीतर भगवान् का दर्शन न मिला तो वह अपना धैर्य खोकर नास्तिक बन जाता है। इस जगत् की सृष्टि किसी सर्वशक्तिमान ने की है, वही ईश्वर है। वह समस्त जगत् में व्याप्त है। उसे अपने ज्ञान-विचार के जरिये खोजना होगा। लगन के साथ खोजने पर वे अवश्य मिलेंगे।''

यह है योग्य शिष्य बनाने की परम्परा। योग्य गुरु प्रत्येक शिक्षार्थी को अपना शिष्य नहीं बनाते। सिद्ध योगी दीक्षा लेनेवाले शिष्य की योग्यता को अपनी अन्तरदृष्टि से पहचान लेते हैं, फिर 'जाकी जैसी चाकरी ताको तैसी दे' के अनुसार मंत्र देते हैं। योग्य शिष्यों को अपने अलौकिक शक्ति के माध्यम से गुरु अपने पास बुला लेते हैं, क्योंकि योग्य शिष्य गुरु के ज्ञान तथा शक्ति का लाभ उठाते हुए उनके परमार्थ में सहायक होते हैं। जैसे परमहंस रामकृष्ण देव ने विवेकानन्द, राखाल महाराज को, विजयकृष्ण गोस्वामी ने सतीश मुखर्जी को, गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को, महातपाजी ने विशुद्धानन्द को, महर्षि रमण ने पाल ब्रण्टन को अपने निकट आकर्षित किया था। अगर गुरु शिष्य को परखने में चूक जाते हैं तो शिष्य के समस्त कार्यों की जिम्मेदारी गुरु को वहन करनी पड़ती है।

* * *

कुछ दिनों के बाद बातचीत के सिलसिले में उमाचरणजी ने अपने गुरुदेव से पूछा—''क्या मैं अपने जीवन में कभी ईश्वर का दर्शन कर सकता हूँ?''

स्वामीजी ने कहा—''साधना करते रहने पर गुरु-कृपा से दर्शन मिल जाता है। क्या तुम प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करना चाहते हो?''

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसकी आकांक्षा ऋषि-मुनि से लेकर देवता तक करते

हैं। मानव की क्या गिनती? गुरुदेव के प्रश्न को सुनते ही उमाचरण के दिल में रक्त का जैसे एक उबाल आ गया। भावातिरेक होकर उन्होंने गुरुदेव के चरण पकड़कर कहा—''यह तो मेरे लिए अहोभाग्य की बात होगी, गुरुदेव। क्या मेरे भाग्य में यह संभव है?''

स्वामीजी ने कहा—''आज रात को तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इस वक्त अपने घर जाओ।''

अत्यधिक उत्तेजना के कारण उमाचरणजी आज शाम होने के काफी पहले आ गये। ठीक समय पर स्वामीजी उन्हें साथ लेकर अपने पूजा-गृह में आये। अपनी वेदी पर बैठने के बाद उन्होंने कहा—''बगलवाली कोठरी में माता काली की मूर्ति है। जाओ, दर्शन कर आओ।''

गुरुदेव की आज्ञानुसार उमाचरणजी वेदी के बगल में स्थित कोठरी में गये। भीतर माँ काली की एक पाषाण मूर्ति स्थापित थी। मूर्ति को प्रणाम करने के बाद वे चुपचाप गुरुदेव केपास आकर बैठ गये।

स्वामीजी ने कहा—''काली माता का दर्शन कर आये?''

''जी हाँ, गुरुदेव।''

''क्या काली माता को तुम यहाँ देखना चाहते हो?''

उमाचरणजी ने विस्मय के साथ गुरुदेव की ओर देखा—पाषाण मूर्ति यहाँ कैसे आ सकती है? क्या जीवन्त मूर्ति गुरुदेव दिखायेंगे?

प्रकट रूप में उमाचरणजी ने कहा—''यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। साक्षात् जगज्जननी का दर्शन मेरे कोटि-कोटि जन्मों के पुण्य का फल होगा।''

स्वामीजी ने कहा—''अब तुम स्थिर होकर बैठो। जरा भी उत्तेजित मत होना और न वाचालता प्रकट करना।''

इतना कहने के बाद गुरुदेव ध्यानस्थ हो गये। यह स्थिति लगभग एक घंटे तक बनी रही। ध्यान भंग होने पर स्वामीजी ने कहा—''काली माता, इस कमरे में आ जाओ।''

थोड़ी देर बाद उमाचरण ने आश्चर्य के साथ देखा—अचला पाषाण मूर्ति, कुँआरी पुत्री के रूप में धीरे-धीरे चलती हुई स्वामीजी के पास आ गयीं। दीपक के स्पष्ट प्रकाश में चैतन्यमयी, सर्वमंगला, विश्वरूपिणी, जगन्माता प्रत्यक्ष रूप में दण्डायमान हैं।

उमाचरणजी भय से वाक्-शक्तिहीन हो गये। विस्मय से उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। अचेतन पाषाण मूर्ति सचेतन हो गयी और सचेतन जीव अचेतन हो गया।

कुछ देर बाद बाबा ने आदेश दिया—''उमाचरण, भीतर जाकर उस स्थान को अच्छी तरह देख आओ जहाँ देवी-मूर्ति थी। अब वहाँ है या नहीं, यह देखकर आओ और मुझे बताओ।''

आदेशानुसार उमाचरण ने भीतर जाकर देखा—देवी की मूर्ति वहाँ नहीं है।

उत्तेजनावश तेजी से बाहर आकर उन्होंने स्वामीजी से कहा—"नहीं। वहाँ काली माता की मूर्ति नहीं है।"

बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—"चुपचाप बैठ जाओ। उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं है।"

बाबा के समीप खड़ी काली माता की मूर्ति को उमाचरण विस्मय से देखते रहे—वह पूर्व की भाँति पाषाण मूर्ति की तरह खड़ी हैं। अन्तर केवल इतना है कि इस वक्त माँ की जीभ बाहर निकली हुई नहीं है। पैरों के नीचे शिव की मूर्ति भी नहीं है।

बाबा से अनुमति लेकर उमाचरण ने माँ काली के चरणों की धूल सिर तथा सर्वांग में लगायी। देवी के चरणों को स्पर्श करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह पाषाण चरण नहीं, बल्कि मानव की तरह कोमल और सजीव हैं।

बाबा ने कहा—"देवी को अच्छी तरह देख लो ताकि तुम्हारा मन-हृदय तृप्त हो जाय।"

कुछ देर बाद बाबा ने काली माता से कहा कि अब अपने स्थान पर जाकर विराजमान हो जाओ।

काली माता छोटी लड़की की तरह धीरे-धीरे चलती हुई बगल की कोठरी में चली गयीं और पुनः पाषाण मूर्ति बन गयीं।

उमाचरणजी के मन में अनेक प्रश्न उभर रहे थे। उन्होंने पूछा—"महाराज, पाषाण मूर्ति जीवित जीव की तरह कैसे चल सकती है? अब तक मैंने जो कुछ देखा, क्या यह सत्य है?"

स्वामीजी ने पूछा—"तुम्हारा जड़-शरीर कैसे चलता है?"

"मनुष्य के शरीर में आत्मा और चैतन्य दोनों है, इसलिए यह चलता है।"

स्वामीजी ने कहा—"सिद्ध साधक के गुण से मिट्टी, धातु तथा पाषाण में आत्मा एवं चैतन्य का संचार होता है, इसलिए ऐसी मूर्तियाँ चलती हैं, बोलती हैं, सुनती हैं, ऐसे अनेक कार्य करती हैं।"

दूसरे दिन गंगा-स्नान के पश्चात् स्वामीजी ने कहा—"उमाचरण, आज रात को एक बार और आना। आज सभी कार्य समाप्त कर दूँगा। इसके बाद तुम्हें यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है।"

उसी दिन रात को जब उमाचरणजी स्वामीजी के आश्रम में आये तब उन्होंने प्रसाद खिलाया। इसके बाद तैलंग स्वामी कुछ प्रक्रिया प्रणाली करके समझाने लगे। बोले—"इससे आत्म-दर्शन सुलभ होगा। यह क्रिया निरन्तर करते रहना।"

बाद में अपना आसन ग्रहण करते हुए उन्होंने कहा—"उमाचरण, आज से तुम उपासना के बंधन में बँध गये। यह याद रखो कि अब आज से प्रतिदिन सारी क्रियाएँ करनी होंगी। अगर जरा भी लापरवाही हुई तो बदले में मुझे खटना पड़ेगा। दिन को अवसर न मिले तो रात को करना। रात को न मिले तो भोर में करना, पर करना अवश्य।

समय नहीं मिलता, इस प्रकार के बहानों से काम नहीं चलेगा। अगर तुम लापरवाही करोगे तो मुझे पता चल जायगा।''

कुछ देर के लिए तैलंग स्वामी चुप हो गये। लगा जैसे अतीत में खो गये हैं। बाद में स्थिर दृष्टि से देखते हुए बोले—''भगवान् ने अपनी सारी शक्ति संचारित कर के मनुष्य को श्रेष्ठ जीव बनाया है, इसलिए वह भगवान् की तरह कार्य कर सकता है। आज इसे प्रत्यक्ष करके दिखाऊँगा। इसे देखकर तुम्हारी समझ में यह बात आ जायगी कि मनुष्य ही ईश्वर है। वह आत्मा के रूप में, हृदय में और परमब्रह्म के रूप में, मस्तक में विराजमान है। 'मैं' नाम का जो शरीर है, वह कुछ भी नहीं है। वह तो ईश्वर है। मैं कुछ नहीं, मेरा कुछ नहीं। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी चुप हो गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—''अब तुम अपनी आँखें बन्द कर लो। जब तुम्हें पुकारूँ तभी खोलना।''

कहने के साथ ही स्वामीजी भी ध्यानस्थ हो गये। पता नहीं, कितनी देर तक यह स्थिति रही। एकाएक गुरुदेव की आवाज सुनाई दी—''उमाचरण, अब आँखें खोलो और यह बताओ कि हम कहाँ हैं?''

उमाचरण ने देखा कि वे उस कमरे में नहीं हैं जिसमें अभी कुछ देर पहले बैठे थे। इस वक्त वे गंगा के गर्भ में हैं। एक पलंग पर गुरुदेव बैठे हैं और वे पलंग पर एक किनारे हैं। पलंग पर सफेद गद्दा, तोशक और सफेद चादर बिछी है। तीन ओर तीन मसनद हैं। एक मसहरी टँगी है। गुरुदेव सोये हुए हैं।

उमाचरण को चकित होते देख स्वामीजी ने कहा—''इस वक्त गंगा के गर्भ में हैं। क्या सचमुच गंगा के भीतर हैं? जरा नीचे हाथ लगाकर जल स्पर्श करो।''

आज्ञानुसार उमाचरणजी ने पलंग पर से झुककर जल-स्पर्श किया। सचमुच पानी था। वे आगे हटकर बैठ गये। उन्हें भय लगा कि कहीं पानी में न गिर जायँ।

तभी स्वामीजी ने कहा—''अब पुनः अपनी आँखें बन्द कर लो।''

उमाचरण ने आँखें बन्द कीं। कुछ देर बाद गुरुदेव ने पूछा—''अब अपनी आँखें खोलकर बताओ कि हम कहाँ हैं?''

इस बार आँखें खोलने पर उन्होंने देखा कि वे आश्रम के उसी कमरे में हैं जहाँ इसके पूर्व थे। बाबा सामने वेदी पर लेटे हुए हैं। वे अवाक् होकर सोचने लगे कि यह सब कैसे हुआ?

उमाचरण की मनःस्थिति समझते हुए स्वामीजी ने कहा—''यह आश्चर्य का विषय नहीं है। मनुष्य अगर वास्तविक मनुष्यत्व को प्राप्त कर ले तो उसकी जैसी इच्छा होगी वह वैसा कर सकता है। यह सब तुम्हें इसलिए दिखाया ताकि तुममें दृढ़ विश्वास और आस्था उत्पन्न हो।''

❋ ❋ ❋

काशी में एक मुहल्ले का नाम सोनारपुरा है। इसी मुहल्ले में श्री रामकमल चटर्जी रहते थे। सीढ़ी पर से पैर फिसल जाने के कारण उनके एकमात्र पंचवर्षीय बालक के सीने की हड्डी टूट गयी। उन दिनों नगर में हड्डी-विशेषज्ञ कम थे। कई डॉक्टरों से इलाज कराने पर भी बालक ठीक नहीं हुआ। अस्पताल के डाक्टरों ने सलाह दी कि इसे जल्द से जल्द कलकत्ता ले जाइये।

कलकत्ता आने पर डॉक्टरों ने कहा कि बालक का ऑपरेशन करना पड़ेगा। स्थिति खराब है। मुमकिन है कि आपरेशन करते समय इसका निधन हो जाय।

डॉक्टरों की इस राय को सुनकर चटर्जी बाबू के होश उड़ गये। उन्होंने सोचा—जब ऑपरेशन करने पर भी नहीं बचेगा तब कराने से फायदा? निराश होकर पति-पत्नी रोते हुए वापस आ गये।

ठीक इन्हीं दिनों पड़ोस में रहने वाले एक सज्जन ने कहा—"मेरा कहना मानिये। आप बच्चे को लेकर एक बार तैलंग स्वामी के पास चले जाइये। वे बहुत ऊँचे दर्जे के संत हैं। उनसे प्रार्थना कीजिए। संतों की कृपा से न जाने कितने मुर्दे जीवित हो गये हैं।"

डूबते को तिनके का सहारा मिलने पर साहस बढ़ता है। चटर्जी बाबू के मन में यह बात पैठ गयी कि अगर स्वामीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर सका तो बच्चे को बचा लूँगा। दूसरे दिन स्नान करके दोनों पति-पत्नी बाबा के पास गये। लेकिन वहाँ की स्थिति देखकर निराश हो गये।

बाबा बराबर मौन रहते हैं। दर्शनार्थियों को इशारे से बाहर चले जाने का निर्देश दे देते हैं। ऐसी स्थिति में अपना कष्ट बेचारे कैसे कह पाते। फिर भी वे निराश नहीं हुए। बाबा के दर्शनों से उनका आत्मबल बढ़ता गया। इस प्रकार वे एक माह तक बाबा के दरबार में जाते और आदेश प्राप्त होते ही चल देते थे।

अचानक एक दिन बाबा के एक भक्त ने चटर्जी बाबू से पूछा कि आप लोग नित्य यहाँ क्यों आते हैं? बाबा यह जानना चाहते हैं।

इतना पूछना था कि दोनों पति-पत्नी वहीं चरणों से दूर गिर पड़े। अपने कष्टों का उल्लेख करते हुए रोने लगे।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने बच्चे को गौर से देखा। इसके बाद जमीन से थोड़ी मिट्टी उठाकर देते हुए बोले—"इसमें थोड़ा पानी मिलाकर दर्द वाले स्थान पर प्रलेप लगा देना। लड़के को तेज बुखार आयेगा, पर उससे घबराना नहीं। बुखार उतर जाने पर तेज भूख लगेगी। उस समय घर में जो कुछ रहे, वही इसे खिला देना। दो दिन बाद ठीक हो जायगा।"

दो दिन बाद वह बालक ठीक हो गया।

*　　　*　　　*

इसी प्रकार की एक घटना श्री भवानीचरण वाचस्पति के साथ हुई थी। वे कालाज्वर से पीड़ित थे। यकृत और प्लीहा दोनों बढ़ गये थे। इस वजह से शारीरिक तथा मानसिक कष्ट से पीड़ित थे। अपने मित्र के सुझाव पर आप भी तैलंग स्वामी के पास जाने लगे।

चटर्जी बाबू की तरह इन्हें भी नित्य आते देख बाबा ने इनसे कारण पूछा। वाचस्पतिजी ने अपने कष्टों का उल्लेख किया। सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने भाँग पीसने का आदेश दिया।

वाचस्पतिजी सिल-लोढ़ा लेकर भाँग पीसने लगे। पिस जाने पर बाबा ने मटर बराबर गोली खाने का आदेश दिया।

बाद में स्वामीजी ने कहा—"अब आज घर चले जाओ। कल से नित्य इसी समय आना। बराबर तुम्हें यहाँ भाँग पीसना और खाना पड़ेगा।

वाचस्पतिजी बाबा की आज्ञानुसार नित्य आते और भंग पीसने के बाद मटर बराबर गोली खाकर घर चले जाते थे। यह क्रम लगातार एक माह तक जारी रहा।

एक दिन जब वाचस्पतिजी आये तब बाबा ने कै की। इसके बाद उनसे बाबा ने कहा कि सारी जगह साफ कर दो। वाचस्पतिजी ने बिना हिचके सर्वत्र धोकर साफ कर दिया। बाद में दैनिक नियम के अनुसार उन्होंने भाँग पीसी और खायी।

एक दिन स्वामीजी ने काफी मात्रा में टट्टी कर दी। सबेरे जब वाचस्पतिजी आये तब उन्हें उक्त स्थान की सफाई करने को कहा गया। हर दिन की तरह बिना हिचके उन्होंने सारी जगह साफ कर स्नान किया। इसके बाद पुन भाँग पीसी और खायी।

इस घटना के दूसरे दिन जब वाचस्पतिजी आये तब बाबा ने कहा—"अब कल से मत आना। चार दिन बाद तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे।"

चार दिन के बाद वाचस्पतिजी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये।

* * *

काशी से वापस जाकर उमाचरणजी अपने कर्मस्थल मुंगेर में अपने गुरुदेव की महिमा का प्रचार करने लगे। तैलंग स्वामी के शिष्य की जबानी उनकी अलौकिक शक्ति की कहानियाँ सुनकर अनेक लोग बाबा का दर्शन करने के लिए उत्सुक हो उठे। उनके प्रवचनों (जिसे बाबा ने उमाचरण से लिखवाया था।) को सुनकर प्रभावित हुए।

फलस्वरूप बाबा की हिदायत आयी कि मेरे बारे में प्रचार करना बन्द करो।

कुछ दिनों तक उमाचरणजी शान्त रहे। बाद में इस बात को भूल गये। दो घनिष्ठ मित्रों के अत्यधिक दबाव के कारण उनके साथ काशी आये। इनमें एक का नाम यदुनाथ बागची और दूसरे का नाम श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन था।

बाबा के आश्रम में आते ही वे कृष्णप्रसन्न सेन पर बिगड़ उठे—"कृष्णप्रसन्न, तुम बड़े अंहकारी हो। तुम्हारा ख्याल है कि तुम भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार हो। तुम

चाहते हो कि लोग तुम्हारी पूजा करें, चरण-स्पर्श करें। यहाँ तक कि ब्राह्मणों के आगे पैर बढ़ाने में तुम्हें संकोच नहीं होता? सुन लो, तुम्हारा भविष्य अंधकारमय है। तुममें केवल एक ही गुण है। भाषण अच्छा दे लेते हो। पूरी बेलकर गर्म घी में छोड़ा जाता है, वह तबतक कच्ची रहती है जबतक कलकल आवाज करती है। पक जाने पर शांत हो जाती है। वही स्थिति तुम्हारी है।''

इस फटकार को सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन चुप रहे। उन्होंने न कोई प्रश्न किया और न प्रतिवाद किया।[1]

यदुनाथ बागची की ओर देखते हुए बाबा ने कहा—''यदुनाथ, तुम अनेक ग्रंथों का अध्ययन कर चौपट हो गये हो। तुम्हारा मन स्थिर नहीं रहता। मन स्थिर होने पर ही मुक्ति मिलती है। तुम मुझसे दीक्षा लेने आये हो। अब तक मैंने जितने शिष्य बनाये हैं, उससे अधिक नहीं बनाऊँगा। दीक्षा देना महापाप है। शिष्यों को जो आदेश दिया जाता है, उसका वे पालन नहीं करते तब उसके कार्यों को गुरु करता है, क्योंकि गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य के हित का ध्यान रखे। अब मैं इस पाप में लिप्त नहीं होना चाहता। तुम मेरे शिष्य कालीचरण स्वामी के निकट चले जाओ और उनसे दीक्षा लो।''

उमाचरणजी अवाक् होकर अपने मित्रों का कच्चा चिट्ठा सुनते रहे। अगर बाबा की बातें असत्य होतीं तो जरूर दोनों प्रतिवाद करते।

कुछ देर चुप रहने के बाद बाबा ने एक ऐसी घटना का जिक्र किया जिसकी आशा बागची महाशय को नहीं थी।

बाबा ने कहा—''यदुनाथ, कट्टर हिन्दू होना अनुचित है। जमालपुर में तुम्हारे अण्डर में काम करने वाले कर्मचारी ने भूल से लघुशंका करते वक्त कान पर जनेऊ नहीं चढ़ाया। उसकी इस भूल के लिए तुम उस पर बरस पड़े। यहाँ तक कि उसकी पदोन्नति का रास्ता रोक दिया। लघुशंका करते वक्त कान पर जनेऊ क्यों चढ़ाया जाता है, इसका रहस्य तुम्हें मालूम है? शायद तुम भी नहीं जानते। जनेऊ शुद्ध है और पेशाब अशुद्ध। पेशाब करते समय उस पर छींटे न पड़ें, इसलिए कान पर चढ़ाया जाता है।''

यह घटना जमालपुर में हुई थी और बाबा काशी में रहते हैं। आखिर इन्हें यह बातें कैसे मालूम हो गयीं? निस्सन्देह बाबा त्रिकालदर्शी सिद्ध हैं।

*　　　*　　　*

सन् १८७० ई० में दयानन्द सरस्वतीजी काशी आये थे। उद्देश्य था—आर्य-धर्म

---

१. श्रीकृष्ण सेन आगे चलकर परिव्राजकाचार्य कृष्णानन्द आगम वागीश के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। दशाश्वमेध थाने के सामने गली में उनका आश्रम है। उस आश्रम में अन्नपूर्णा देवी की मूर्ति स्थापित कर भवन का नाम योगाश्रम रखा था। वे यहाँ से आर्य-धर्म का प्रचार करते थे। इस आश्रम में कभी भोलानाथ सान्याल, गोपीनाथ कविराज आदि लोग आते थे। आजकल इस आश्रम की स्थिति दयनीय है और किरायेदार निवास करते हैं।

के बारे में भाषण देना। हिन्दुओं के आडम्बरों, पोंगापन्थियों का निराकरण करना। वे यहाँ हिन्दू-देवी देवताओं के विरुद्ध भाषण देने लगे। अनेक पण्डितों की बोलती बन्द हो गयी। दुर्गाकुण्ड के समीप हुए शास्त्रार्थ में काशी के अनेक पंडित पराजित हो गये।

स्वामी दयानन्दजी का कहना था कि इस जगत् में एक ही ईश्वर है जिसका कोई आकार नहीं है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का "आर्य-समाज" धर्म एक प्रकार से बंगाल में प्रचलित 'ब्राह्म-समाज' से मिलता-जुलता था। दयानन्दजी के प्रभाव में आकर काफी लोग उनके अनुयायी बन गये। वाराणसी में आर्य-समाज की स्थापना भी हो गयी।

तैलंग स्वामी के निकट कुछ भक्त लोग आये और उन्होंने सनातन-धर्म के विरुद्ध होने वाले भाषणों का उल्लेख करते हुए अपनी मनोव्यथा का जिक्र किया।

सारी बातें सुनने के बाद तैलंग स्वामी ने एक कागज पर कुछ लिखा और उसे श्री दयानन्द सरस्वती के पास भिजवा दिया। कहा जाता है कि उस पत्र को पाते ही दयानन्दजी काशी छोड़कर अन्यत्र चले गये।

इसी प्रकार की एक मनोरंजक घटना उमाचरणजी के साथ हुई थी। वे मुंगेर के एक औषधालय में नौकरी करते थे। इनके सहयोगी का नाम था—श्री महेन्द्रलाल घोष। घोष महाशय खजांची थे।

अचानक एक दिन हिसाब करने पर ज्ञात हुआ कि रोकड़ में छह सौ रुपये की कमी हो गयी है। दोनों ही व्यक्ति परेशान हो उठे। कार्यालय का सारा हिसाब-किताब यही दोनों व्यक्ति करते थे। घोष महाशय से अधिक जिम्मेदारी उमाचरणजी की थी। जाँच पड़ताल करने में तीन महीने बीत गये, पर कुछ पता नहीं चला।

सवाल नौकरी का था। आमतौर पर नौकरी छोड़ देना उचित है, पर गबन के दोष का भागी बनना जीवन का भयंकर कलंक होगा। छह सौ रुपये उन दिनों एकबड़ी रकम थी।

अन्त में इस मुसीबत से मुक्ति पाने के लिए उमाचरणजी तुरन्त काशी रवाना हो गये। उन्हें इस बात का विश्वास था कि बाबा इस बारे में सही बात बता देंगे।

आश्रम में आकर ज्योंही उन्होंने बाबा को प्रणाम किया त्योंही बाबा ने कहा—"क्यों बेटा, रुपयों की गड़बड़ी कर यहाँ पता लगाने आये हो?"

बाबा की योग-विभूति से वे अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए उमाचरणजी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने दबी जबान से कहा—"जी हाँ।"

स्वामीजी ने कहा—"जैसे तुम हो, वैसा ही तुम्हारा सहयोगी घोष है। अमुक महीने की अमुक तारीख को कलकत्ता के नरसिंह दत्त को ३०० रु० और स्ट्रैनिस्ट्रीट कम्पनी को २०० रु० भेजे गये थे। तुमने स्वयं ड्राफ्ट बनवाया था। रजिस्ट्री भी की थी। रसीद अमुक फाइल में है। उन लोगों ने रसीद भी भेजी है। वह भी फाइल में है। लेकिन इन दोनों रकमों को रोकड़ में दर्ज नहीं किया गया है। अब रहा १०० रु० का सवाल। इस रकम को घोष महाशय स्वयं खोज निकालेंगे।"

सारी बातें सुनने के पश्चात् उमाचरणजी मुंगेर रवाना हो गये। वहाँ फाइलों की जाँच करने के बाद गुरुदेव की सारी बातें मिल गयीं। अब रहा एक सौ रुपये का सवाल। उसका पता नहीं चल रहा था।

इस घटना के एक सप्ताह बाद अचानक घोष बाबू प्रसन्नता से चीख उठे— "मुखर्जी बाबू, मिल गया। एक सौ रुपये मिल गये।"

"कहाँ मिले?"

घोष महाशय ने कहा—"कुछ दिन पहले ऑफिस के सभी सामानों की रंगाई हुई थी। सन्दूक में ताजा रंग लगा था। सो उसी में सौ रुपये का नोट चिपक गया। देखो, अभी तक नोट में रंग के दाग हैं। आपके गुरुदेव ने ठीक कहा था। यह आपका सौभाग्य है कि ऐसे महान् गुरु के आप शिष्य हैं। काशी तो जाना नहीं होगा। आज यहीं से मैं उनको चरणों में शत-सहस्त्र बार प्रणाम करता हूँ।"

तैलंग स्वामी के कई शिष्यों ने उनकी अनेक योग विभूतियों का जिक्र किया है। उमाचरणजी के अलावा अन्य लोगों की पुस्तकों में ऐसी घटनाओं का उल्लेख है।

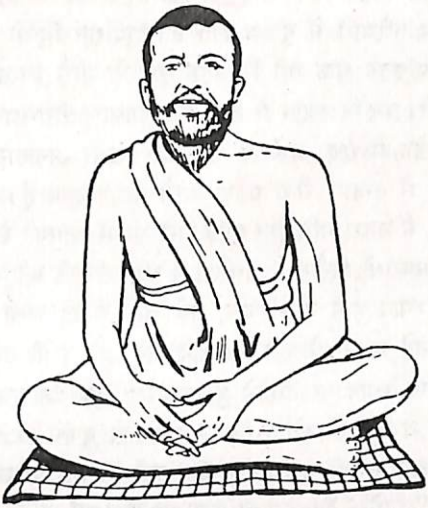
❋ ❋ ❋

अचानक एक दिन काशी के नागरिक एक मार्मिक समाचार सुनकर स्तब्ध रह गये। तैलंग स्वामीजी समाधि लेने वाले हैं, यह समाचार नगर के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। जो जहाँ था, वहीं से पंचगंगा घाट की ओर आने लगा। वाराणसी में एक-से-एक संन्यासी, साधु, महात्मा आये और गये। लेकिन किसी ने जीवित अवस्था में समाधि नहीं ली।

पौष शुक्ल पक्ष, एकादशी थी उस दिन, सन् १८८७ ई०। तैलंग स्वामी ने इसी दिन अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। राजघाट से अस्सी तक श्रद्धालु नागरिकों की भीड़ एकत्रित हो गयी थी। बाबा के शरीर को एक सन्दूक में रख दिया गया। इसके बाद नाव के द्वारा अस्सी से वरुणा तक घुमाकर निर्दिष्ट स्थान पर गंगा-गर्भ में विसर्जित कर दिया गया। घाट किनारे खड़ी जनता उन्हें अश्रु अर्घ देती रही।

आज भी पंचगंगा घाट पर स्वामीजी की भव्य मूर्ति और आश्रम श्रद्धालु जनता को आकर्षित करता है।

■



परमहंस रामकृष्ण ठाकुर

बंगाल का एक नगण्य गाँव—देरे। इस गाँव में चट्टोपाध्याय वंश के लोग एक अर्से से भगवान् रामचन्द्र के उपासक थे। कई पीढ़ियों के बाद इस वंश में खुदीराम ने सन् १७७५ ई० में जन्म लिया। बड़े होने पर पैतृक भूमि प्राप्त हुई। गाँव के बड़े किसानों में आपकी गणना थी।

इस गाँव के जमींदार रामानन्द राय चंगेज खाँ के प्रतिरूप थे। एक बार किसी मुकदमें में गवाही देने के लिए उसने खुदीराम से कहा। खुदीराम भगवान् राम के उपासक, सरल हृदय के थे। कचहरी के नाम से डरते थे, फिर झूठी गवाही कैसे देते? खुदीराम के इन्कार करने पर रामानन्द राय का पारा चढ़ गया। कुछ ही दिनों बाद एक के बाद एक करके कई मुकदमों में खुदीराम को फँसाया गया। इन मुकदमों के कारण खुदीराम को अपने मकान तथा जमीन से हाथ धोना पड़ा।

बंगाल के तीन जिलों की सीमा जहाँ आपस में मिलती है, उक्त संधिस्थल में श्रीपुर, कामारपुकुर और मुकुन्दपुर नामक तीन गाँव हैं। इनमें कामारपुकुर काफी प्रसिद्ध है। कामारपुकुर गाँव के निवासी श्री सुखलाल गोस्वामी खुदीराम के घनिष्ठ मित्र थे। अपने मित्र की दयनीय स्थिति को देखकर उन्होंने खुदीराम को अपने यहाँ शरण दी। अपने मकान का आधा भाग रहने तथा जोतने के लिए डेढ़ बीघा जमीन दान में दी। उन दिनों किसी को यह विश्वास नहीं था कि एक दिन कामारपुकुर धार्मिक स्थल बन जाएगा और गोस्वामीजी इतिहास में अमर हो जायेंगे।

जब किसी परिवार में कोई महापुरुष अवतार लेता है तब वहाँ का माहौल अगल किस्म का अपने आप बन जाता है। विभिन्न प्रकार के अलौकिक दर्शन होने लगते हैं जो सामान्य परिवारों में दुर्लभ होते हैं। खुदीराम किसी कार्यवश दूसरे गाँव गये थे। लौटते समय इतने थक गये कि एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। थके हुए थे, नींद आ गयी। उन्होंने स्वप्न में देखा कि भगवान् श्रीरामचन्द्र उनसे आग्रह कर रहे हैं–'सामने के खेत में एक अर्से से मैं उपेक्षित और अनाहार पड़ा हूँ। तुम मुझे अपने घर ले चलो। मैं तुम्हारी सेवा ग्रहण करने का इच्छुक हूँ।' खुदीराम ने गद्गद भाव से कहा–'प्रभो, मैं ठहरा भक्तिहीन दरिद्र। मेरे घर में आपकी सेवा नहीं हो सकेगी। बहुत त्रुटि होने पर अपराधी होऊँगा।' भगवान् ने कहा–'डरने की बात नहीं। मैं तुम्हारी किसी भी त्रुटि पर ध्यान नहीं दूँगा। बस, मुझे यहाँ से ले चलो।' भगवान् की इस बात पर खुदीराम इतने मगन हो गये कि रोने लगे और तभी आँखें खुल गयीं।

स्वप्न में बताये स्थान पर उन्होंने कुतूहलवश देखा कि एक शालग्राम पर एक भुजंग बैठा है। अभी वे देख ही रहे थे कि शालग्राम से भुजंग हट गया। ज्योहीं उन्होंने उस शालग्राम को उठाया त्योंही भुजंग पास के किसी बिल में प्रवेश कर गया। खुदीराम समझ गये कि यही 'रघुवीर' हैं। अत्यन्त श्रद्धा के साथ घर लाकर वे पूजा करने लगे।

खुदीराम के परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती चन्द्रा देवी तथा पुत्र रामकुमार और रामेश्वर और पुत्री कात्यायनी थे। सबसे बड़ा रामकुमार स्वस्तिवाचन और पूजा-पाठ करता था। कहा जाता है कि आद्याशक्ति ने अपने इस उपासक की जीभ पर अपनी अँगुली से सिद्ध होने का मंत्र लिख दिया था। इस गुण के कारण रामकुमार किसी भी रोगी को देखकर यह बता देता था कि वह स्वस्थ होगा या नहीं। इस गुण के कारण रामकुमार की ख्याति चारों ओर फैल गयी।

एक बार गंगा-स्नान करने कलकत्ता आये। घाट पर स्नान करते वक्त उन्होंने देखा कि एक महिला को पालकी सहित गंगा में डुबोकर नहलाया जा रहा है। शायद कड़े पर्दे के कारण ऐसा किया जा रहा था। फिर भी उसकी शक्ल दिखाई दे गयी। उस महिला की आकृति देखते ही अपने गुण के प्रभाव से रामकुमार बोल उठे—''आज तुम्हारा आखिरी गंगा-स्नान है। कल योग तुम्हें गंगा में विसर्जन कर देंगे।''

इनके पीछे उक्त महिला का पति खड़ा था। उसे यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। वह इन्हें आदर के साथ घर लाया। दूसरे दिन जब पत्नी चल बसी तब इन्हें प्रणाम करते हुए कहा—''आपके कथन की जाँच के लिए मैं आपको यहाँ ले आया था। अपराध क्षमा करें। अगर बात गलत होती तो आज आपका अपमान करके भगा देता।''

अपने विवाह के पश्चात् जब रामकुमार ने अपनी पत्नी की शक्ल देखी तब कहा—''अगर यह कभी माँ बनी तो निश्चित रूप में मर जायगी।'' यही वजह है कि वे पिता बनने से बराबर बचते रहे। रामकुमार जब पैंतीस वर्ष के थे तब पत्नी गर्भवती हुई और प्रसव के उपरांत उसकी मृत्यु हो गयी।''

दशहरे के बाद क्वार के महीने में लक्ष्मी पूजा होती है। रामकुमार भुरसुबो गाँव में अपने एक यजमान के यहाँ पूजा करने गये थे। आधी रात हो गयी, लड़का घर नहीं आया। माँ उद्विग्न हो उठी। घर से बाहर आकर लड़के के आने की बाट जोहने लगी। थोड़ी देर बाद चन्द्रा देवी को लगा जैसे भुरसुबो गाँव की ओर से कोई आ रहा है। लड़का आ रहा है, समझकर वे आगे बढ़ गयीं। पास जाने पर देखा कि एक अपूर्व सुन्दरी अनेक अलंकारों से सजी हुई थी। सरल भाव से उन्होंने पूछा— ''बेटी, तुम किधर से आ रही हो?''

उत्तर मिला—''भुरसुबो गाँव से आ रही हूँ।''

चन्द्रादेवी ने पूछा—''मेरे पुत्र रामकुमार को देखा था? वह उसी गाँव में पूजा करने गया है, अभी तक लौटा नहीं।''

रमणी ने कहा—''आपका पुत्र जिस घर में पूजा कर रहा था, मैं उसी घर से आ रही हूँ। डरने की बात नहीं है, वह आता ही होगा।''

चन्द्रादेवी ने कहा—''अब इतनी रात को अकेली कहाँ जाओगी? मेरे यहाँ ठहर जाओ, कल सबेरे चली जाना।''

रमणी ने कहा—''नहीं, मुझे बहुत दूर जाना है। आपके यहाँ फिर कभी आऊँगी।''

चन्द्रादेवी अपने पुत्र की प्रतीक्षा में परेशान थी। उन्हें इस बात पर तनिक भी संदेह नहीं हुआ कि आधी रात को जेवरों से लदी अकेली युवती भुरसुबो से कैसे चली आ रही है? यह महिला उनके लड़के को कैसे पहचान गयी। तभी उन्होंने देखा कि पड़ोसी के पुआल की ओर जाते-जाते वह महिला गायब हो गयी। यह दृश्य देखकर वे वहाँ आयीं तो देखा—कहीं कोई चिह्न नहीं। एकाएक वह सोचने लगी—क्या महिला के भेष में वह कोई देवी थी? घर में आकर चन्द्रादेवी ने अपने पति से सारी बातें बतायीं।

खुदीराम ने कहा—''श्री श्री लक्ष्मी देवी ने आज कृपा करके तुम्हें दर्शन दिया। तुम धन्य हो।''

थोड़ी देर बाद रामकुमार जब वापस आया तब वह भी घटना का विवरण सुनकर चकित रह गया। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद खुदीराम गया-यात्रा के लिए रवाना हुए। वहाँ से वापस आने के बाद चन्द्रादेवी ने एक अद्‌भुत कहानी सुनायी। उन्होंने कहा—''एक रात को मैंने स्वप्न में देखा कि एक ज्योतिर्मय देवता मेरी बगल में सोया है। मैंने सोचा कि कोई बदमाश है। यह सोचते ही मैं डर गयी। तुरत रोशनी की तो देखा कि कहीं कोई नहीं। दरवाजा भीतर से बन्द है। इसी प्रकार एक घटना और हुई। एक दिन शिव-मंदिर के समीप खड़ी धनिया से बातें कर रही थी। ठीक उसी समय महादेव के अंग से एक दिव्य ज्योति निकलकर तरंग की तरह आकर मुझे आच्छादित कर लिया। मैं तुरन्त बेहोश होकर गिर पड़ी।''

इन दोनों घटनाओं को सुनने के बाद खुदीराम ने कहा—''मेरे साथ भी गया में अद्‌भुत घटना हुई थी। श्राद्धादि कार्यों से खाली होकर मैं डेरे पर आकर सोया था।

रात को स्वप्न में देखा कि मैं मंदिर में खड़ा हूँ। मेरे सभी पूर्व पुरुष हाथ जोड़े खड़े हैं। मंदिर के भीतर एक सिंहासन पर एक ज्योतिर्मय पुरुष बैठे हैं। उक्त पुरुष ने मुझसे कहा—'खुदीराम, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारे यहाँ पुत्र-रूप में जन्म लेकर तुम्हारी सेवा ग्रहण करूँगा।' यह बात सुनकर मैं तो आत्मविभोर हो उठा। मैंने कहा—'भगवान्, मुझे यह सौभाग्य प्रदान न करें तो अच्छा होगा। मेरे जैसे दरिद्र ब्राह्मण के घर आने पर आपको काफी कष्ट होगा। इससे अच्छा है कि आप मुझे अपना दर्शन बराबर देते रहें।' लेकिन प्रभु ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'डरो मत खुदीराम। तुम जो कुछ खिलाओगे, उसे मैं तृप्ति के साथ स्वीकार करूँगा।' अब इस बात पर मैं क्या कहता?''

थोड़ी देर चुप रहने के बाद खुदीराम ने पुनः कहा—''सुनो, इन बातों की चर्चा अब किसी से मत करना। श्री रघुवीर की कृपा से जो कुछ होना है, वह होगा ही। सारी घटनाएँ कल्याणकारी हैं। लगता है, हमारे यहाँ कोई बालक जन्म लेगा।''

इन घटनाओं का उल्लेख करने का कारण यह है कि खुदीराम, चन्द्रादेवी और रामकुमार सभी निरन्तर अलौकिक घटनाओं से जुड़े थे। इस परिवार पर भगवान् की असीम कृपा थी वर्ना ऐसी वारदातें क्यों होतीं?

कुछ दिनों बाद चन्द्रादेवी गर्भवती हुईं। इस बीच उन्हें अक्सर अलौकिक दर्शन होने लगे। कभी किसी को हंस पर सवार आते देखती तो कभी शिव-मंदिर से ज्योति आते देखती। बातचीत के सिलसिले में पति से उल्लेख करने पर खुदीराम ने कहा—''तुम घबराओ नहीं। श्री रघुवीर की कृपा से जो आ रहा है, वह सब ठीक कर लेगा।''

१७ फरवरी, सन् १८३६ ई० शुक्ल पक्ष, बुधवार के दिन भोर के समय एक बालक ने चन्द्रादेवी के गर्भ से जन्म लिया। सौरी में धनिया थीं, जबानी उसने बाहर आकर इस बात की सूचना दी। जन्मकुंडली बनाने वाले पंडितों ने कहा—''जातक का लग्न देखते हुए कहा जा सकता है कि बालक असाधारण है।'' खुदीराम ने गया में स्वप्न देखा था, इसलिए बालक का नाम उन्होंने गदाधर रखा।

मातृगर्भ में आने के पूर्व से ही बालक अद्भुत घटनाओं से जुड़ा था। बाद में भी चमत्कार होने लगे। गदाधर का अन्नप्राशन खुदीराम सामान्य ढंग से करना चाहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि केवल पड़ोसियों को बुलायेंगे। निश्चित दिन के एक दिन पूर्व गाँव के सभी ब्राह्मण खुदीराम के घर आकर कह गये—''हम आपके नवजातक पुत्र के अन्नप्राशन में भोजन करने आयेंगे।''

ब्राह्मणों की बातें सुनकर खुदीराम परेशान हो उठे। इतने लोगों को भोजन देना, उनके लिए कठिन था। जब लोग घर आकर जबरन की माँग कर बैठें तब कुछ करना पड़ेगा। वे इस मुसीबत से मुक्ति पाने के लिए गाँव के जमींदार धर्मदास लाहा के पास गये। सारी बातें सुनने के बाद लाहाजी ने कहा—''आप नाहक घबरा रहे हैं। मेरे रहते आपको कोई कष्ट नहीं होगा। मैं सारा प्रबंध कर दूँगा।''

लाहाजी से आश्वासन पाकर खुदीराम आश्वस्त हो गये। लाहाजी ने मुस्कराते हुए कहा—"अब आप जाइये।" खुदीराम को यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह षड्यंत्र लाहाजी ने किया था। गाँव के पंडितों को उन्होंने ही भेजा था।

गदाधर को स्तनपान कराने के पश्चात् चन्द्रादेवी उसे बिछौने पर सुलाकर गृहकार्य करने चली गयी। थोड़ी देर बाद उस कमरे में आयी तो देखा—खाट पर गदाधर के स्थान पर एक दीर्घकाय पुरुष सो रहा है। भय से चीखती हुई वे बाहर आकर पति को बुलाने लगीं। बाद में पति-पत्नी ने आकर देखा कि खाट पर गदाधर ही सो रहा है। चन्द्रादेवी ने कहा—"यह अजीब तमाशा है। अभी कुछ देर पहले मैं अपनी आँखों से एक दीर्घकाय पुरुष को सोता देख गयी थी।"

खुदीराम ने कहा—"यह लड़का रघुवीर की देन है। अपने जन्म के पूर्व से ही चमत्कार दिखा रहा है। चिन्ता मत करो। जो कुछ हो रहा है, सब भगवान् की लीला है।"

* * *

धीरे-धीरे बालक बड़ा हो गया। पाठशाला में भर्ती हुआ। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा वह खेलकूद में अधिक भाग लेता था। कुम्हारों की बस्ती में जाकर उनके बनाये खिलौनों में रंग लगाना, कभी स्नान-घाट पर जाकर उपद्रव करना, नाटकों में स्त्री-पार्ट करना आदि करता रहा। जिन स्थानों पर जाने से रात के समय हमउम्र के बालक डरते थे, वहाँ वह बेखटक चला जाता था। बालक की इस शक्ति को देखकर लोग चकित रहते थे।

सन् १८४२ ई० में दुर्गापूजा के समय खुदीराम अपने भांजे के अनुरोध पर उसके यहाँ गये। वहाँ अतिसार से पीड़ित हुए। दशहरा के दिन 'श्री रघुवीर' नाम जपते हुए सुरधाम चले गये। उन दिनों गदाधर की उम्र सात वर्ष थी।

उपनयन के बाद गदाधर में तेजी से परिवर्तन होने लगे। स्वप्न में कभी वह अपने पिताजी को देखता तो कभी साधु-संतों को। एक बार पड़ोसी सीतानाथ पाइन के यहाँ शिवरात्रि के दिन 'शिव-महिमा' नाटक का अभिनय होने वाला था। ऐन मौके पर शिवजी का पार्ट करने वाला बालक अस्वस्थ हो गया। नाटक के प्रबंधक गदाधर को ले आये और कहा कि शिवजी के पार्ट में संवाद अधिक नहीं कहना है। शिव बनकर ध्यानस्थ रहना है। गदाधर शिव के रूप में ध्यानस्थ हुआ और उसकी समाधि लग गयी। अक्सर जब देवी-महिमा का पाठ होता या वह ध्यान लगाता था तब उसे समाधि लग जाती थी। अचानक उसकी इस स्थिति को देखकर लोग घबरा उठे। सिर पर पानी छिड़का गया, राम नाम सुनाया गया तब उसकी समाधि भंग हुई।

इस घटना के कुछ वर्षों बाद रामकुमार की पत्नी ने पुत्र प्रसव किया और उसका निधन हो गया । जब तक वह जीवित रही तब तक घर में कोई कमी नहीं हुई। सभी

लोग उसे लक्ष्मी समझते थे। उसके निधन के बाद से स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होने लगी। पिता के निधन के पश्चात् घर की सारी जिम्मेदारी रामकुमार पर आ गयी। गदाधर से वे ३१ वर्ष बड़े थे। अंत में रोजगार की तलाश में कलकत्ता चले आये। यहाँ झामापुकुर नामक स्थान में टोल (चटशाला) खोलकर छात्रों को पढ़ाने लगे। अक्सर जब घर आते तो देखते कि गदाधर पढ़ने-लिखने की जगह दिनभर उपद्रव करता रहता है। माँ की कोई बात सुनता ही नहीं। इस तरह वह मूर्ख बन जायगा। यह सब सोचकर उसे अपने साथ कलकत्ता ले आये। यहाँ अपनी चटशाला में पढ़ाने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों कलकत्ता के एक राजघराने में विचित्र घटना हुई। रानी रासमणि की बहुत दिनों से इच्छा थी कि काशी जाकर बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा का दर्शन करूँ। इस कार्य के लिए यात्रा की सारी तैयारी पूरी हो गयी। इसी बीच उनके पति का निधन हो गया। फलतः यह यात्रा स्थगित हो गयी। विशाल संपत्ति की सारी जिम्मेदारी रानी पर आ गयी। कुछ दिनों बाद सन् १८४६ ई० में पुनः रानी ने काशी जाने का निश्चय किया। यात्रा करने के एक दिन पूर्व रात्रि में रानी को स्वप्न में देवी ने आदेश दिया—"काशी जाने की आवश्यकता नहीं है। भागीरथी के किनारे किसी मनोरम स्थान पर मेरी मूर्ति प्रतिष्ठित कर दो और भोग-पूजा का प्रबंध कर दो। मैं उस मूर्ति में आविर्भूत होकर तेरी पूजा-भोग ग्रहण करूँगी।"

देवी के आदेश से रानी अभिभूत हो उठीं। काशी-यात्रा स्थगित कर वे मंदिर के निर्माण में लग गयीं। निर्माण कराते समय रानी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं शूद्र (कैवर्त) हूँ। मेरे द्वारा निर्मित मंदिर में अगर ब्राह्मण पुजारी पूजा न करने आये या लोग भोग स्वीकार न करें तो क्या होगा? इस शंका के निवारण के लिए उन्होंने मूर्धन्य पंडितों को अपने यहाँ आमंत्रित करके मंदिर के बारे में जानकारी माँगी। सभी पंडितों ने एक मत से कहा—"जाति से आप शूद्र हैं अतएव शास्त्रकारों के मत से कोई भी ब्राह्मण इस मंदिर में न तो मूर्ति की प्रतिष्ठा करेगा और न भोग ग्रहण करेगा।"

पंडित-मंडली की इस राय को सुनकर रानी रासमणि सन्न रह गयी। अब क्या हो? इतने उत्साह और भक्ति के साथ मंदिर का निर्माण हुआ, मूर्ति भी बन गयी, अब प्रतिष्ठा के प्रश्न पर सामाजिक बाधा आ गयी।

तभी झामापुकुर से रामकुमार चट्टोपाध्याय ने अप्रत्याशित रूप से व्यवस्था दी—"प्रतिष्ठा के पूर्व अगर रानी उक्त संपत्ति किसी ब्राह्मण को दान कर दे तो वही ब्राह्मण मूर्ति की प्रतिष्ठा कर सकता है। ऐसे ब्राह्मण द्वारा अन्न-भोग ग्रहण करने में शास्त्र-नियमों का पालन होगा। उच्च वर्ण के लोग भी अगर वहाँ प्रसाद ग्रहण करेंगे तो दोष के भागी नहीं होंगे।"

इस व्यवस्था को पाकर रानी का हृदय खिल उठा। उन्होंने पंडित-मंडली से पुनः अनुरोध किया, पर कोई आगे नहीं आया। यहाँ तक कि पुजारी-पद के लिए लम्बी तनख्वाह देने का प्रलोभन भी दिया गया। सभी लोगों की राय थी कि यह कार्य सामाजिक

प्रथा के विरुद्ध है। ऐसा होने पर भी कोई ब्राह्मण वहाँ प्रसाद ग्रहण नहीं करेगा। परन्तु किसी भी पंडित को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि रामकुमारजी की उक्त व्यवस्था शास्त्रविरुद्ध है।

रानी के यहाँ कामापुकुर निवासी महेश चटर्जी नामक एक कर्मचारी था। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उपाय सोचने लगा। उसे यह मालूम था कि रामकुमार की स्थिति अच्छी नहीं है। जब उन्होंने व्यवस्था दी है तो जरा झुककर आवेदन करने पर वे पुजारी बन सकते हैं। लेकिन स्वतः आवेदन करने में हिचकने लगा। उसने रानी को अपना सुझाव देकर कहा—''आप अगर रामकुमारजी को इस आशय का पत्र लिखकर अनुरोध करें तो वे राजी हो सकते हैं। मेरे गाँव के तांत्रिक पंडित हैं। बाकी बातें मैं समझा दूँगा।''

महेश के कथनानुसार रानी ने पत्र लिखा। रामकुमार ने सोचा—मेरे अस्वीकार करने पर जगदम्बा माता की पूजा नहीं होगी। रानी ने जब यह लिखा है कि कुछ दिन कार्यभार सम्हाल दें। आगे योग्य पुजारी मिलते ही आप चले जा सकते हैं, तब कोई हर्ज नहीं। रामकुमार की स्वीकृति मिलते ही तैयारी होने लगी। उस दिन काशी, नवद्वीप, श्रीहट्ट, कान्यकुब्ज आदि जगहों से पंडित आये। सभी को रेशमी वस्त्र, उत्तरीय और दक्षिणा में एक-एक गिन्नी दी गयी। इस कार्य में रानी ने ९ लाख रुपये व्यय किया था।

समारोह के दिन गदाधर भी आया था, पर वह प्रसाद ग्रहण करने नहीं गया। शाम को बाजार से एक पैसे की लाई खरीदकर डेरे पर आकर सो गया। दूसरे दिन पुनः बड़े भैया को वापस न आते देख गदाधर आया। रामकुमार के अनुरोध करने पर भी वह नहीं रुका। झामापुकुर में बड़े भैया की वापसी की राह वह एक सप्ताह तक देखता रहा। बाद में आठवें दिन वह पुनः दक्षिणेश्वर आया तो देखा कि बड़े भैया को मंदिर का स्थायी रूप से पुजारी बना दिया गया है।

रामकुमार ने मूर्ति प्रतिष्ठा करने के बाद सोचा था कि दो-चार दिन के भीतर रानी कोई पुजारी ठीक कर लेंगी तब मैं पुनः अपनी चटशाला में चला जाऊँगा। स्थायी रूप से पुजारी बनने की इच्छा से वे यहाँ नहीं आये थे। लेकिन उनसे अनुरोध करने के अलावा काफी दबाव भी डाला गया। लाचारी में उन्हें पुजारी-पद ग्रहण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। गदाधर ने भी समझ लिया कि अब भैया चटशाला वापस नहीं जायेंगे। फलस्वरूप वह भी यहीं रहने लगा।

मूर्ति स्थापना के बाद से रानी के सबसे छोटे दामाद मथुरानाथ अक्सर मंदिर की व्यवस्था देखने आते थे। रानी को पुत्र-लाभ नहीं हुआ था। मथुरानाथ रानी की सारी जायदाद की देखरेख करते थे। जब कभी वे मंदिर आते तब उनकी नजर गदाधर पर पड़ती । उसे गौर से देखते रहने के कारण उसके प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया।

एक दिन उन्होंने रामकुमार से कहा कि आप मंदिर के पूजा-कार्य में छोटे पुजारी को क्यों नहीं लगा देते। रामकुमारजी अपने छोटे भाई के स्वभाव से परिचित थे। अभी

तक वह भोग नहीं खाता था। अपने लिए अलग से भोजन बनाया करता था। रामकुमार ने उसके स्वभाव की चर्चा करते हुए कहा कि उसे इस कार्य में लगाना कठिन है। रामकुमार की राय सुनकर मथुरानाथ ने निश्चय किया कि चाहे जो भी हो, गदाधर को देवी की सेवा में लगाऊँगा।

ठीक इन्हीं दिनों रामकुमार का भांजा हृदयराम नौकरी की तलाश में अपने मामा के पास आया। गदाधर से उम्र में चार वर्ष छोटा था। हमउम्र होने के कारण दोनों एक साथ खेलते, घूमते और काम करते थे। गदाधर गंगा-किनारे से मिट्टी लाकर शिव की मूर्ति इस ढंग से बनाता था जिसे देखकर आश्चर्य होता था। एक दिन मथुरानाथ ने देखा और एक मूर्ति ले जाकर रानी को दिखायी। दोनों चकित रह गये। इस तरह की कलापूर्ण मूर्ति बाजार में जल्दी दिखाई नहीं देती।

दूसरे दिन मंदिर आने पर गदाधर उन्हें देखते ही आड़ में छिप गया। हृदयराम के पूछने पर गदाधर ने कहा—"आज वे मुझे पूजा करने के लिए कहेंगे। देवी के अंग पर लाखों रुपये के जेवर हैं। कहीं चोरी हो गयी तो मुफ्त में झंझट में फँस जाऊँगा। तू अगर उन जेवरों की जिम्मेदारी ले तो मैं उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता हूँ।"

हृदयराम को नौकरी की तलाश थी, उसने झट स्वीकार कर लिया। गदाधर ने जैसा सोचा था, वही हुआ। मथुरानाथ ने अनुरोध करके पूजा-कार्य में गदाधर को लगा दिया। रामकुमार स्वयं अपने छोटे भाई को पूजा-कार्य की शिक्षा देने लगे।

गदाधर ने एक दिन हृदयराम से कहा—"ध्यान करने के लिए पंचवटी की स्थापना करनी चाहिए।" इसके पूर्व वे आमलकी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान लगाया करते थे। अब वह गिर गया था। सुझाव के अनुसार बरगद, पीपल आदि पाँच पेड़ लगाये गये और पंचवटी की स्थापना हो गयी। यहाँ नियमित रूप से गदाधर आते और ध्यानस्थ हो जाते थे।

सहसा बड़े भाई का निधन हो गया। अब पूजा की सारी जिम्मेदारी गदाधर को दे दी गयी। काली माता का पुजारी बन जाने के बाद उनकी भाव समाधि अधिक होने लगी। एक दिन काली माँ के सामने नाराज होकर बोले—"तुमने रामप्रसाद को दर्शन दिया, मुझे क्यों नहीं देती?" कहते-कहते उनके दिल में दर्द उभड़ा। उसी हालत में वे बगल के कमरे में गये और वहाँ से खड्ग उठा लाये। उद्देश्य था—माँ के सामने अपनी गर्दन काटना। ठीक उसी समय उन्हें काली माँ का दर्शन हुआ। साथ ही वे बेहोश होकर गिर पड़े।

इस घटना के बाद से उनकी स्थिति अद्‌भुत ढंग की हो गयी। पूजा करते समय नैवेद्य लेकर कहते—'ले, माँ खा ले। पहले मैं खाऊँ?' फिर स्वयं कुछ खाकर शेष भाग मूर्ति के मुँह के पास ले जाते। कभी कहते—'क्या कहा माँ? तेरी खाट पर सो जाऊँ? ठीक है। सो जाता हूँ।' कहने के बाद पास ही रखी खाट पर सो जाते। कभी देवी पर समस्त फूल चढ़ाकर निस्पन्द हो जाते तो कभी नैवेद्य भोग देकर घंटों अपनी आँखें बन्द

कर बैठे रहते ताकि काली माता खा लें। अक्सर 'माँ-माँ' कहते हुए जमीन में लोटने लगते। अगर कभी कोई उनसे माँ का नाम या गीत गाने को कहता तब गाते-गाते भावावेश में आ जाते थे। एक प्रकार से वे काली माता के प्रेम में पागल हो गये थे।

मामा की दशा देखकर हृदयराम चिन्तित हो उठा। उसने सोचा कि अगर शीघ्र इसका उपचार न किया गया तो कठिनाई होगी। बात ठाकुरबाड़ी के कर्मचारियों के पास पहुँची। इन लोगों ने मथुरानाथ को सुझाव दिया कि छोटे पुजारी पूजा नहीं, अनाचार करते हैं। एक दिन मथुरानाथ स्वयं आये और आड़ में खड़े होकर गदाधर की पूजा देखने लगे। गदाधर अनुरोध करते हुए काली माता के सामने भाव-विह्वल होकर अश्रुपात कर रहे थे। दृश्य देखने के बाद मथुरानाथ ने समझ लिया कि अब देवी जागृत हो जायेंगी या हो गयी हैं। मंदिर का निर्माण सफल हो गया है। वहाँ से वापस आकर उन्होंने सभी कर्मचारियों से कहा—''छोटे पुजारी जिस तरह पूजा कर रहे हैं, करने दो। उन्हें कोई कुछ न कहे। आगे जो करना है, मैं करूँगा।''

गदाधर के कारण पूजा में व्याघात होने लगा। इसी बीच रामतारक चटर्जी नामक एक नये पुजारी की नियुक्ति की गयी। रामतारक सिद्ध तांत्रिक होने के अलावा गदाधर के चचेरे भाई थे। नौकरी की तलाश में कलकत्ता आये थे। रामतारक तांत्रिक हैं, जानकर ठाकुरबाड़ी के सभी कर्मचारी उनसे दूर-दूर रहने लगे। उनके स्वभाव की आलोचना पीठ पीछे की जाती थी। जब यह बात गदाधर को ज्ञात हुई तब उन्होंने इसकी चर्चा रामतारक से की। रामतारक बड़े भाई तथा पुजारी होने के कारण बुरा मान गये। बोले—''छोटा भाई होकर तू मेरी निन्दा कर रहा है? अब तू मुँह से खून उगलेगा।'' गदाधर ने उन्हें काफी समझाया, पर वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुए।

इस घटना के कुछ दिनों बाद रात ८-६ बजे गदाधरजी के मुँह से खून निकलने लगा। यह समाचार सुनते ही जो जहाँ था, वहीं से दौड़ा आया। रामतारक भी आये। उन्हें देखते ही गदाधर ने कहा—''भैया, आपने शाप देकर मेरी क्या हालत कर दी, देखो।'' इतना कहकर वे रोने लगे।

तभी वहाँ न जाने कहाँ से एक संन्यासी आये। उन्होंने रक्त का परीक्षण करने के बाद कहा—''चिन्ता की बात नहीं। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ है। लगता है तुम योग-साधना करते थे। हठयोग में चरम समाधि होती है। तुम्हें भी हुआ है। सुषम्ना-द्वार खुलकर शरीर का रक्त मस्तक पर चढ़ गया था। अब वह मस्तक पर न चढ़कर मुँह के द्वारा निकल गया। यह अच्छा ही हुआ। अगर मस्तक पर चढ़ जाता तो यह समाधि जल्द टूटती नहीं। लगता है, जगन्माता तुम्हारे माध्यम से कोई कार्य करना चाहती हैं।''

संन्यासी की राय सुनकर लोगों को संतोष हो गया। इस घटना के बाद से रामतारक बराबर गदाधर के हाव, भाव, समाधि, पूजा आदि पर ध्यान देने लगा। जब गदाधर भाव-समाधि में डूब जाते तब रामतारक पैनी दृष्टि से निरीक्षण करता था। हृदयराम

की जबानी उसे यह भी ज्ञात हुआ कि मामा अक्सर रात को पंचवटी में दिगम्बर होकर साधना करते हैं। ''माँ-माँ'' स्वर हवा में गूँजता है। सारी बातें देखने के बाद एक दिन रामतारक ने गदाधर से कहा—''रामकृष्ण, अब तुम्हें पहचान गया हूँ। तुम पर ईश्वर का आवेश होता है।''

साधना के प्रथम चार वर्ष तक रामकृष्ण ठाकुर (गदाधर का वास्तविक नाम) की भाव-समाधि, आवेश, दर्शन आदि देखते रहने पर मथुरानाथ ने सोचा कि शायद कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने के कारण इनको यह दशा हो रही है। उनकी परीक्षा लेने के लिए अपूर्व सुन्दरी वारांगनाओं को दक्षिणेश्वर लाया गया ताकि वे अपने हावभाव से रामकृष्ण को आकर्षित कर सकें। बाद में इन्हें मछुआ बाजार वेश्याओं के मुहल्ले में ले जाया गया। सभी वारांगनाएँ इन्हें आकर्षित करने लगीं। लेकिन इन सभी महिलाओं में इन्हें जगन्माता का रूप दिखाई देने लगा। जिसके सामने जाते, ''माँ-माँ'' कहते हुए उसके सामने चेतनाशून्य हो जाते। दूसरी ओर वारांगनाओं की दशा विचित्र हो जाती। उनका हृदय भगवत्-कृपा से वात्सल्य रस से परिपूर्ण हो उठता। सारा दृश्य मथुरानाथ की दृष्टि से गुजरता रहा। उन्हें इससे बड़ा दुःख हुआ। अपने इस कुकर्म के लिए वे मन ही मन पश्चात्ताप करने लगे। अब शनै-शनैः रामकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति-श्रद्धा बढ़ती गयी। यहाँ तक कि बिना एक पल देखे उन्हें चैन नहीं मिलता था।

सबसे छोटा पुत्र होने के कारण चन्द्रादेवी की ममता रामकृष्ण पर अधिक थी। इधर रामकुमार के निधन के बाद से वे उसके बारे में अधिक चिन्तित रहती थीं। कलकत्ते से उसके बारे में समाचार आया कि रामकृष्ण उन्मादमस्त हो गया है। तब मँझले भैया रामेश्वर उसे जाकर ले आये। लेकिन स्वयं पुजारी बनने की प्रतिश्रुति दे आये।

गाँव में बुलाकर माँ ने ओझा को दिखाया। वैद्य से इलाज कराया। लेकिन इन सबसे कोई लाभ नहीं हुआ। बुजुर्गों ने राय दी कि लड़के का विवाह शीघ्र कर दो। माँ को यह राय पसन्द आयी। जयरामबाटी गाँव के श्री रामचन्द्र मुखर्जी की बेटी शारदा (सारदा) देवी के साथ रामकृष्ण का विवाह हो गया। उन दिनों शारदा देवी की उम्र पाँच और रामकृष्ण की इक्कीस साल थी।

विवाह के एक वर्ष बाद रामकृष्ण ठाकुर दक्षिणेश्वर चले आये। यहाँ आने के बाद एक दिन एक भैरवी ब्राह्मणी आयी। रामकृष्ण ठाकुर से वार्तालाप करने तथा इनकी भाव-समाधि देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुई। एक दिन बातचीत के सिलसिले में भैरवी ने कहा—''तुम तंत्र-साधना करो। मैं तुम्हें इस साधना का ज्ञान दूँगी।''

कुछ दिनों बाद भैरवी ने मथुरानाथ से कहा—''ठाकुर साधारण मानव नहीं हैं। ईश्वर के अवतार हैं। आप इनका ख्याल विशेष रूप से रखियेगा। आपके लिए ठाकुर कल्याणकारी होंगे।''

मथुरानाथ को इसका प्रत्यक्ष अनुभव था। एक बार रानी साहिबा के साथ मंदिर-दर्शन करने आये। पूजा समाप्त होने पर रानी ने ठाकुर से आग्रह किया कि वे कोई

भजन सुनायें। रामकृष्ण माँ काली-महिमा भजन गाने लगे। एकाएक भजन रोककर उन्होंने रानी की पीठ पर एक धौल जमा दिया और तब कहा—''यहाँ बैठकर भी वही सब चिन्ता कर रही हो?''

रानी को मारना था कि सभी कर्मचारी क्रोध से भड़क उठे। मथुरानाथ की आँखें लाल हो उठीं। सभी जानते थे कि ठाकुर पागल प्रकृति के हैं। तभी रानी ने हाथ के इशारे से सभी को रोक दिया और ठाकुर को प्रणाम करती हुई बोली—''ठाकुर, गलती को क्षमा कर दें। आप भजन सुनाइये। अब मन लगाकर श्रवण करूँगी।''

बाद में रानी आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली—''ठाकुर अन्तर्यामी हैं। भजन सुनते समय मेरा ध्यान एक मुकदमे की ओर चला गया था।''

रानी की बातें सुनकर मथुरानाथ की भक्ति ठाकुर के प्रति बढ़ गयी। यक्ष की तरह वे हमेशा उनका ध्यान रखने लगे। हृदय की जबानी उन्हें यह भी ज्ञात हुआ था कि काली माता सदेह मामा के सामने प्रकट होती हैं। इनके हाथ से भोजन खाती हैं, बातें करती हैं।

भैरवी से तंत्र-साधना सीखने पर ठाकुर के स्वभाव में किंचित् परिवर्तन हुआ। मथुरानाथ चिन्तित हो उठे। डॉ० गंगा सेन से इलाज करवाने लगे। गाँव में यह समाचार पहुँचते ही माँ दक्षिणेश्वर आ गयी। अब हृदयराम तथा एक और भांजा रामलाल तीनों मिलकर ठाकुर की देखरेख करने लगे।

* * *

ठाकुर की साधना बराबर उन्नत होती गयी। कुछ दिनों बाद वे अद्वैत-साधना की ओर उन्मुख हुए। इस साधना से उनकी स्थिति चिन्तनीय हो उठी। भोजन करना है, सोना है, शौच के लिए जाना है आदि ये बातें मन में उत्पन्न नहीं होती थीं। अन्य व्यक्तियों से बातें करना दूर रहा, तुम तुम नहीं हो, मैं मैं नहीं हूँ, ऐसी स्थिति हो गयी। इस साधना में वे कितने उन्नत हो गये थे, इसका उदाहरण एक घटना से मिल जाता है।

परिव्राजकाचार्य तोतापुरी भ्रमण करते हुए दक्षिणेश्वर आये और मंदिर के घाट पर बैठ गये। घूमते हुए ठाकुर भी उनके पास आकर बैठ गये । ज्योंही तोतापुरी की नजर ठाकुर पर पड़ी, त्योंही वे चौंक उठे। अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से उन्होंने ठाकुर की शक्ति को पहचान लिया। यह युवक सामान्य व्यक्ति नहीं है, असामान्य योगी है। इस तरह के साधक सहज ही दिखाई नहीं देते। ठाकुर को अच्छी तरह देखने के बाद तोतापुरी ने स्वत: कहा—''तुम उत्तम अधिकारी मालूम होते हो। मैं तुम्हें वेदान्त-साधना सिखाना चाहता हूँ। क्या तुम सीखोगे?''

ठाकुर ने कहा—''मैं क्या करूँगा या नहीं करूँगा, यह मैं नहीं जानता। मेरी माँ सब जानती हैं। अगर वे आदेश देंगी तो करूँगा।''

तोतापुरी ने कहा—''ठीक है। जाओ, अपनी माँ से इस बारे में पूछ आओ। मैं यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरूँगा।''

ठाकुर वहाँ से सीधे जगदम्बा के मंदिर में आये। यहाँ भावाविष्ट होते ही उन्हें जगन्माता की वाणी सुनाई दी—''जाओ, उनसे शिक्षा ग्रहण करो। इसी कार्य के लिए उनका यहाँ आगमन हुआ है।''

मंदिर से वापस आकर उन्होंने माँ का आदेश सुनाया। रामकृष्ण ठाकुर के बालकोचित स्वभाव से स्वामी तोतापुरी प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—''वेदान्त-साधना शिक्षा ग्रहण करने के लिए तुम्हें शिखा-सूत्र का परित्याग करना पड़ेगा। गेरुआ वस्त्र पहनना पड़ेगा।''

ठाकुर ने कहा—''जो कुछ करना है, चुपचाप करिये, वर्ना मेरी माँ (सगी माँ) को कष्ट होगा।''

इसके बाद शुभ दिन देखकर तोतापुरी ने ठाकुर को संन्यास ग्रहण कराया। एक अर्से तक वेदान्त-साधना कराने पर भी जब ठाकुर को निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं हुई तब तोतापुरीजी बिगड़ उठे—''होगा कैसे नहीं?'' उन्होंने काँच के एक टुकड़े से ठाकुर की दोनों भौहों के मध्य जोर से कोंच दिया और तब कहा—''इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करो।''

इसके पूर्व जितनी बार ठाकुर ध्यानस्थ होते थे तब उनका ध्यान जगन्माता की ओर चला जाता था। इस बार दृढ़ संकल्प के साथ बिन्दु पर ध्यान लगाने लगे। शिष्य को ध्यानस्थ होते देख तोतापुरी ने कमरे का दरवाजा बन्द करके बाहर से ताला बन्द कर दिया ताकि कोई रामकृष्ण का ध्यान भंग न कर सके। जब उसकी समाधि भंग होगी तब वह स्वयं दरवाजा खोलने के लिए कहेगा।

दिन गुजरा, रात गुजरी। दिन के बाद दूसरा दिन गुजर गया। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। रामकृष्ण ने दरवाजा खटखटाया नहीं । तोतापुरी बेचैन होकर आये। ताला खोलकर उन्होंने देखा—जिस प्रकार वे रामकृष्ण को बैठा गये थे, ठीक उसी प्रकार बैठा है। शरीर में प्राण का प्रकाश नहीं है। मुख-मंडल प्रशान्त, गंभीर और ज्योतिपूर्ण है। तोतापुरी जैसे समाधि-रहस्य के इस दृश्य को देखकर चकित रह गये। जिस समाधि को कठोर साधना के माध्यम से प्राप्त करने में उन्हें चालीस वर्ष लगे, उसे इस महापुरुष ने एक ही दिन में प्राप्त कर लिया! देर तक वे अपने शिष्य के सभी लक्षणों, श्वास-प्रश्वासों का निरीक्षण करते रहे। अन्त में उन्हें कहना पड़ा—''यह देवी की माया है।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद पत्नी शारदा देवी भी दक्षिणेश्वर आ गयीं। पत्नी को उन्होंने अपनी वृद्धा जननी की सेवा करने भेज दिया और स्वयं माँ जगदम्बा की आराधना में लगे रहे। अब मंदिर की पूजा हृदयराम करने लगा।

रामकृष्ण ठाकुर की ख्याति धीरे-धीरे फैलने लगी। एक के बाद एक करके कई शिष्य आये। सर्वश्री विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, निरंजानन्द, अद्‌भुतानन्द, शारदानन्द आदि अनेक भक्तों का दल आया। इनके अलावा साधारण गृहस्थ और नगर के प्रतिष्ठित नागरिक भी आये। कुछ ऐसे भी आये जो अपनी पीड़ा से पीड़ित थे।

कुछ दिनों बाद ठाकुर की इच्छा हुई कि काशी जाकर बाबा विश्वनाथ का दर्शन कर आऊँ। उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए मथुरानाथ ने सारी तैयारी की और एक दिन रवाना हो गये। वैद्यनाथ धाम होते हुए काशी आये। यहाँ तैलंग स्वामी को देखते ही उन्होंने मथुरानाथ से कहा—"स्वामीजी में परमहंस के सभी लक्षण हैं। आप साक्षात् विश्वेश्वर हैं।" यहाँ से वृन्दावन आदि स्थानों का दर्शन करते हुए दक्षिणेश्वर लौट गए।

मथुरानाथ ज्यों-ज्यों ठाकुर को देखते त्यों-त्यों उनकी शक्ति बढ़ती जाती थी। वे रामकृष्णजी के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। ठाकुर के बढ़ते प्रभाव को देखकर कुछ लोग जलते थे। एक बार जब रामकृष्ण ठाकुर अर्द्ध-समाधि में थे तब कालीघाट के पुरोहित हालदार ने उन्हें अकेला देखकर पूछा—"क्यों रे पंडित, बाबू को किस मंत्र से पटाया? अभी कोई नहीं है, मुझे बता दे न। अब नखरे मत दिखा, बोल।"

जब उसे अपने प्रश्न का उत्तर बार-बार पूछने पर नहीं मिला तब उसने एक लात मारते हुए कहा—"साला बताता नहीं।" यह कहकर वह चला गया। ठाकुर उस समय बोलने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने सोचा कि अगर यह बात मथुरानाथ को मालूम हो गयी तो अनर्थ हो जायगा। कुछ दिनों बाद किसी अन्य अपराध के कारण उसे नौकरी से हटा दिया गया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने उक्त घटना की चर्चा कर दी।

इतना सुनना था कि मथुरानाथ क्रोध से भड़क उठे—"आपने अब तक बताया क्यों नहीं। अगर मुझे पता चलता तो उसे जिन्दा गड़वा देता।"

* * *

ठाकुर के एक भक्त थे—रामचन्द्र दत्त। दत्त महाशय के एक मित्र थे—श्री सुरेशचन्द्र मित्र। सुरेश के पास किसी चीज की कमी नहीं थी। सुरा, नारी आदि सभी सुलभ थे, पर मन में शान्ति नहीं थी। कभी-कभी इतने अशान्त हो जाते थे कि आत्महत्या करने की इच्छा होती थी। उनकी इस दशा को देखकर एक दिन दत्त महाशय ने कहा—"मेरे साथ दक्षिणेश्वर चलो। सारी अशान्ति दूर हो जायेगी।"

मित्र महाशय दत्त बाबू के साथ दक्षिणेश्वर आये । बिना नमस्कार किये एक ओर बैठ गये। असल में उनके मन में साधु-संन्यासियों के प्रति आस्था नहीं थी।

एकाएक ठाकुर कहने लगे—"भक्त दो प्रकार के होते हैं। एक तो बिल्ली के बच्चों जैसे जो म्याऊँ-म्याऊँ करते रहते हैं, माँ जहाँ छोड़ जाती है, वहीं पड़े रहते हैं। प्रकार से वे माँ के सहारे जीते हैं। दूसरे वे हैं जो बन्दर के बच्चों की तरह होते हैं। माँ के पेट से निकलते ही पेड़ों पर कूदने लगते हैं। प्रारंभ से ही आत्मनिर्भर बन जाते हैं, किसी की परवाह नहीं करते। भक्तों को चाहिए कि वे बिल्ली के बच्चों की तरह हों। माँ पर निर्भर रहना उचित है। जैसे नाबालिग बच्चों की देखरेख अभिभावक

करते हैं, उसी प्रकार माँ पर निर्भर रहने पर माँ अपनी इच्छा से बच्चे का अनिष्ट नहीं होने देती।''

ठाकुर की बातों या शक्ति का ऐसा प्रभाव पड़ा कि चलते समय सुरेश बाबू ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

प्रतापचन्द्र हाजरा नामक एक शूद्र जाति का व्यक्ति ठाकुर की शरण में आया। ठाकुर ने उसे मन्दिर में ठहरा लिया। वह खाली समय में माला लेकर जप करता था, लेकिन रानी रासमणि की तरह ध्यान कहीं और रहता था। ठाकुर से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। एक दिन बिगड़ उठे—''साला इधर माला फेर रहा है और उधर दलाली कर रहा है।''

माला फेरते समय वह इस बात का हिसाब लगाया करता था कि किसे किस दर पर कितनी रकम कर्ज दिया है। ठाकुर की बातों से नाराज होकर एक दिन उसने कहा—''आप मुझे तो डाँटते हैं, पर खुद बड़े आदमियों को प्यार करते हैं।''

ठाकुर ने कहा—''नरेन्द्र (विवेकानन्द) को भी तो प्यार करता हूँ। उसके पास नमक खरीदने के पैसे नहीं हैं।''

इस उत्तर को सुनकर वह चुप हो गया। एकाएक ठाकुर उससे माला छीनकर बोले—''माँ, हाजरा कितना बड़ा बेवकूफ है। यहाँ आकर माला जपता है। यहाँ जो आयेगा, उसका एक ही बार में सब हो जायगा।''

हाजरा को ठाकुर बहुत चाहते थे। कभी उससे पैर दबवाते और कभी-कभी कई दिनों तक पैर छूने नहीं देते थे। ठाकुर के मना करने पर वह सोचता कि शायद मुझमें कुछ पाप प्रवेश कर गया है इसलिए ठाकुर ने पैर छूने नहीं दिया। ऐसी स्थिति आने पर वह रात को घाट पर जाकर गंगा मिट्टी पानी में घोलकर पी जाता और मसहरी के भीतर बैठकर जप करने लगता। इससे ठाकुर में आकर्षण बढ़ने लगता। जब ठाकुर से नहीं रहा जाता तब उसे पुकारते।

हाजरा आकर उनका पैर दबाने लगता। थोड़ी देर बाद ठाकुर कहते—''अब बस कर।''

हाजरा कहता—''नहीं। जब तक मेरा मन नहीं भरेगा तब तक पैर दबाता रहूँगा।''

इस प्रकार की लीलाएँ ठाकुर अक्सर अपने भक्तों के साथ किया करते थे।

* * *

प्रभुदयाल मिश्र कन्नौजिया ब्राह्मण थे। उनके परिवार में एक दुर्घटना हो गयी जिसके कारण इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। कुछ दिनों तक आप एक पहाड़ की निर्जन गुफा में चिन्तन करते रहे। एक दिन ध्यान में आपने नदी किनारे स्थित एक बाग में एक ज्योतिर्मय पुरुष का दर्शन किया। आपने अनुमान लगाया कि यह महापुरुष प्रभु येशू हैं। फलतः आपने ईसाई-धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे प्रभु येशू की खोज करने लगे।

अनेक साधु-संतों को देखने के बाद आपको पता लगा कि गंगा-किनारे स्थित एक बाग में एक परमहंसजी रहते हैं। यह सूचना मिलते ही आप यहाँ दर्शन करने आये। परमहंस रामकृष्ण ठाकुर को देखते ही इन्हें स्वप्न में दिखाई देनेवाली मूर्ति का स्मरण हो आया।

आपने ठाकुर के सामने बैठे भक्तों की ओर इशारा करते हुए कहा-''ये लोग आपको पहचान नहीं पा रहे हैं। मैंने पहचान लिया है। आप प्रभु येशू हैं।''

ठाकुर ने पूछा—''क्या आपको ज्योति-दर्शन होते हैं?''

मिश्र ने कहा—''जी हाँ। जब मैं अपने घर रहता था। तब अक्सर ऐसा होता था।''

यह बात सुनते ही ठाकुर में येशू भाव प्रकट हुआ। खाट पर वे खड़े हो गये। मिश्रजी से हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा—''तुम जो चाहते हो, वह हो जायगा।''

❋ ❋ ❋

इसी प्रकार विश्वनाथ उपाध्याय नेपाल सरकार की ओर से कलकत्ते में प्रतिनिधि थे। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण धर्म-ग्रंथों का अध्ययन बराबर करते थे।

एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष उन्हें अपने निकट बुला रहा है। यह कौन हैं, कहाँ रहते हैं, समझ न पाने के कारण उपाध्याय ने विशेष दिलचस्पी नहीं ली। कुछ दिनों बाद गंगा में भीषण बाढ़ आयी। अनेक सरकारी लकड़ियाँ बह गयीं। काफी नुकसान हुआ। इस दुर्घटना के कारण वे नेपाल सरकार के पास आय-व्यय का विवरण नहीं भेज सके। कुछ दिनों प्रतीक्षा करने के बाद सरकार ने उपाध्याय से जवाब तलब किया। उपाध्याय बुरी तरह डर गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि इस घटना के कारण उन्हें सख्त सज़ा मिलेगी।

मुसीबत के वक्त लोग भगवान् को याद करते हैं और साधु-संतों के पास जाते हैं। इन्हीं दिनों उपाध्यायजी को यह सूचना मिली कि दक्षिणेश्वर में एक सिद्ध महात्मा हैं। यहाँ आते ही उनकी उद्विग्नता में कमी हो गयी। अपने संकट की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—''महाराज, मुझ पर कृपा कीजिए वर्ना मैं बेमौत मर जाऊँगा।''

ठाकुर ने कहा—''तुम जगज्जनी को अपनी मुसीबत सुनाकर उनसे प्रार्थना करो। डरने की जरूरत नहीं। सरकार को सही घटना का विवरण दे दो। तुम्हारा कुछ नहीं होगा।''

ठाकुर की सलाह फलीभूत हुई। राजदरबार ने मान लिया कि यह एक दुर्घटना थी। अब तक विश्वनाथ उपाध्याय कप्तान पद पर कार्य कर रहे थे। सत्य बात कहने के कारण उन्हें रेसीडेण्ट पद पर बहाल किया गया। उपाध्यायजी को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह सब ठाकुर की कृपा से हुआ है।

❋ ❋ ❋

रामेश्वर चटर्जी ठाकुर के मँझले भाई थे। उनकी लड़की लक्ष्मीमणि थी। लक्ष्मीमणि के विवाह की बातचीत पक्की हो गयी। हृदयराम ने यह समाचार ठाकुर को सुनाया। उस समय ठाकुर भावावस्था में थे। अनायास उनके मुँह से निकल गया—''लक्ष्मी का विवाह? इस विवाह का परिणाम अच्छा नहीं होगा। लक्ष्मी विधवा हो जायगी।''

यह बात सुनते ही हृदयराम ने ठाकुर का मुँह कसकर दबाते हुए कहा–''मामा, तुमने यह कहा? आज के इस शुभ अवसर पर अपनी भतीजी के बारे में ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए?''

तब तक ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गये थे। उन्होंने चिन्तित भाव से पूछा—''हृदु, मैंने कुछ कहा था, क्या? मैंने कोई अपशकुनवाली बातें कहीं थीं?''

ठाकुर ने जो कुछ कहा था, उसे हृदयराम ने जब सुनाया तब ठाकुर ने कहा—''हृदु, मैंने कुछ कहा था, क्या? मैंने कोई अपशकुनवाली बातें कहीं थी?''

कहने की आवश्यकता नहीं कि विवाह के बाद लक्ष्मी देवी विधवा हो गयीं। ठाकुर उन्हें शीतला का अवतार मानते थे।

* * *

वनहुगली निवासी महेन्द्रपाल वैद्यगी का काम करते थे। ठाकुर स्वयं या अपने भाँजे की बीमारी में उनसे सहायता लेते थे। एक बार महेन्द्रपाल ने ठाकुर के दूसरे भाँजे रामलाल को ठाकुर के नाम पर पाँच रुपये दिये।

आश्चर्य की बात यह हुई कि उस दिन रात को ठाकुर काफी बेचैनी अनुकरते रहे। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे कोई बिल्ली पंजे से उनका हृदय नोच रही है। ठाकुर को समझते देर नहीं लगी कि इस कष्ट का कारण महेन्द्र द्वारा दिये पाँच रुपये हैं। दूसरे दिन सबेरे रामलाल जब रुपये वापस दे आया तब ठाकुर की बेचैनी दूर हुई। महेन्द्रपाल ने ये रुपये सरल भाव से नहीं, बल्कि किसी कामना के लिए दिये थे।

ठाकुर अपने भक्तों को बराबर यही कहा करते थे कि डॉक्टर, कविराज, वकील, मुख्तार, दलाल तथा भ्रष्ट तरीके से रकम वसूल करनेवालों की रकम नहीं लेनी चाहिए। इनका अहसान भी नहीं।

ठाकुर दान लेना कभी पसन्द नहीं करते थे। उनके पास नगर के अनेक मारवाड़ी फल-मीठा आदि लेकर आते थे। इन चीजों को कभी वे छूते तक नहीं थे। भक्तों में वितरण कर देने के लिए बलराम बसु या नरेन्द्र के घर भिजवा देते थे। ठाकुर का कहना था—''शुद्ध मन से कोई दान देता है तो उससे आनन्द मिलता है, पर स्वार्थी लोगों के दान मैं स्वीकार नहीं करता। नरेन्द्र तो अग्निकुण्ड है, उसके पास जाकर सब भस्म हो जाता है।''

* * *

नगर में शंभुचन्द्र प्रसिद्ध व्यवसायी थे। साधु-संतों पर उनकी आस्था नहीं थी। उनका कहना था कि एक ओर साधु-संत ईश्वराराधना करते हैं और दूसरी ओर अर्थ के पीछे परेशान रहते हैं। लेकिन रामकृष्ण ठाकुर केवल ईश्वर चिन्ता करते हैं, किसी से कुछ माँगते नहीं। विवाहित हैं, पर पत्नी के साथ दैहिक सम्बन्ध नहीं है। पत्नी जो कुछ देती है, उसीसे संतुष्ट रहते हैं । न गेरुआ कपड़ा पहनते हैं और न तिलक-त्रिपुण्ड लगाते हैं। भस्म का प्रयोग नहीं करते। चिमटा-कमण्डल भी साथ नहीं रखते।

एक बार उन्होंने ठाकुर को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। अस्वस्थ रहने के कारण ठाकुर नहीं आये तब वे स्वयं ही दक्षिणेश्वर गये। दोनों व्यक्ति आपस में बातचीत करते हुए बाग में टहलते रहे। अपने साथ लाये अनार के दाने निकाल-निकाल ठाकुर को खिलाते रहे। जब थोड़ा-सा बच गया तब मल्लिक ने कहा—"यह सब आपके लिए ले आया था। इसे अपने साथ ले जाइये।"

ठाकुर ने कहा—"मैं बीमार हूँ, मुझे इसकी जरूरत नहीं है।"

विशेष आग्रह करने पर ठाकुर ने शेष दोनों अनार जेब में रख लिए। इसके बाद ही आश्चर्यजनक घटना हुई। बगीचे से बाहर निकलने का रास्ता उन्हें ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। शंभु एक ओर खड़ा होकर इस दृश्य को देख रहा था। ज्योंही ठाकुर ने अपनी जेब से दोनों अनार को निकालकर एक ओर रख दिए त्योंही उन्हें सब कुछ दिखाई देने लगा।

शंभु ने जब इसका कारण पूछा तब ठाकुर ने कहा—"माँ ने संचय करने को मना किया है। आपके अनार के कारण ऐसी घटना हुई। अनार परित्याग करते ही सब कुछ दिखाई देने लगा।"

शंभु को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा कि भविष्य में इस बात की परीक्षा लूँगा।

एक बार ठाकुर पेट के दर्द से छटपटा रहे थे। दवा से कोई लाभ नहीं हुआ। यह समाचार पाते ही शंभु अपने बगीचे में ठाकुर को ले आये और थोड़ी अफीम खाने को दी। इससे लाभ हुआ। अब जब कभी ऐसी शिकायत होती तब शंभु उन्हें अफीम खिला देते थे।

एक दिन शंभु ने कहा—"आप नित्य कष्ट करके क्यों आते हैं। कुछ अफीम ले जाइये। जब कष्ट हो, खा लीजिएगा। यहाँ आने की जरूरत नहीं।"

ठाकुर का सिद्धांत था—संचय नहीं करना चाहिए। शंभु तो परीक्षा लेने के लिए तैयार था। इनके त्याग की जाँच के लिए उसने एक पुड़िया अफीम इनकी जेब में डाल दी। इसके बाद वे ठाकुर के हावभाव को गौर से देखने लगे। ठाकुर शंभु के घर से बाहर आकर चारों ओर पहले की तरह चक्कर काटने लगे। बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। आखिर वे थककर बैठ गये। ठीक इसी मौके पर चुपके से शंभु ने उनकी जेब से अफीम की पुड़िया निकाल ली और ठाकुर की दृष्टि ठीक हो गयी।

शंभु मल्लिक के लिए यह अजीब नजारा था। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ठाकुर युगावतार पुरुष हैं। उसी दिन से उन्होंने अपने को ठाकुर के चरणों में समर्पित कर दिया।

* * *

बातचीत के सिलसिले में एक बार मथुरानाथ ने कहा—''ईश्वर को भी अपने बनाये कानून के अनुसार काम करना पड़ता है। एक बार जो नियम बना देते हैं, उसे रद्द नहीं कर पाते।''

ठाकुर ने कहा—''यह क्या कह रहे हो? जिसने कानून बनाया है, वह चाहे तो उसे रद्द कर सकता है या उसकी जगह नया कानून बना सकता है?''

मथुरानाथ ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—''लाल फूल के पेड़ में लाल फूल खिलते हैं। उसमें सफेद फूल नहीं पैदा होते, क्योंकि यही नियम भगवान् ने बनाया है। लाल फूल में सफेद फूल पैदा करके दिखायें तो समझूँ।''

रामकृष्ण ने कहा—''अगर उनकी इच्छा होगी तो वे ऐसा कर सकते हैं।''

मथुरानाथ को विश्वास नहीं हुआ। दूसरे दिन ठाकुर जब शौच करने गये तब लौटते समय बाग में देखा कि लाल जवाकुसुम के एक पेड़ की डाली में लाल और सफेद दोनों तरह के फूल खिले हुए हैं। उस डाली को वे ले आये और मथुरानाथ को दिखाते हुए बोले—''लो देखो।''

मथुरानाथ ने कहा—''हाँ, बाबा। हार मानता हूँ।''

मथुरानाथ रानी साहिबा के मैनेजर भी थे। जमीन-जायदाद के मामले में अक्सर झगड़ा होने पर तानाशाही रूप धारण करते थे। एक बार लाठीबाजी में किसी का खून हो गया। घबराये हुए ठाकुर के पास आकर बोले—''बाबा, मेरी रक्षा करो।''

रामकृष्णजी बिगड़कर बोले—''साले, रोज एक न एक बखेड़ा करने के बाद आकर कहेगा कि मेरी रक्षा करो। आखिर मैं क्या कर सकता हूँ? जाओ, अपना समझो। मैं क्या जानूँ।''

मथुरानाथ बाबा का पैर पकड़कर रोते रहे। थोड़ी देर बाद ठाकुर ने कहा—''जाओ, माँ की जो इच्छा होगी, वही होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामकृष्ण ठाकुर की कृपा से वे बच गये।''

* * *

ठाकुर को योग विभूति दिखाना पसन्द नहीं था। यहाँ तक कि जो लोग साधना करते-करते उच्चस्तर तक पहुँच जाते थे और अपने द्वारा प्रकट होने वाली योग विभूति के प्रति आकृष्ट हो जाते थे, उनकी शक्ति को नष्ट कर देते थे।

एक बार शंभु मल्लिक के बाग में घूमने लगे। बातचीत में शाम हो गयी। गिरिजा

का सहारा लेकर दक्षिणेश्वर रवाना हुए। चारों ओर घना अंधकार था। सोचा कि चलते समय शंभु से लालटेन माँग लेते तो अच्छा होता। ठाकुर गिरिजा का हाथ पकड़कर चल रहे थे, पर जगह-जगह ठोकर खा रहे थे।

सहसा गिरिजा ने कहा—''ठाकुर, जरा ठहर जाइये।'' इतना कहकर वे दक्षिणेश्वर की ओर पीठ करके खड़े हो गये। उसकी पीठ से ज्योति निकलकर मंदिर तक पहुँच गयी । उसी प्रकाश के जरिये ठाकुर घर पहुँच गये।

ठाकुर ने कहा—''यह सिद्धाई अधिक दिनों तक नहीं रही। मेरे (अपने को दिखाते हुए) कारण उसकी सारी सिद्धाई समाप्त हो गयी।''

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द जब ध्यान में अधिक समय देने लगे तब उनकी योग विभूति प्रकट होने लगी। उनकी जबानी यह बात सुनकर ठाकुर ने कहा—''यह अच्छी चीज नहीं है। इससे भगवान् के दर्शन नहीं होते, बल्कि यह बाधा उत्पन्न करती है। भगवान् ही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है। अच्छा होगा कि तू कुछ दिनों के लिए ध्यान मत कर।''

इस बारे में ठाकुर का कहना था—''यह बात अच्छी तरह मन में रख लो कि जो लोग उन्हें (भगवान् को) पकड़े रहते हैं, वे कभी विषम शोक में डूबते नहीं। जरा-सा धक्का खाकर सम्हल जाते हैं और जिनके आधार छोटी मछलियाँ हैं, वे अस्थिर हो जाते हैं। गंगा में जब बड़े स्टीमर चलते हैं तब सभी नौकाएँ हिलने लगती हैं। लगता है, अब डूब जायेंगी। लेकिन बड़ी नौकाएँ थोड़ी देर तक हिलने के बाद सम्हल जाती हैं। बाद में स्थिर हो जाती हैं। संसार में कुछ धक्के भी खाने पड़ते हैं। अब सोचो कि इस संसार में लोगों (परिवार) से कितना सम्बन्ध है। सुख के लिए लोग गृहस्थी बसाते हैं। विवाह किया, बच्चे हुए, वे बड़े हुए, उनके विवाह हुए। इसके बाद आज यह बीमार, कल उसकी मौत। इन्हीं बातों की चिन्ता में परेशान। रस जितना सूखता है, उतनी आवाजें होती हैं। भट्ठी में लकड़ियाँ पहले तेजी से जलती हैं, बाद में जड़ के पास सारी नमी चूँ-चाँ आवाजें करती हैं। इसी प्रकार मानव-जीवन है, अतएव भगवान् का शरणापन्न होना ही एकमात्र उपाय है। वही सबसे बड़ा सुख है।''

❋ ❋ ❋

एक बार हृदयराम ने ठाकुर से कहा—''मामा, यहाँ न जाने कितने साधु-संत आते हैं। उनमें कितनी शक्ति है और एक तुम हो कि कुछ कर नहीं पाते। माँ (काली) से कहकर कुछ योग-शक्ति क्यों नहीं माँग लेते।''

ठाकुर ने कहा—''मेरी माँ यह नहीं चाहती कि मेरा ध्यान उधर जाय। लेकिन जब तू कह रहा है तब एक बार उनसे कहूँगा ।''

इतना कहकर वे मंदिर के भीतर चले गये और हाथ जोड़ते हुए देवी से कहने

लगे—''माँ, हृदु चाहता है कि मुझे कुछ शक्ति दो। तुम्हारी जो इच्छा है, करो। इस बारे में मैं कुछ नहीं जानता।''

बाद में उन्होंने हृदयराम से कहा—''धत्त साला; माँ ने मुझे बताया कि सिद्धाई-फिद्धाई सब विष्ठा है।''

हृदय को उदास देखकर उन्होंने कहा—''सिद्धाई से सच्चिदानन्द से दूर हो जाने में आता है। उससे कोई लाभ नहीं? सुन, एक कहानी सुनाता हूँ। एक व्यक्ति के दो लड़के थे। बड़ा लड़का जब जवान हुआ तब घर से चला गया और साधु बन गया। छोटा लड़का पढ़-लिखकर धार्मिक विद्वान् बन गया। साधुओं में नियम है कि इच्छा होने पर वे बारह वर्ष के भीतर एक बार अपनी जन्मभूमि आ सकते हैं। बड़ा लड़का गाँव आया तो देखा—छोटा भाई गृहस्थ बन गया है। घर के दरवाजे के पास आकर उसने अपने भाई को पुकारा। काफी दिनों बाद मुलाकात होने पर दोनों आपस में दुःख-सुख कहने लगे।''

छोटे भाई ने पूछा—''घर-द्वार छोड़कर संन्यासी बनने से क्या लाभ हुआ?''

बड़े भाई ने कहा—''देखना चाहता है तो मेरे साथ चल।'' इतना कहने के बाद दोनों भाई गाँव में स्थित नदी किनारे आये। बड़ा भाई पानी पर पैदल उस पार चला गया।

इसके बाद छोटा भाई नाव से उस पार गया तो बड़े भाई ने कहा—''देखा?''

छोटे भाई ने कहा—''क्या, यही न आप नदी पर से पैदल इस पार चले आये। आपने भी तो देखा कि मैं अधेला (प्राचीन काल का सबसे छोटा सिक्का) देकर इस पार आ गया। आपके बारह वर्ष तपस्या की कीमत महज एक अधेला है।''

छोटे भाई की बातें सुनकर बड़े की आँखें खुल गयीं। धर्म-जगत् में यह सब तुच्छ है। इसके बाद बड़ा भाई ईश्वर की ओर ध्यान लगाने लगा।

अब तक हृदय ठाकुर की सेवा निस्वार्थ रूप से करता रहा। एक प्रकार से वह दक्षिणेश्वर मंदिर का महन्त बन गया था। रानी और मथुरानाथ का निधन हो जाने के कारण कोई अंकुश लगाने वाला नहीं था। ठाकुर जब समाधिस्थ हो जाते तब वही उन्हें स्पर्श करता और नाम गाकर प्रकृतिस्थ बनाता था।

इधर जब से ठाकुर की महिमा का प्रचार बढ़ गया तब से दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ने लगी। ठाकुर का दर्शन करने तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। दर्शनार्थी भेंट में ठाकुर को मूल्यवान वस्त्रादि देते तो उसका उपयोग हृदय करता था। बढ़ती भीड़ को देखकर उसने एक तिकड़म किया। जो लोग मुफ्त में दर्शन करने आते, उनसे कहता—''ठाकुर यहाँ नहीं हैं, वे बीमार हैं, दर्शन नहीं होगा।'' जो लोग दर्शन के लिए रकम देते थे, उनके दरवाजा खोल देता था।

लक्ष्मीनारायण नामक एक मारवाड़ी ने एक बार हृदय के माध्यम से ठाकुर को दस हजार रुपये देना चाहा, पर ठाकुर ने लेना अस्वीकार कर दिया। मामा के इन्कार करने पर हृदय बुरी तरह बौखला गया। मामा ने न तो काली माता से शक्ति माँगी और

न योग विभूति दिखाना चाहते हैं? पास आने वाली लक्ष्मी को ठुकरा देते हैं। इन सभी बातों से चिढ़कर उसने ठाकुर की उपेक्षा करना प्रारंभ किया और स्वयं महन्त बनकर कीर्त्तनादि का नाटक करने लगा।

हृदय के इस व्यवहार से ठाकुर को बड़ा धक्का लगा । वे मंदिर में जाकर जगन्माता के सामने कहने लगे—''माँ, मेरे सभी बन्धन समाप्त हो गये हैं। क्या हृदय के अपमान से मुक्ति नहीं दिलाओगी?''

एक बार बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा था—''हृदय की बातों से तंग आकर मैं गंगा में कूदने गया था। अचानक याद आया कि मेरी आत्महत्या से शिष्यों को कष्ट होगा। यही वजह है कि एक दिन पुनः माँ के पास जाकर कहना पड़ा कि माँ, कुछ ख्याल मत कर। शायद हृदय मुझे बहुत चाहता है, इसलिए ऐसा कहता है। उसे माफ कर दे।''

इसमें कोई संदेह नहीं कि हृदय उनकी काफी सेवा करता था। जब ठाकुर कैंसर से पीड़ित होकर कष्ट भोगने लगे तब उन्होंने कहा था—''अगर हृदय पास रहता तो यह शरीर कुछ दिन और रहता । वही इस शरीर की ठीक से सेवा करना जानता था। उसके रहते कोई पैर छू नहीं सकता था। आजकल जिसके मन में आता है, वही हाथ लगाता है, इसीलिए मेरे शरीर में नाना लोगों की अपवित्रता प्रवेश करती जा रही है।''

उच्चकोटि के साधक भक्तों से चरण-स्पर्श नहीं कराते। मान्यता है कि इससे पापिष्ठ लोगों के पापों को ग्रहण करना पड़ता है। भावावेश में रहने के कारण ठाकुर को इसका ज्ञान नहीं रहता था ।

एक बार इसी दोष के कारण ठाकुर को काफी कष्ट हुआ था। कहा जाता है कि एक बार एक कुष्ठ-रोगी ने आकर प्रार्थना की कि ठाकुर उसके शरीर पर हाथ फेर दें तो उसका रोग दूर हो जाय। प्रत्युत्तर में ठाकुर ने कहा—''बाबू, मैं तो कुछ नहीं जानता, पर जब तुम कह रहे हो तब हाथ फेर देता हूँ। अगर माँ की इच्छा हुई तो ठीक हो जाओगे।''

इतना कहकर ठाकुर ने कुष्ठरोगी के शरीर पर हाथ फेर दिया। उस दिन वे दिन भर अपने हाथ के दर्द से परेशान रहे। पीड़ा जब असह्य हो गयी तब वे बोल उठे—''माँ, अब ऐसी गलती नहीं करूँगा।''

बाद में ठाकुर को कहना पड़ा—''उसका रोग तो दूर हो गया, पर भोग मुझ पर से गुजरा।''

* * *

दक्षिणेश्वर में एक भक्त महिला थी जिसे लोग 'गोपाल की माँ' कहते थे। उनकी इच्छा हुई कि वे ठाकुर को स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलायेंगी। ठाकुर खाने बैठे तो देखा—चावल कच्चे हैं। नाराज होकर बोले—''यह भात मैं कैसे खा सकता हूँ? इसके हाथ का भोजन नहीं करूँगा।''

रामकृष्णजी की बातें सुनकर लोगों ने सोचा कि गोपाल की माँ को डराने के लिए ठाकुर ने यह बात कही। ठाकुर तो गोपाल की माँ से काफी स्नेह करते हैं, ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन उस महापुरुष का कथन सत्य हुआ। ठाकुर गले के कैंसर से पीड़ित हुए।

इस घटना के कुछ दिनों बाद जब रामकृष्णजी अपनी भावावस्था में थे तब अचानक उनके मुँह से निकला—''अब इसके बाद कुछ नहीं खाऊँगा। केवल खीर खाऊँगा।''

ठीक इसी समय शारदा माता आ रही थीं, ठाकुर की बातें सुनकर वे चौंक उठीं। ठाकुर जो कुछ कहते हैं, निरर्थक नहीं होता। धीरे से बोलीं—''मैं मछली का रसा और चावल पका दूँगी। क्यों खाओगे?''

ठाकुर उसी भावावस्था में बोले—''नहीं, खीर।''

इस घटना के बाद उनके गले का कष्ट बढ़ता गया। बार्ली, दूध, खीर के अलावा के अन्य चीज नहीं खा पाते थे। ठाकुर के इस कष्ट को दूर करने के लिए सभी भक्त जुट गये, पर रोग दूर नहीं कर सके। लोग निराश हो गये।

एक बार शशधर तर्कचूड़ामणि ने ठाकुर से निवेदन किया—''आप जैसे अवतारी पुरुष अगर मन में धारणा बना लें कि रोग अच्छा हो जाय तो यह अच्छा हो सकता है।''

ठाकुर ने कहा—''पंडित होकर तुमने यह कैसे कहा? जिस मन को मैंने सच्चिदानन्द को सौंप दिया है, पुनः वहाँ से वापस लाकर इस हाड़-मांस वाले शरीर को बचाने की इच्छा कैसे होगी?''

इस उत्तर को सुनकर पंडितजी निरुत्तर हो गये, पर स्वामी विवेकानन्द निश्चेष्ट नहीं रहे। एक दिन वे ठाकुर के सामने जिद्द कर बैठे—''आप अपने लिए न सही, पर हम सबके लिए अपने को स्वस्थ बनायें।''

ठाकुर ने कहा—''क्या मेरी इच्छा नहीं होती? क्या मैं रोग-यंत्रणा भोगना चाहता हूँ? मैं तो सोचा करता हूँ कि रोग ठीक हो जाय, पर ठीक नहीं हो रहा है। इसमें माँ का हाथ है।''

विवेकानन्द ने कहा—''तब माँ से कहिये कि वे आपको ठीक कर दें। वे तो आपकी बात मानती हैं।''

ठाकुर ने कहा—''ठीक कह रहा है, पर यह बात मेरे मुँह से निकल जो नहीं रही है।''

विवेकानन्द ने कहा—''ऐसा नहीं हो सकता। हम लोगों के लिए आपको कहना ही पड़ेगा।''

ठाकुर—''ठीक है, कहूँगा।''

कई घंटे बाद विवेकानन्द ने आकर पूछा—''कहिये, माँ ने क्या कहा?''

ठाकुर ने कहा—''माँ से मैंने इसे (गले का घाव) दिखाते हुए कहा कि इसके कारण खा नहीं पाता। कम-से-कम कुछ खा सकूँ, ऐसा कर दो। माँ ने तुम लोगों

की ओर इशारा करते हुए कहा–'क्यों, इतने मुँहों से खा रहा है, वह क्या है?' फिर आगे कुछ कह नहीं सका।''

ठाकुर की बीमारी में एक दिन विषय कृष्ण गोस्वामी[1] कुछ ब्रह्म समाजियों को लेकर ठाकुर को देखने आये। अधिकांश लोगों को यह मालूम था कि गोस्वामीजी अनेक साधु-संतों से मिले हैं। इसके लिए भारत भ्रमण कर चुके हैं। बातचीत के सिलसिले में उनसे महिम चक्रवर्ती ने पूछा—''कहिये गोस्वामीजी, क्या-क्या देखा आपने?''

गोस्वामीजी ने कहा—''क्या-क्या बताऊँ? इस वक्त जहाँ बैठा हूँ, यहीं सब कुछ है। कहीं एक आना तो कहीं दो या चार आने हैं। यहाँ तो सोलह आने हैं।''

❋ ❋ ❋

जिन दिनों ठाकुर अस्वस्थ थे और भक्तों का दल दक्षिणेश्वर से उन्हें श्यामपुकुर स्थित एक भवन में ले आकर इलाज करा रहे थे, उन्हीं दिनों एक बार ठाकुर ने देखा कि उनका सूक्ष्म शरीर कलेवर छोड़कर बाहर विचरण कर रहा है। उनके बदन, पीठ और गले में अनेक घाव हैं। जमाने भर के पापियों के पाप लेने के कारण ये घाव हुए हैं। जीवन में हर प्रकार के लोग उन्हें स्पर्श करते रहे और आज भी कर रहे हैं, उन सभी के पाप उनमें संक्रमित हुए हैं। ठाकुर ने इसे देखा और सारा रहस्य समझ गये।

७ या ८ अगस्त, सन् १८८६ के दिन ठाकुर ने अपने एक शिष्य योगीन को बुलाकर कहा—''जरा पंचांग लाकर श्रावण मास की तिथियाँ पढ़कर सुना तो।''

योगीन श्रावण मास की तिथियाँ पढ़कर सुनाने लगे। एक के बाद एक तिथि, दिन पढ़ते गये। ३१ श्रावण, सन् १८८६ पढ़ने के बाद ज्योंही १ भाद्रपद का नाम योगीन ने लिया त्योंही ठाकुर ने कहा—''बस, रहने दे।''

योगीन महाराज चुप रह गये। १५ अगस्त, सन् १८८६ ई० (१भाद्रपद, फसली संवत् १२९३ ई०) रविवार, पूर्णिमा के दिन सबेरे से ठाकुर की नाड़ी गड़बड़ चल रही थी।

थोड़ी देर बाद ठाकुर के कमरे से बाहर निकल कर अतुल ने सभी भक्तों को अशुभ समाचार सुनाया।

■

---

१. देखिये प्रथम भाग।



जगद्गुरु शंकराचार्य

प्राचीन मलावार जिले की पेरियार नदी[1] के किनारे कालडि नामक एक छोटा-सा गाँव। पंडित विद्याधर सपरिवार इस गाँव में रहते थे। पति-पत्नी और एकमात्र पुत्र शिवगुरु। कुल तीन प्राणियों की गृहस्थी थी। जिन दिनों शिवगुरु पाठशाला में पढ़ते थे, उन्हीं दिनों उनके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। लड़के की यह प्रवृत्ति देखकर विद्याधर चिन्तित हो उठे। पत्नी से सलाहकर उन्होंने उसका विवाह मघ पंडित की कन्या विशिष्टा से कर दिया।

समय गुजरता गया। इस बीच विद्याधरजी का निधन हो गया। लम्बे अर्से तक शिवगुरु पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके। गाँव के समीप ही नदी थी। नदी के किनारे चन्द्र मौलीश्वर का मंदिर था। नित्य दोनों पति-पत्नी एक साथ नदी में स्नान करने जाते और भगवान् से पुत्र प्राप्ति के लिए कामना करते। कहा जाता है कि एक दिन मंदिर में स्वयं शंकर भगवान् की वाणी गूँज उठी—

''वत्स शिवगुरु, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। तुम कैसा पुत्र चाहते हो? दीर्घायु पुत्र मूर्ख होगा और अल्पजीवी सर्वज्ञ तथा सर्वमान्य। अब बताओ कि कैसा पुत्र चाहते हो?''

कुछ देर ऊहापोह करने के बाद शिवगुरु ने कहा—''भगवन्, मुझे सर्वज्ञ पुत्र चाहिए जो मेरे वंश का मुख उज्ज्वल करे।''

---

१. कुछ विद्वान् आलवाई नदी कहते हैं। आलवाई कस्बे का नाम है। कालडि गाँव के स्टेशन का नाम अंगमालि है।

पुनः आवाज आयी–''तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। मुझे तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लेना पड़ेगा।''

शिवगुरु प्रसन्नता से उछल पड़े कि भगवान् शंकर उनके यहाँ अवतरित होंगे। भगवान् को प्रणाम करते ही उनकी नींद खुल गयी । न कहीं मंदिर था और न भगवान् शंकर।

इस घटना से पति-पत्नी दोनों बड़ी लगन के साथ शंकर भगवान् की आराधना करने लगे। उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनकी कामना अवश्य पूरी होगी। उनका यह विश्वास फलीभूत हुआ। वैशाख शुक्ल तृतीया, सन् ६८६ ई० के दिन एक बालक ने जन्म लिया।[1] उसके हाव-भाव, रंग-रूप देखकर शिवगुरु को विश्वास हो गया कि भगवान् शंकर उनके घर आ गये हैं। शिव का प्रसाद समझकर बालक का नाम रखा गया– शंकर।

शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बच्चे का विकास होता गया। तीन साल की उम्र से बालक अध्ययन में रुचि लेने लगा। ब्राह्मणों के यहाँ आठ वर्ष के बालक का यज्ञोपवीत होता है। शिवगुरु ने सोचा कि पंचम वर्ष में ही इसका उपनयन कर पाठशाला भेज दूँगा। मानव सोचता कुछ है और ईश्वर करता कुछ और है। शिवगुरु अपनी कल्पना को साकार रूप देने के पहले ही धराधाम से चले गये।

शंकर की माँ विशिष्टा देवी को अपने पति की इच्छा की जानकारी थी। उन्होंने पंचम वर्ष में बालक का उपनयन कराया और पाठशाला में अध्ययन के लिए भेज दिया। शंकर की मेधा-शक्ति देखकर पाठशाला के गुरु चकित रह गये। पाँच वर्ष के बालक की प्रतिभा तथा ज्ञान चौंका देने वाला था। शंकर अपने पाठ के अलावा अन्य छात्रों को दिये जानेवाले ज्ञान को कंठस्थ कर लेता था। गुरुजी को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने इस बात की परीक्षा ली। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऊँचे दर्जे के छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान को शंकर ने आत्मसात कर लिया है।

इसी बीच एक घटना और हो गयी। गुरु-गृह में अध्ययन करते समय बटुकों को भिक्षा के लिए जाना पड़ता था। एक दिन शंकर एक ऐसे घर भिक्षा माँगने गया जहाँ केवल एक बुढ़िया रहती थी। भिक्षा के नाम पर एक आँवला देती हुई बुढ़िया बोली–''बेटा, तुम्हें इस आँवले के सिवा कुछ नहीं दे सकती। आज मेरे घर अन्न का एक दाना नहीं है। भगवान् जाने आज मेरा पेट कैसे भरेगा?''

बुढ़िया की परिस्थिति सुनकर शंकर को क्लेश हुआ। वह सोचने लगा कि इस असहाय वृद्धा का क्लेश कैसे दूर करूँ? अन्त में वहीं बैठकर उन्होंने लक्ष्मी स्तोत्र पाठ करते हुए देवी का आवाहन किया। थोड़ी देर बाद वहाँ से रवाना होते समय शंकर ने कहा–''आपको शीघ्र धन की प्राप्ति होगी।''

---

१. शंकराचार्यजी के जन्म-समय के बारे में कई मत हैं।

दूसरे दिन सुबह उठकर वृद्धा ने देखा कि उसके कमरे के चारों ओर सुवर्ण आँवले बिखरे हुए हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि यह चमत्कार कल जो ब्रह्मचारी आया था, उसके कारण हुआ है।

अपने विद्यार्थी-जीवन में शंकर ने एक और चमत्कार करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। षोड़श वर्ष की आयु तक जितनी शिक्षा छात्र प्राप्त कर पाते हैं, वह सारी शिक्षा समाप्त करके वह गुरु-गृह से अपने घर आ गये।

विशिष्टा देवी नित्य नदी में स्नान करने के पश्चात् कुल देवता केशव भगवान् का दर्शन करती थीं। एक दिन उनके लौटने में देर होते देख शंकर अपनी माँ की खोज में घर से निकला। कुछ दूर आने पर उसने देखा—माँ मार्ग में बेहोश पड़ी हुई हैं। तुरन्त उन्हें उठाकर घर ले आया और सेवा करने लगा। काफी देर बाद माँ स्वस्थ हो गयीं। माँ की आदत और परेशानी पर गौर करते हुए शंकर ने सोचा कि अगर नदी पास होती तो माँ को इतना कष्ट सहना नहीं पड़ता।

निस्सन्देह यह एक ऐसी कल्पना थी जिसे असंभव कहा जा सकता है। लेकिन शंकर का बाल-मन भगवान् से प्रार्थना करने लगा। कुछ दिनों बाद विशिष्टा देवी ही नहीं, गाँव के सभी लोगों ने देखा कि नदी की धारा उनके घर के समीप से बहने लगी है। यह चमत्कार कैसे हो गया, इसे शंकर के अलावा अन्य कोई नहीं जान सका।

पड़ोस में रहनेवाली एक लड़की विशिष्टा देवी को पसन्द आ गयी। उन्होंने सोचा कि इसे अपनी पुत्रवधू बनाऊँगी। शंकर के आगे प्रस्ताव रखने पर उसने कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। माँ ने फिर जिद्द नहीं की, पर लड़के के हठ के आगे चुप रह गयी।

ठीक इन्हीं दिनों शंकर के घर चार ब्राह्मण न जाने कहाँ से आ गये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने विशिष्टा देवी से कहा—"आप अपने पुत्र की जन्मकुंडली दिखाने की कृपा करें।"

विशिष्टा देवी अपने पुत्र की मति से किंचित् शंकित रहती थीं। कुंडली देखते ही सभी पंडित चौंक उठे। यह देखकर विशिष्टा देवी को शंका हुई। उन्होंने पूछा—"मेरे शंकर की आयु कितनी है?"

पंडितों ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया तो विशिष्टा देवी की धारणा दृढ़ हो गयी। उन्हें अपने पति के स्वप्न की घटना याद आ गयी। उन्होंने पूछा—"मेरे प्रश्न का जवाब आप लोग क्यों नहीं देते? अब यह बताइये कि शंकर के पूर्व मेरी मृत्यु हो जायगी न ?"

पंडितों ने कहा—"हाँ। शंकर के निधन के पूर्व ही आपका निधन हो जायगा। इस दिशा में आप निश्चिन्त रहें।"

बार-बार जोर देने पर पंडितों ने कहा—"शंकर की २८ तथा ३२ वर्ष की उम्र में मारकेश योग है।"

यह सुनकर विशिष्टा देवी चुप हो गयीं। सारी बातें शंकर के सामने हो रही थीं। अपनी आयु के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद उसने सोचा—क्या इस बीच मुझे सिद्धि प्राप्त हो जायगी। अब माँ विवाह के बारे में कुछ नहीं कहती। ऐसी स्थिति में अगर मैं संन्यास ले लूँ तो क्या माँ अपनी स्वीकृति देगी?

उधर माँ सोचने लगी—जब बच्चे की उम्र इतनी कम है, दो-दो मारकेश हैं तब इसे अधिक तंग करने की जरूरत नहीं।

इस घटना के कुछ दिनों बाद शंकर ने अनुभव किया कि आज माँ काफी प्रसन्न हैं। उसने धीरे से कहा—''माँ, मेरी इच्छा संन्यास लेने की हो रही है। इसके लिए मुझे अनुमति दो।''

देखते ही देखते माँ का आनन सख्त हो गया। उन्होंने कहा—''कान खोलकर सुन लें। अपने जीवनकाल में तुझे मैं संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं दे सकती। भविष्य में ऐसी बात जबान पर मत लाना।''

माँ की दृढ़ता देखकर शंकर शान्त हो गये। उन्होंने यह समझ लिया कि साधारण रूप से अनुमति मिलना कठिन है। एक दिन माँ नदी में स्नान करने के बाद किनारे आकर कपड़े बदल रही थी। ठीक उसी समय बीच नदी की ओर जाते हुए शंकर चिल्लाया। उसने कहा—''मुझे मगर ने पकड़ रखा है। मुझे खींच रहा है।''

यह बात सुनते ही किनारे के लोग पानी में कूद पड़े और उसे किनारे की ओर खींचने लगे। उधर मगर भी जोर आजमाने लगा। शंकर ने तेज स्वर में कहा—''माँ, तुम मुझे संन्यासी बनने का आशीर्वाद दो तभी प्राण बचेंगे।''

माँ इस आकस्मिक घटना से व्याकुल होकर रो रही थी। वह घबराकर बोल उठी—''अच्छा बाबा, मैं आशीर्वाद देती हूँ, पर मगर से तो जान बचा।''

नदी किनारे कुछ मल्लाह मछली पकड़ रहे थे। तुरत जाल फेंका गया। जाल में फँस जाने के कारण मगर ने शंकर को छोड़ दिया, पर वह स्वयं भाग नहीं सका। पुत्र को सही सलामत देखकर माँ के प्राण लौट आये।

कुछ दिनों बाद शंकर को संन्यासी बनने की तैयारी करते देख माँ को अपार कष्ट होने लगा। जब नहीं रहा गया तब उन्होंने कहा—''कच्ची उम्र में संन्यासी नहीं बनते बेटा। फिर मेरी कैसे गति होगी?''

शंकर ने कहा—''माँ, आप अपने लिए तनिक भी चिन्ता न करें। मैं सारी व्यवस्था करके ही जाऊँगा। रहा आपके सत्कार का प्रश्न। मैं कहीं भी रहूँगा, वहाँ से तत्काल आ जाऊँगा। शास्त्रों में लिखा है कि जब विदेश स्थित बेटे को माँ स्मरण करती हैं तब उसकी जीभ पर माँ के दूध का स्वाद आने लगता है। मैं आपको वचन देता हूँ कि सिद्धि प्राप्त हो जाने के बाद आपको आपके इष्ट का दर्शन करा दूँगा। आप तो जानती हैं कि योगी गण आकाश में विचरण करते हैं। जब कभी आप मुझे स्मरण करेंगी तब मैं आकाश-मार्ग से आपके निकट आ जाऊँगा।''

अब बेचारी माँ क्या कहती । एक लम्बी साँस लेती हुई बोली—''मेरी शुभकामनाएँ हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगी।''

दूसरे दिन विरजा होम आदि कार्य हुए। संन्यास लेने का अर्थ है—पहले किसी संन्यासी से संन्यास लेकर घर छोड़ा जाता है। यहाँ इसकी व्यवस्था नहीं थी। गाँव के लोग चकित दृष्टि से शंकर के गृहत्याग करने का दृश्य देखते रहे।

शंकर को केवल इतना याद था कि नर्मदा नदी के किनारे कहीं महायोगी गोविन्द पाद रहते हैं। मुझे उनसे ही संन्यास लेना है। गुरु-गृह में अध्ययन करते समय गुरुजी ने कहा था कि गोविन्द योगी वास्तव में पतंजलि के अवतार हैं। अपने योग-बल से वे नर्मदा नदी के किनारे कहीं समाधिस्थ हैं। शंकर उन्हीं योगी महाराज की खोज में निकल पड़ा।

महीनों पैदल चलने के बाद एक दिन वह तुंगा नदी के किनारे स्थित जंगल के समीप आया। संध्या, पूजा से निवृत्त होकर एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा। ठीक इसी समय एक अद्‌भुत दृश्य देखकर वह चकित रह गया। नदी से काफी तादाद में मेढक निकलकर किनारे स्थित चट्टानों पर आ बैठते, पर पत्थरों की गर्मी बर्दाश्त न होने के कारण तुरन्त पानी में चले जाते। यह क्रम देर तक जारी रहा। इसी बीच न जाने कहाँ से एक साँप आया और वह फन फैलाकर खड़ा हो गया। इस बार जितने मेढक नदी से बाहर निकले, वे सब उस साँप की छाया में विश्राम करने लगे। साँप के भय से मेढकों का दल न भागा और न साँप ने उनमें से किसी को अपना आहार बनाया।

यह एक आश्चर्यजनक दृश्य था। शंकर ने अनुभव किया कि निस्सन्देह इस स्थान पर विशेष महत्त्व है। इस स्थान की क्या विशेषता है, इसे जानने के लिए शंकर उतावला हो उठा। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे पहाड़ की एक चोटी पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। वह चोटी पर चढ़ गया। वहाँ पर एक तपस्वी दिखाई पड़े। उनसे इस स्थान के महत्व के सम्बन्ध में पूछने पर पता चला कि पहले यहाँ ऋष्य श्रृंग मुनि का आश्रम था। इस स्थान को प्रणाम करने के पश्चात् शंकर अपनी मंजिल की ओर बढ़ गया।

चलते-चलते ढाई महीने गुजर गये तब वह ओंकारनाथ आया। नर्मदा और उसकी सहायक नदी ने मिलकर एक शैल शिखर को घेर रखा है, बिलकुल 'ॐ' की तरह। यहाँ आकर लोगों से योगिराज गोविन्दपाद के बारे में पूछने लगा। लेकिन किसी से कुछ पता नहीं चला। सौभाग्य से एक सज्जन ने सुझाव दिया कि इस पहाड़ की तलहटी में कुछ संन्यासी रहते हैं। उनसे पूछिये तो शायद आपको कोई जानकारी मिल जाए।

उक्त सज्जन के सुझाव के अनुसार शंकर पहाड़ की तलहटी में स्थित संन्यासियों के पास जा पहुँचा। उसके प्रश्न पर एक वृद्ध संन्यासी ने प्रश्न किया—''तुम कहाँ से आ रहे हो? गोविन्दपाद योगी का नाम तुमने कहाँ सुना है?''

शंकर ने कहा—''मैं केरल देश से आ रहा हूँ। अपने शिक्षा गुरु के श्रीमुख से मैंने योगिराज गोविन्दपाद का नाम सुना और उन्हीं के आदेश से यहाँ आया हूँ।''

वृद्ध ने कहा—"आप यहाँ विश्राम कीजिए। गोविन्द योगी यहीं हैं। सामने जो शिला-खंड है, उसे हटाने पर एक गुफा दिखाई देगी। उसी गुफा के भीतर योगिराज समाधिस्थ हैं। जब उनकी समाधि भंग होगी तब हम सब उनसे उपदेश ग्रहण करेंगे। यहाँ हम काफी दिनों से समाधि भंग होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी तक उनकी समाधि भंग नहीं हुई है।"

शंकर ने प्रश्न किया—"क्या मैं उनका दर्शन कर सकता हूँ?"

वृद्ध ने कहा—"अवश्य कर सकते हो, पर गुफा के भीतर घोर अंधकार है। बाहर रखे दीपक को लेकर भीतर जा सकते हो।"

शिलाखंड को हटाकर शंकर भीतर गया। उसने भीतर जाकर देखा—एक दीर्घ जटाधारी संन्यासी समाधिस्थपर हैं—जैसे प्रस्तर की प्रतिमा। कुछ देर तक उन्हें एक-टक देखने के बाद शंकर वहीं बैठ गया और स्तव-पाठ करने लगा। बाहर जितने संन्यासी बैठे थे, वे लोग शंकर के पीछे आकर खड़े हो गये। स्तव-पाठ के कारण प्रस्तर-प्रतिमा में स्पन्दन हुआ और उनकी आँखें खुलीं। शंकर का आगमन प्रतीक्षारत संन्यासियों के लिए वरदान ले आया।

शंकर ने योगिराज को साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद एक-एक कर संन्यासियों ने प्रणाम किया। यथाविधि सभी आगत संन्यासियों को गोविन्दपादजी उपदेश देने लगे। सबसे कनिष्ठ होने के कारण शंकर पर उनकी विशेष कृपा हुई। उन्होंने सभी संन्यासियों को शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया।

इसके बाद वे प्रथम वर्ष में हठयोग, द्वितीय वर्ष में राजयोग और तृतीय वर्ष में ज्ञानयोग की शिक्षा देते रहे। गुरु की कृपा से शंकर ने अल्प समय में ब्रह्मसूत्र आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया। शंकर की प्रतिभा से गुरुदेव प्रसन्न हो उठे।

फिर वर्षाकाल आ गया। नदियाँ उफनने लगीं। चारों ओर बाढ़ का पानी फैल गया। धीरे-धीरे नदी का पानी गुफा के पास आ गया। यह देखकर संन्यासियों का दल चिन्तित हो उठा। तभी शंकर न जाने कहाँ से खोजकर एक कलश ले आया और उसे गुफा के मुहाने पर रखने के बाद उसने कहा—"अब आप लोग निश्चिन्त होकर साधना करते रहिये। बाढ़ का पानी भीतर नहीं आयेगा।"

शंकर का कथन सत्य हुआ। बाढ़ का जो जल गुफा के भीतर आ सकता था, वह उसी कलश में समाहित हो गया। शंकर की इस योग-शक्ति से संन्यासी गण चकित रह गये और जब योगिराज को इसकी जानकारी हुई तब उन्होंने कहा—"शंकर पूर्ण योगी बन गया है। अब इसे कुछ सिखाना नहीं है। भगवान् शंकर का अवतार है। उन्हीं का एक अंश है। अब मेरा कार्य समाप्त हो गया। मैं इस शरीर को त्यागकर परमधाम चला जाऊँगा।"

योगिराज के कथन को सुनकर सभी संन्यासी अश्रुपात करने लगे। यह देखकर गोविन्दपाद ने कहा—"तुम लोगों को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। अपनी जगह मैं

शंकर को छोड़े जा रहा हूँ। उसमें सारी शक्तियाँ निहित हैं। शंकर का अनुसरण करने पर तुम सभी को वास्तविक मार्ग सुलभ हो जायगा। वह साक्षात् शंकर का अवतार है।''

अपने बारे में गुरुदेव के वचनों को सुनकर शंकर ने उन्हें गद्‌गद भाव से साष्टांग प्रणाम किया। गुरुदेव ने उससे कहा—''शंकर, अब तुम यहाँ से क़ाशी चले जाओ। तुम्हारे आगमन की मैं प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे माध्यम से अद्वैत ब्रह्म विज्ञान का प्रचार होगा।''

* * *

गुरुदेव की आज्ञानुसार शंकर काशी आये और अद्वैत मत का प्रचार करने लगे। इनकी वाणी और ज्ञान से प्रभावित होकर काफी लोग इनके अनुयायी बन गये। तत्कालीन पंडित शास्त्रार्थ में पराजित होने लगे। काशी नगरी में शंकर का आगमन विस्मयजनक प्रमाणित हुआ।

एक दिन अपनी शिष्य-मंडली के साथ शंकर मणिकर्णिका घाट पर स्नान के लिए आ रहे थे। सहसा उनके सामने से चार भैसों को लेकर एक चांडाल आ गया। शंकर विद्वत्ता में आचार्य हो गये थे, पर अभी तक सर्वभूतों के प्रति समदर्शी नहीं हुए थे। जन्मजात संस्कार शेष था। नीच जाति को स्पर्श नहीं करते थे।

शंकर ने चांडाल से कहा—''कृपया इन पशुओं को लेकर एक किनारे हो जाओ।''

चांडाल ने उपेक्षा के साथ पूछा—''आप किसे हटाने को कह रहे हैं? आत्मा को या इस शरीर को? आत्मा तो सर्वव्यापी निष्क्रिय एवं उसका स्वभाव शुद्ध है। वह कैसे हट सकता है? गंगा नदी तथा मद्य के प्याले में चन्द्र का बिम्ब एक-सा दृष्टिगोचर होता है, क्या दोनों पृथक् हैं। रहा शरीर का प्रश्न। वह तो जड़ है, वह कैसे हट सकता है?''

चांडाल के वचन सुनकर शंकर स्तंभित रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि चांडाल के भेष में यह कोई दिव्य पुरुष है। उन्होंने तुरन्त उनकी स्तुति करते हुए कहा—''आप चाहे चांडाल हों या विप्र। आप मेरे गुरु हैं। कृपया मेरा प्रणाम स्वीकार करें।''

इतना कहते ही वहाँ चांडाल के बदले भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—''वत्स, तुम्हारे माध्यम से मैं पुनः वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा। तुम महर्षि व्यास के ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करो और अद्वैत ब्रह्मज्ञान का प्रचार करो।''

इतना कहने के बाद भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। स्नानादि के पश्चात् शंकर जब अपने आश्रम आये तब किसी दैवी शक्ति ने उन्हें तीर्थयात्रा करने की प्रेरणा दी। काशी से आप हिमालय की ओर चल पड़े। हरिद्वार, ऋषिकेश होते हुए वे बदरीनाथ आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि प्राचीनकाल में यहाँ ऋषियों ने जिस विष्णु विग्रह को स्थापित किया था, वह गायब है। चीनी डाकुओं के भय से नदी गर्भ में छिपा दिया गया था। उस मूर्ति की अब तक काफी खोज हो चुकी है, पर प्राप्त नहीं हुई है।

आचार्य शंकर ने कहा—"मैं उस मूर्ति को खोज सकता हूँ। क्या आप लोग उसकी पूजा करेंगे?"

स्थानीय लोगों के द्वारा पूजा करना स्वीकार करने पर शंकर अपने शिष्यों के साथ अलकनन्दा नदी के एक स्थान पर आये। एक जगह दिखाते हुए कहा कि मूर्ति यहीं है। नदी से विग्रह लाकर बड़े समारोह के साथ स्थापना की गयी। इसके बाद आचार्य उत्तरकाशी चले आये।

कहा जाता है कि यहाँ व्यास देव छद्म वेष में रहते थे। उन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया। बाद में व्यास देव ने शंकराचार्य से कहा कि यथाशीघ्र आप भारत-प्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल भट्ट से मिल लें। वे उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सर्वत्र दिग्विजय कर चुके हैं। वैदिक-धर्म के वे एकमात्र विद्वान् हैं। इन दिनों प्रयाग में हैं।

इस समाचार को सुनते ही शंकराचार्य अपने शिष्यों के साथ प्रयाग की ओर रवाना हो गये। मार्ग में कई तीर्थों का दर्शन करते हुए प्रयाग आये। संगम में स्नान करने के बाद शंकराचार्य एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि नगर से काफी लोग कोलाहल करते हुए नदी तट की ओर जा रहे हैं। कुतूहलवश उन्होंने अपने निकट से जाते हुए एक पथिक से पूछा कि यह भीड़ कहाँ जा रही है?

उसने कहा—"भट्टपाद कुमारिल भट्ट गुरुवध अपराध के कारण आज तूषानल में प्रवेश करने जा रहे हैं। सभी लोग उस दृश्य को देखने के लिए जा रहे हैं।"

यह बात सुनते ही शंकराचार्य अपने को संयत नहीं रख सके। शिष्यों कें साथ तुरन्त घटना-स्थल की ओर रवाना हो गये। लोगों की जबानी ज्ञात हुआ कि कुमारिल भट्ट बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करने के लिए नालन्दा गये थे। वहाँ पीठ स्थविर धर्मपाल के निकट अध्ययन करते थे जो बौद्ध धर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे। धर्मपालजी अपने अध्यापन-काल में एक दिन वैदिक-धर्म तथा वेदों की निन्दा करने लगे। श्री कुमारिल भट्ट बौद्ध-दर्शन का अध्ययन जरूर करते थे, पर वे अन्तर से वैदिक थे। गुरु का प्रतिवाद करना अपराध है जानते हुए वे अश्रुपात करने लगे। धर्मपाल को जब कुमारिल के रोने का वास्तविक कारण ज्ञात हुआ तब वे बिगड़ उठे। बात बढ़ गयी। धर्मपाल ने अपने शिष्यों से कहा कि इस पातकी को पकड़कर ले जाओ और पहाड़ पर से नीचे गिरा दो। ऐसे बौद्ध-विद्रोही को जीवित रहने का अधिकार नहीं है।

आज्ञा का पालन हुआ। पर्वत पर से गिरा देने पर भी कुमारिल की कोई हानि नहीं हुई। बाद में दोनों ओर से शास्त्रार्थ हुआ। उस समारोह में कुमारिल भट्ट विजयी हुए। धर्मपाल को इससे बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने घोषणा की—"यद्यपि मैं शास्त्रार्थ में पराजित हो गया हूँ तो भी मेरी आस्था बौद्ध धर्म के प्रति आज भी है। शर्त के अनुसार मैं आज तूषानल में प्रवेश करूँगा।"

गुरु के निधन से कुमारिल को बड़ा आघात पहुँचा। अगर कुमारिल पराजित हो जाते तो उन्हें तूषानल में प्रवेश करना पड़ता। नालन्दा से चलकर वे भारत के सभी क्षेत्रों में शास्त्रार्थ करते हुए दिग्विजयी हुए, पर गुरु-वध की पीड़ा इन्हें कष्ट पहुँचाती रही। आज उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तूषानल में प्रवेश करने जा रहे हैं।

घटना-स्थल पर आकर शंकराचार्य ने भक्तिपूर्वक कुमारिल भट्ट को नमस्कार किया। एक किशोर संन्यासी को देखकर कुमारिल को आश्चर्य हुआ। शंकर का परिचय प्राप्त करने के बाद कुमारिल ने कहा—''आज हम पहली बार मिल रहे हैं। आप भी वैदिक हैं। मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है। इस वक्त मेरे पास आने का क्या कारण है?''

आचार्य ने कहा—''मैंने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा है। मेरी इच्छा है कि आप इस पर एक वार्त्तिक रचना कर दें तो मेरी कृति निर्दोष प्रमाणित हो जायगी।''

कुमारिल भट्ट की भौहों पर बल पड़ गये। उन्होंने कहा—''कहाँ है वह ग्रंथ? लाओ, देखूँ।''

आचार्य के एक शिष्य ने श्रद्धापूर्वक उनके हाथों पर ग्रंथ रखा। कुमारिल भट्ट देर तक उसे उलट-पुलटकर देखते रहे। बाद में उन्होंने कहा—''इस ग्रंथ के विचारों से मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ, परन्तु अब मेरे पास समय नहीं है। मेरा अंतिम काल आ गया है। मेरे एक शिष्य का नाम है—मंडन मिश्र। विद्वत्ता की दृष्टि से वह मेरे समकक्ष है। अगर उसे विचारों से पराजित कर सकें तो समझ लीजिएगा कि मैं पराजित हो गया। अगर वह आपकी रचना पर वार्त्तिक रचना करते हैं तो आपकी यह कृति अमर हो जायगी।''

शंकर ने प्रश्न किया—''मंडन मिश्र कौन हैं?''

भट्ट ने कहा—''वे एक धनी परिवार के गृहस्थ विद्वान् हैं। माहिष्मती नगर में रहते हैं। आप उनके निकट जाइये। मध्यस्थता के लिए उनकी पत्नी सरस्वती देवी से आग्रह कीजिएगा, क्योंकि मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ में उनकी तरह मध्यस्थता करने वाला इस भारत में दूसरा कोई नहीं है। मंडन मिश्र का अपर नाम विश्वरूपाचार्य है, उसी प्रकार सरस्वती देवी का अपर नाम उभय भारती है। वे अपने पिता से ज्ञान प्राप्त कर चुकी हैं। एक प्रकार से उन्हें सरस्वती देवी कहा जाता है।''

*　　*　　*

कुमारिल भट्ट की सलाह के अनुसार शंकराचार्य माहिष्मती आये तो ज्ञात हुआ कि मंडन मिश्र पितृ-श्राद्ध में व्यस्त हैं। बाहर खड़े पहरेदार ने कहा—''आज उनसे मुलाकात संभव नहीं है।''

शंकराचार्य के आग्रह करने पर उनका समाचार भीतर भिजवाया गया। वहाँ से भी वही जवाब आया। अब शंकराचार्य ने सोचा कि न चाहते हुए भी मुझे अन्य उपाय का सहारा लेना पड़ेगा। वे आकाश-मार्ग से मंडन मिश्र के पास वहीं पहुँचे जहाँ वे

श्राद्ध के लिए तर्पण कर रहे थे। इन्हें इस तरह आते देख मंडन मिश्र नाराज हो उठे। बाद में अचानक उन्हें ख्याल आया कि इस तरह तो केवल योगी व्यक्ति ही आ सकता है। उन्होंने यहाँ आने का कारण पूछा।

शंकराचार्य ने कहा—''मैं आपके पास प्रयाग से आ रहा हूँ। आपके गुरु आचार्य कुमारिल भट्ट गुरु-वध पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तूषानल में प्रवेश कर गये हैं। मैं उनसे अपने ग्रंथ के लिए वार्त्तिक रचना लिखने का अनुरोध लेकर गया था। उन्होंने कहा कि मैं तो प्रायश्चित्त करने जा रहा हूँ। तुम मेरे शिष्य मंडन मिश्र के पास जाओ और उनसे शास्त्रार्थ करो। वे जब पराजित हो जायेंगे तब तुम्हारे शिष्य बन जायेंगे और वार्त्तिक रचना भी लिख देंगे। उन्हीं के निर्देशानुसार आपके निकट आया हूँ।''

मंडन मिश्र ने कहा—''आपका साहस देखकर मैं विस्मित हो गया। इस वक्त मैं श्राद्ध-कार्य में व्यस्त हूँ। आप मेरी अतिथिशाला में विश्राम करें। कल इस सम्बन्ध में विचार किया जायगा।''

शंकराचार्य ने कहा—''उचित निर्णय है आपका, श्रीमन् । कल हम बातचीत करेंगे।''

इतना कहकर शंकराचार्य वहाँ से चले आये। उन्होंने शिष्यों से कहा—''हम गृहस्थ की अतिथिशाला में नहीं रहेंगे। किसी वृक्ष के नीचे आश्रय लेंगे।''

दूसरे दिन मंडन मिश्र शास्त्रार्थ के लिए जब प्रस्तुत हुए तब मध्यस्थता का प्रश्न उठा। शंकराचार्य ने कहा—''पूज्यपाद ने मुझे सुझाया था कि आपकी पत्नी सरस्वती देवी इसके लिए उपयुक्त हैं। उनके समान दूसरा कोई मध्यस्थता करने लायक भारत में नहीं है।''

मंडन मिश्र ने कहा—''मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

भीतर बैठी सरस्वती देवी इस वार्तालाप को सुन रही थीं। मंडन मिश्र के आह्वान पर वे बाहर आयीं। शंकराचार्य ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—''माँ, हम दोनों के शास्त्रार्थ में आप मध्यस्थता करें, यहीं पूज्यपाद भट्टजी की इच्छा थी।''

सरस्वती देवी की मध्यस्थता में दोनों दिग्गजों ने शास्त्रार्थ प्रारंभ किया। यह क्रम अट्ठारह दिनों तक जारी रहा। अंत में मंडन मिश्र ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। यह देखकर सरस्वती देवी शंकित हो उठीं। अब पति को आचार्य का शिष्य बनना पड़ेगा यानी संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा।

तुरन्त तड़ित् बुद्धि से सरस्वती देवी ने निर्णय दिया—''आचार्यजी, जब तक आप मुझे शास्त्रार्थ में पराजित नहीं कर लेते तबतक आप अर्द्ध-विजित रहेंगे। मैं इनकी अर्द्धांगिनी हूँ, अतएव मुझे भी पराजित करना पड़ेगा।''

इस प्रस्ताव को सुनकर आचार्य पहले चौंके, फिर उन्होंने कहा—''ठीक है माँ। अब आप पूर्वपक्ष कीजिए।''

सरस्वती देवी ने पूछा—"यतिवर, काम के कितने लक्षण हैं? उसकी कितनी कलाएँ हैं?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका ज्ञान शंकराचार्य को नहीं था और ऐसे प्रश्न किये जा सकते हैं, इसकी आशा नहीं थी। उन्होंने कहा—"आप मुझसे शास्त्रीय प्रश्न पूछें। मैं ठहरा संन्यासी, इस प्रश्न का जवाब कैसे दे सकता हूँ?"

सरस्वती देवी ने कहा—"कामशास्त्र भी शास्त्र है। क्या आप सर्वज्ञ नहीं हैं? काम की बातों से आपके मन में कोई विकार नहीं आना चाहिए।"

आचार्य का मस्तक झुक गया। उनकी शिष्यमंडली चिन्तित हो उठी। सभा में उपस्थित पंडितों का दल मुस्करा उठा। आचार्य ने कहा—"माँ, नियमानुसार मैं आपसे एक माह का समय चाहता हूँ। मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ, पर संन्यासी होने के कारण मौखिक रूप से कुछ नहीं कह सकूँगा। काम की चिन्ता संन्यासियों के लिए घातक है। भविष्य में मेरा उदाहरण देकर संन्यासी गलत कार्य करेंगे। इससे संन्यास-धर्म कलंकित हो जायगा।"

सरस्वती देवी ने कहा—"अगर आप ठीक उत्तर न दे सके तो मेरे पति आपके शिष्य नहीं बनेंगे।"

आचार्य ने 'तथास्तु' कहा और सभा भंग हो गयी। आचार्य के शिष्य चिन्तामग्न होकर अपने गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े। नगर से बाहर जंगल के भीतर आकर सभी लोग विश्राम के लिए बैठ भी नहीं पाये थे कि मानव कोलाहल और साथ ही क्रन्दन-ध्वनि सुनाई देने लगी। आचार्य को समझते देर नहीं लगी कि किसी व्यक्ति का निधन हो गया है। शव को लेकर लोग श्मशान भूमि जा रहे हैं।

उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा—"पद्मपाद, तुम सब शीघ्र आसपास किसी गुफा की खोज करो। जहाँ हम सब कुछ दिन सुरक्षित रह सकें।"

यह आज्ञा पाते ही सभी शिष्य चारों तरफ फैल गये। थोड़ी देर बाद आचार्य के उपयुक्त एक गुफा मिल गयी। गुफा के भीतर आकर आचार्य ने कहा—"मैं योगबल से चोला बदल रहा हूँ। तुम लोग सावधानी से मेरे शरीर की रक्षा करना। एक माह के बाद मैं पुनः इस शरीर में आ जाऊँगा। रक्षा-कार्य में त्रुटि न हो और न मेरे लिए चिन्तित होना।"

उधर शव वाहक धीरे-धीरे नदी किनारे पहुँच गये। उक्त शव स्थानीय किसी राजा का था। लोग चिता सजाने में व्यस्त थे। अचानक शव हिलने लगा और उसकी साँस चलने लगी। चकित दृष्टि से देखते हुए राजा उठ बैठा। अपने राजा को जीवित देखकर सभी लोग प्रसन्नता से उछल पड़े। नाचते-गाते राजा अमरुक को लेकर सभी लोग महल वापस आ गये।

इस घटना के एक माह बाद राजमहल में पुनः राजा का निधन हो गया और इधर शंकराचार्य अपने पूर्व शरीर में प्रकट हो गये। मंडन मिश्र के यहाँ आकर आचार्य

ने कहा—"माँ, मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कह सकता। इस ग्रंथ में समस्त बातों का उल्लेख है। आप इसका अध्ययन कर लें।"

आचार्य के शिष्यों से सारी कहानी सुनने के बाद सरस्वती देवी ने निर्णय दिया—"अब आप संपूर्ण रूप से विजयी हुए हैं। पति के संन्यास लेने पर पत्नी विधवा मानी जाती है। मेरा कार्य समाप्त हो गया।"

इतना कहने के पश्चात् सरस्वती देवी ने योग-बल से अपना शरीर त्याग दिया।

* * *

आचार्य माहिष्मती से पंचवटी, पंढरपुर, श्रीशैल, पैठण आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए श्रीबेली आये। इस गाँव में अधिकतर ब्राह्मण निवास करते थे। गाँव में शिव मंदिर था। इस गाँव में आते ही आचार्य और उनके शिष्य मंदिर में दर्शन करने गये और स्तव पाठ करने लगे। आचार्य के आगमन का समाचार गाँव में फैल गया। स्थानीय पंडित वर्ग को आचार्य के शिष्य पद्मपाद और सुरेश्वर से दिलचस्पी थी जिनकी विद्वत्ता का डंका भारत में गूँज रहा था। ब्राह्मणों की बस्ती होने के कारण यहाँ वेद-पाठ और शास्त्रार्थ करने की परम्परा थी। दरअसल लोग आचार्य के शिष्यों से शास्त्रार्थ करना चाहते थे, परन्तु शिष्य-मंडली में धुरंधर विद्वान् मंडन मिश्र तथा सनन्दन को देखकर सभी सहम गये।

आचार्य यहाँ के लोगों को उपदेश देने लगे। उपदेश के समय प्रभाकर शास्त्री नामक एक ब्राह्मण नियमित रूप से आता और कुछ कहने को जैसे उत्सुक रहता था। आखिर एक दिन मौका मिला। उसने कहा—"प्रभो, मुझ पर कृपा करें। मुझे सिर्फ एक कष्ट है। ले-देकर भगवान् ने मुझे एक पुत्र दिया है। वह भी गूँगा। तेरह वर्ष का हो गया है, आज तक उसके मुँह से एक शब्द नहीं निकला। खिलाने पर खाता है और लिटाने पर लेटता है। बैठाने पर बैठ जाता है। पूर्ण जड़ भरत है। जिस प्रकार आपने मौनाम्बिका के एक परिवार पर कृपा की है, उसी प्रकार मुझ पर कृपा कीजिए।"

मौनाम्बिका की घटना यों हुई थी कि आचार्य श्रीबेली आने के लिए पैठण से रवाना होकर मौनाम्बिका गाँव के पास आये। जब वे मौनाम्बिका गाँव में प्रवेश कर आगे बढ़ने लगे तभी एक शोकाकुल दम्पति से अपने मृत पुत्र के शव को उनके पैरों के पास रखा और पछाड़ खाकर रोने लगे। आचार्य का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। वे वहीं बैठकर बालक के शव पर हाथ फेरने लगे।

थोड़ी देर बाद बालक के शरीर में स्पन्दन होने लगा और उसकी आँखें खुल गयीं। यह दृश्य देखकर बच्चे के माता-पिता प्रसन्नता से नृत्य करने लगे। उपस्थित लोगों में आचार्य के चरण-स्पर्श करने की होड़ लग गयी। शायद इससे उनके जीवन में कल्याण हो।

इस घटना का प्रचार तेजी से हुआ। आचार्य के श्रीबेली पहुँचने के पूर्व ही वह समाचार स्थानीय लोगों में चर्चा का विषय बन गया। इसी घटना से प्रभावित होकर प्रभाकर आचार्यजी की सेवा में आया। उसे दृढ़ विश्वास था कि जो व्यक्ति मृत बालक को जीवन-दान दे सकता है, वह मेरे गूँगे बालक को भी वाणी दे सकता है।

दूसरे दिन प्रभाकर बालक को अपने साथ लेकर आचार्यजी के पास आकर बोला—''प्रभो, यही है वह बालक । इसे अपना आशीर्वाद दीजिए। कम से कम कुछ पढ़-लिख ले। ब्राह्मणोचित कर्म करे। अपने साथियों के साथ खेलें।''

आशुतोष शंकर दयार्द्र हो उठे। उन्होंने बालक को अपने पास बैठाते हुए कहा—''वत्स, तुम कौन हो? क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ से आये हो? कहाँ जाओगे? बोलो।''

एकाएक बालक शुद्ध आत्मस्वरूप परिचायक त्रयोदश श्लोक हस्तामलक स्तोत्र पाठ करने लगा। पिता के साथ-साथ उपस्थित दर्शक चकित रह गये। स्तोत्र समाप्त करने के बाद बालक पुनः चुप हो गया।

आचार्य ने अपने शिष्य से कहा—''पद्मपाद, यह हस्तामलक स्तोत्र था। इसका सम्यक्-ज्ञान होने पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। निर्गुण ब्रह्मोपासकों के लिए यह महत्व-पूर्ण स्तोत्र है। तुम लोग भी इसका अभ्यास करो।''

कुछ देर बाद आचार्य ने प्रभाकर से कहा—''आप इस बालक को लेकर क्या करियेगा? यह गृहस्थी के योग्य नहीं है। इसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है। इसके द्वारा आपका कोई काम पूरा नहीं होगा! आप यह बालक मुझे दान में दे दें।''

इस प्रस्ताव को सुनते ही प्रभाकर व्याकुल हो उठे। पुत्र भले ही विकलांग हो, पर वह माता-पिता के लिए प्रिय होता है। प्रभाकर ने कहा—''मैं भले ही पुत्र का अभाव अनुभव न करूँ, पर इसकी माँ पुत्र वियोग सहन नहीं कर पायेगी।''

आचार्य ने हँसकर कहा—''आप दोनों को आज एक बात बता दूँ। शरीर से यह आपका पुत्र अवश्य है, पर आत्मा से नहीं। वास्तव में इसकी आत्मा एक सिद्ध पुरुष की है।''

प्रभाकर की पत्नी ने कहा—''यह कैसे संभव है? मैं इसके जन्म से लेकर आज तक इस बात के लिए तरसती रही कि एक बार यह मुझे माँ कहकर पुकारे।''

आचार्य ने कहा—''आप दोनों उस समय की घटना स्मरण करें जब आपका पुत्र दो वर्ष का था और इसे लेकर आप लोग तीर्थ-भ्रमण करने गये थे तब यमुना किनारे कुटिया में एक संन्यासी ध्यानमग्न था। बच्चे को किनारे अकेला छोड़कर स्नान करने नहीं जाना चाहते थे। भय था कि कहीं डूब न जाय। बच्चे को संन्यासी के पास बैठाकर आप लोगों ने कहा कि इसका ख्याल रखें। हम स्नान करके आते हैं। संन्यासी ध्यानमग्न था। उसने आपकी बातें नहीं सुनीं। स्नान करने के बाद जब आप आये तो बच्चा गायब था। अचानक आपकी नजर पानी पर पड़ी, वहाँ बालक तैर रहा था। वह मर चुका था। उस बच्चे को संन्यासी के पास लाकर आप रोने लगीं। संन्यासी को

समझते देर नहीं लगी कि उसकी गलती के कारण ऐसा हुआ है। आपको आश्वस्त करने के बाद वे पुनः ध्यानस्थ हो गये। अपने योग-बल से आपके मृत पुत्र के शरीर में आ गये। आपका पुत्र जीवित हो गया। आपने सोचा कि यह चमत्कार संन्यासी की कृपा से हुआ है जब कि संन्यासी का निधन हो चुका था। बाद में आपको यह मालूम हुआ कि संन्यासीजी अब नहीं रहे। सारी बातें ठीक हैं या नहीं।''

प्रभाकर और उनकी पत्नी को सारी बातें याद आ गयीं। पत्नी ने कहा—''हाँ, महाराज, आपके कहने पर सारी घटनाएँ याद आ गयीं। मेरी इच्छा है कि आप कुछ ऐसा करें कि मेरा पुत्र मुझे वापस मिल जाय। मेरे पुत्र को ठीक कर दीजिए।''

आचार्य ने कहा—''माँ, मैं तुम्हारी ममता को समझ रहा हूँ। सच तो यह है कि इस शरीर पर ब्रह्मज्ञानी की कोई ममता नहीं है, क्योंकि यह उसका नहीं है अतएव यह बालक आप लोगों के किसी काम में नहीं आयेगा। हमारे साथ रहने से शायद बातें करे। ब्रह्मज्ञानी सर्वदा गृहस्थी से दूर रहते हैं। विश्वास न हो तो आप इनसे पूछ लें कि ये मेरे साथ रहना पसन्द करेंगे या आप लोगों के साथ?''

माँ बेटे को अपनी बाँहों में लेकर बोली—''बोलो बेटा, तुम हमारे साथ रहोगे या हमें छोड़कर चले जाना चाहते हो?''

ब्रह्मज्ञानी ने सोचा—यही वह मौका है जब इस मायाजाल से मुक्ति मिल सकती है। उन्होंने कहा—''माँ, मेरी आशा छोड़ दो। आचार्य का कथन पूर्णतः सत्य है। मैं इनके साथ रहना चाहता हूँ। मेरे बारे में सारी बातें सुनने के बाद क्यों ममता प्रकट कर रही हो? मेरे जाने के बाद आपको पुनः संतान-लाभ होगा। पिताजी, अब आप माताजी को समझाने की कृपा करें।''

पुत्र की बातें सुनकर प्रभाकर ने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा—''देवी, अब ममता के पाश से मुक्त हो जाओ। आचार्यजी ने मेरी आँखें खोल दी हैं। चलो, अब घर चलें।''

दोनों पति-पत्नी पहले आचार्यजी फिर अपने पुत्र को प्रणाम कर चले गये। कुछ देर में ही यह समाचार पूरे गाँव में फैल गया। लोगों की भीड़ प्रभाकर के इस पुत्र को देखने के लिए आने लगी। आगे चलकर आचार्य ने इस बालक को संन्यास देकर इसका नाम रखा—हस्तामलकाचार्य। अपने अन्य शिष्यों को शिक्षा देने के लिए आचार्य ने हस्तामलक स्तोत्र पर एक अपूर्व भाष्य लिखा।

श्रीबेली में कुछ दिन रहने के बाद वे शृंगगिरि आये जहाँ संन्यास लेने के पूर्व एक बार नाग और मेढकों की मैत्री का दृश्य देख चुके थे। प्राचीनकाल में यहाँ विभाँडक ऋषि का आश्रम था। इस ऋषि के पुत्र का नाम ऋष्यशृंग था जिसके नाम पर इस गिरि का नामकरण हुआ था। इस पर्वत का वर्णन सुनने के बाद पद्मपाद ने सुझाव रखा—''यहाँ मठ बनाकर हम लोग साधना करेंगे। माँ सरस्वती देवी ने कहा था कि दैव-शरीर में वे यहाँ उपस्थित रहेंगी।''

आचार्य ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। देखते ही देखते सभी शिष्य पर्णकुटि बनाने लगे। प्रत्येक शिष्य के लिए अलग-अलग कुटि बन गयी। तत्पश्चात् लोग साधना में जुट गये। स्थानीय राजा के कर्मचारियों ने आकर निवेदन किया कि अगर आचार्य अनुमति दें तो आप लोगों के लिए भवन बनवा दिया जाय।

आचार्य ने कहा—"संन्यासियों के लिए भवन की जरूरत नहीं होती। उन्हें वृक्षों के नीचे या गुफाओं में रहना चाहिए। आश्रम के लिए पर्णकुटि ठीक है।"

यहाँ आचार्यजी ने एक अर्से तक निवास करते हुए कई ग्रंथों की रचना की। शेष समय में वे शिष्यों को उपदेश देते थे। विशेष रूप से उपासना पर जोर देते हुए कहते थे—"मेरे शिष्यों, यह स्मरण रखना कि उपासना तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण कार्य हैं। जब तक शरीर में प्राण है तब तक उपासना करते रहना। शरीर के प्रत्येक अंग में एक-एक देवता निवास करते हैं। देवताओं की उपेक्षा करके कोई जीवित नहीं रह सकता। उपासना के द्वारा चित्त शुद्ध होता है। संशय, विपर्यय और विस्मृति नष्ट होते हैं। इससे एकाग्रता आती है। एकाग्रता योग-राज्य का द्वार है। इसी के द्वारा शुभ-दृष्टि जन्म लेती है। शारदा देवी विद्या की देवी हैं। उनकी उपासना से विद्या में स्फूर्ति प्राप्त होती है। अज्ञान के विनाश होने पर ज्ञान का उदय होता है, इसलिए संन्यासी को शारदा देवी की उपासना अवश्य करनी चाहिए।"

ठीक इन्हीं दिनों गिरि नामक एक ब्राह्मण बालक आचार्य की सेवा में आया। वह निरक्षर था, पर उसकी संन्यासी बनने की प्रबल इच्छा थी। आचार्य के यहाँ रहते हुए वह आचार्य और उनके शिष्यों में होनेवाली बातों को सुनकर हताश हो गया। वह समझ गया कि यहाँ तक पहुँचना संभव नहीं है। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह यहाँ रहते हुए केवल आचार्य की सेवा करेगा। स्वभाव से गिरि मृदुभाषी, विनीत और कर्मठ था। यही वजह है कि गिरि की उपस्थिति में एक भी शिष्य आचार्य की कोई सेवा नहीं कर पाता था। जिस समय आचार्य शिष्यों को उपदेश देते या अध्यापन करते, उस वक्त वह उनकी बगल में हाथ जोड़ कर खड़ा रहता । आचार्य के उपदेशों को समझ न पाने पर भी बराबर ध्यान लगाकर सुना करता था।

एक दिन की बात है । आचार्य उपदेश देते-देते सहसा इधर-उधर देखने लगे और फिर चुप हो गये। यह देखकर एक शिष्य ने कुतूहलवश प्रश्न किया—"भगवन्, आपने अध्यापन क्यों रोक दिया?"

आचार्य बोले—"तुम सब उपस्थित कहाँ हो? गिरि दिखाई नहीं दे रहा है?"

पद्मपाद ने कहा—"भगवन्, वह तो नदी किनारे आपके वस्त्रों को धो रहा है, फिर गिरि तो निरक्षर है। वह आपका उपदेश कैसे ग्रहण कर पायेगा?"

आचार्य ने कहा—"उसे आने दो । भले ही वह कुछ न समझे, पर बड़ी लगन के साथ वह उपदेश सुनता है।"

गिरि पर भगवान् की असीम कृपा हो गयी थी। अपनी गुरु-भक्ति के कारण

वह सर्वविद्या में पारदर्शी हो गया था। जिस व्यक्ति में गुरु के प्रति श्रद्धा न हो, उनके उपदेशों पर ध्यान न दे, उसे कैसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है?

गिरि अपने गुरु के वस्त्रों को साफ करने के बाद त्रोटक छन्द में गुरु-महात्म्य सूचक एक स्तोत्र की रचना करते हुए चल पड़ा। आचार्य के समीप आकर उसने उसका पाठ किया । गिरि की इस प्रतिभा को देखकर सभी शिष्य दंग रह गये। जो व्यक्ति संस्कृत का एक शब्द बोल नहीं पाता था, आज वह स्तोत्र-पाठ कर रहा है। स्तोत्र समाप्त करने के बाद उसने गुरु की स्तुति की। प्रणाम करने के पश्चात् गिरि ने कहा—"भगवन्, आप मेरे ऊपर अपनी कृपा की वर्षा करते रहें।"

यह देखकर एक अन्य शिष्य ने कहा—"गिरि की तरह मुझ पर भी कृपा कीजिए।" दूसरा कह उठा—"आज आपकी कृपा से गिरि धन्य हो गया।" तीसरे ने कहा—"हम पर इसी प्रकार कृपा करें, गुरुदेव।"

आचार्य ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"मेरे शिष्यों, तुम सब गिरि की भाँति श्रद्धा-सम्पन्न बनो। श्रद्धा से एकाग्रता आती है, मन की चंचलता नष्ट होती है और चित्त शुद्ध होता है। श्रद्धा ही सर्वविद्या का मूल है।"

इसके बाद गिरि की ओर देखते हुए आचार्य ने कहा—"अपनी असीम गुरु-भक्ति के कारण तुम इस स्तर तक पहुँच सके हो। तुम्हारी भक्ति का आदर्श पृथिवी पर उदाहरण के स्वरूप बना रहेगा।"

आचार्य की बातें सुनते ही गिरि ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मस्तक पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। आज गिरि की आकृति अपूर्व ज्योति से चमक रही थी। आगे चलकर आचार्य ने उसका नाम रखा—तोटकाचार्य।

तोटकाचार्य को उदाहरण बनाकर आचार्य शेष शिष्यों को उपदेश देते रहे । कुछ दिनों बाद एक दिन अध्यापन-काल में आचार्य ने अपनी जीभ पर मातृदुग्ध का आस्वाद अनुभव किया। वे समझ गये कि माँ मुझे स्मरण कर रही है।

पाठ बन्द करते हुए आचार्य ने कहा—"वत्स, मेरी माँ का अंतिमकाल आ गया है। इस वक्त वे मुझे स्मरण कर रही हैं। मैंने उनसे कहा था कि जहाँ कहीं भी रहूँगा, तुम्हारा अंतिम-संस्कार करने के लिए आ जाऊँगा। इसी शर्त पर माँ ने मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा दी थी। मैं तत्काल माँ के पास आकाश-मार्ग से जा रहा हूँ। तुम लोग गन्तव्य मार्ग से वहाँ आ जाना।"[1]

आकाश-मार्ग से जब वे अपने गाँव के समीप पहुँचे तब गाँव में न उतरकर सुनसान स्थान पर उतरे और वहाँ से पैदल घर आये।

घर आने पर उन्होंने देखा—माँ की सेवा एक वृद्ध परिचारिका कर रही है जबकि वे पड़ोस में स्थित एक पट्टीदार को यह सेवा-भार सौंप गये थे। जाते समय उनसे

---

१. कुछ विद्वानों का मत है कि शृंगेरी से कालडी वे भूतों की मदद से गये थे।

यह कह गये थे कि निधन के बाद सारी जायदाद आपको सौंप दी जायगी। मैं संन्यासी हूँ, मुझे यह सब नहीं भोगना है।

माँ का चरण-स्पर्श किया। वे आनन्द से खिल उठीं। बोलीं—''जिस उद्देश्य से तू संन्यासी बना, लगता है वह पूरा हो गया। यही समाचार सुनने के लिए मैं अब तक जीवित हूँ क्यों, ठीक कह रही हूँ न?''

शंकर घर आया है, यह समाचार आसपास फैल गया। उस पट्टीदार को भी मालूम हुआ तो वे दिखावे के लिए चले आये। शंकराचार्य के कुछ कहने के पहले ही वे कहने लगे—''तुम्हारी माँ बड़ी लापरवाह है। हम लोगों की कोई बात ही नहीं सुनती। कोई जिद्द पकड़ लेगी तो पकड़े रहेगी। अच्छा हुआ जो तुम आ गये। अब जरा माँ की सेवा करो।''

पट्टीदार के जाने के बाद माँ ने कहा—''यह बहुत झूठा और स्वार्थी है। इसने कभी मेरी खोज-खबर नहीं ली। अगर यह वृद्धा मेरी सेवा न करती तो मैं कभी की मर गयी होती। तू उस पट्टीदार को सब कुछ देना चाहता है? उसे मत दे, बल्कि सारी सम्पत्ति इसे दे दे।''

आचार्य ने कहा—''आप चिन्ता न करें माँ। आपकी जो राय होगी, वही मैं करूँगा। इस वक्त तुम केवल भगवान् की चिन्ता करो।''

माँ ने कहा—''अच्छा-अच्छा। जा पहले स्नान-भोजन कर ले।''

आज का मानव चिरकाल से स्वार्थी रहा है। सम्पदा के मोह से मुक्त नहीं हो पाता। शंकर के आगमन के कारण पड़ोस के दो परिवार उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से भोजन की व्यवस्था करने लगे। सेवा करनेवाली महिला तथा जायदाद प्राप्त करने वाले पट्टीदार अपने यहाँ भोजन बनवाकर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। परिचारिका आयी और शंकर को अपने यहाँ पकड़कर ले गयी।

इधर शंकर के आने में देर होते देख पट्टीदार पता लगाने आया तो पता लगा कि परिचारिका उसे अपने यहाँ भोजन कराने ले गयी है। साथ ही यह भी सुना कि माँ की इच्छानुसार सारी सम्पत्ति उसे देने का निर्णय किया गया है। इस समाचार से पट्टीदार जलकर खाक हो गया।

भोजन के पश्चात् आचार्य जब घर आये तब माँ ने आग्रह किया—''बेटा, अब मुझे इष्ट के दर्शन करा दे।''

शंकराचार्य ने उपस्थित लोगों से निवेदन किया कि वे लोग अपने-अपने घर चले जायें। सभी लोगों के जाने के बाद शंकराचार्य समाधि लगाकर ध्यानस्थ हुए। कुछ ही देर बाद माँ ने देखा कि उनके सामने भगवान् शिव प्रत्यक्ष रूप से खड़े हैं।

उन्हें अभय-दान देते हुए भगवान् आशुतोष ने कहा—''तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।'' देखते ही देखते वह मूर्ति गायब हो गयी। पुनः थोड़ी देर बाद उसी स्थान पर माँ ने देखा—शंक, चक्र, गदा, पद्म लिए चतुर्भुज नारायण उपस्थित हैं। देवी लक्ष्मी

उनका चरण दबा रही हैं। यह दृश्य देखते-देखते वे आत्मविभोर हो उठीं। ठीक इसी समय उनका चोला छू गया।

*　　　*　　　*

पलक झपकते ही यह समाचार पूरे कालडी में फैल गया। समवेदना प्रकट करनेवालों की भीड़ आने लगी। पट्टीदार ने शंकर से कहा—''आप ठहरे संन्यासी। शव के पास से हट जाइये। आप तो अंत्येष्टि-क्रिया कर नहीं सकते। जो कुछ करना है, मुझे करना होगा।''

शंकर ने कहा—''आपका कहना ठीक है, पर मुखाग्नि मैं करूँगा। क्योंकि मैंने माँ को वचन दिया था।''

पट्टीदार ने कहा—''मैं आपकी इच्छा को समझ रहा हूँ। संन्यास-जीवन कितना कष्टकर है, इसका अनुभव करने के बाद अब गृहस्थ बनने की इच्छा हो रही है। माँ को दाग देकर सम्पत्ति पर अधिकार करने की इच्छा है। हम लोगों के रहते यह अनाचार नहीं हो सकता। नम्बूदिरी ब्राह्मण केरल प्रदेश के बाहर नहीं जाते। तुमने इस नियम का भंग किया है। एक प्रकार से तुम म्लेच्छ हो गये हो। चिर पुरातन प्रथा तोड़ने के कारण तुम जातिभ्रष्ट हो गये हो। अतएव अब तुम अपने पूर्व पुरुषों की जायदाद पर अधिकार नहीं कर सकते। तुम्हारे जैसा भ्रष्ट अगर सम्पत्ति पर अधिकार जमायेगा तो सारा समाज कलंकित हो जायगा। हम तुम्हें दाग—(मुखाग्नि) देने नहीं देंगे।''

आचार्य ने हँसकर कहा—''महाराज, मैं इस सम्पत्ति पर अधिकार करने की गरज से दाग नहीं दे रहा हूँ। माँ को वचन दिया था, उसका पालन करूँगा। आप इस ओर से निश्चिन्त रहें । मैं सम्पत्ति पर दावा नहीं करूँगा। हाँ, माँ अपने अंतिम समय में यह जरूर कह गयी हैं कि सब कुछ इस गरीब परिचारिका को दिया जाय, आपको नहीं। वह इसलिए कि माँ की सेवा यह करती रही, आप या आपके परिवार के लोग नहीं। आपको कोई कष्ट नहीं करना है। जो कुछ करना है, मैं इस वृद्धा की सहायता से कर लूँगा।''

यह बात सुनकर पट्टीदार क्रोध के कारण आपे से बाहर होकर बोले—''मेरे रहते देखता हूँ कि कौन तुम्हारी मदद करता है? दाग देकर तुम यह सम्पत्ति कैसे दूसरे को देते हो, यही देखना है। तुम खुद भ्रष्टा की संतान हो। अपने पिता की वृद्धावस्था में तुमने जन्म लिया है। शायद यह बात जानते होगे। दाग भले ही दो, पर सम्पत्ति नहीं मिलेगी। वह तो हम लोगों के कब्जे में है। अगर किसी ने मदद की तो उसे बिरादरी से निकाल देंगे।''

इस फतवे को सुनकर समवेदना प्रकट करने वाले खिसकने लगे। कुछ लोग इस झगड़े को सुलझाने लगे। बाद में परिचारिका भी डर के कारण भाग गयी। आचार्य अपने को संयत किये चुपचाप बैठे रहे। बाद में परिचारिका को आश्वासन देकर बुला लाये।

आचार्य ने उससे कहा—"तुम लकड़ी लाकर बाग में इकट्ठा करो। मैं अपने बाग में माँ का अंतिम संस्कार करूँगा।"

इसके बाद वे अपने रिश्तेदारों से आग माँगने गये, पर जातिच्युत होने के भय से किसी ने आग नहीं दी। यह व्यवहार देखकर वे क्षुब्ध हो उठे और अरणि काष्ठ लेकर स्वयं अग्नि मंथन किया।

क्रोध और अपमान से काँपते हुए आचार्य बोल उठे—"मैं इस नीच को अपनी सारी सम्पत्ति का भार इसलिए दे गया था कि यह मेरी माँ की देखभाल करेगा, पर इसने कुछ नहीं किया। जब तक इसे सम्पत्ति पाने की आशा थी तबतक मुँह नहीं खुला। आज जब इसे यह मालूम हुआ कि मैं अपनी सम्पत्ति दूसरे को दे रहा हूँ तब मेरी माँ कलंकिनी हो गयी? यह और इसका साथ देने वाले सभी लोग आज से वेद-हीन हो जायेंगे। कोई भी संन्यासी इनके दरवाजे पर भिक्षा ग्रहण नहीं करेगा। जिस प्रकार आज मैं अपनी माता का दाह-संस्कार घर के आँगन में कर रहा हूँ, उसी प्रकार इन लोगों को करना पड़ेगा।"

* * *

शंकराचार्य के साथ हुई इस दुर्घटना का समाचार राज-दरबार तक पहुँचा। राजा राजशेखर ने तुरन्त अपना विशेष दूत कालडी रवाना किया। उन्होंने कहलाया कि आचार्य से जाकर कहना—"मैं कल कालडी पहुँच रहा हूँ। मेरे आने तक वे वहाँ अवश्य रहें।"

दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्य नित्यकर्म से खाली होकर बाहर वाले कमरे में आकर बैठे। तभी राजा राजशेखर के आगमन का समाचार मिला। राजा का राजोचित और संन्यासी का तद्रूप एक दूसरे ने सम्मान किया। बाद में राजा के प्रश्न करने पर आचार्य ने कल की घटना का विवरण सुनाया।

राजा ने मंत्री की ओर देखते हुए कहा—"इस घटना की न्यायोचित जाँच की जाएगी। आप उस पक्ष के लोगों को साक्षी सहित उपस्थित होने का आदेश दें और आचार्यजी, आप भी अपने साक्षियों को लेकर विचार मंच पर उपस्थित हों।"

राजा आये हैं और वे कल की घटना का फैसला करेंगे, यह सुनकर पट्टीदार ने रुपये की लालच देकर कई साक्षी तैयार कर लिए। आचार्य की ओर से एक गरीब रिश्तेदार तथा परिचारिका थे।

दिन भर सवाल-जवाब करने के बाद यह प्रमाणित हो गया कि पट्टीदार का आक्षेप असत्य है। राजा ने आचार्य की ओर देखते हुए पूछा—"इन्हें कौन-सा दण्ड देना उचित होगा। इस बारे में आप सुझाव दीजिए।"

आचार्य ने कहा—"राजन्, मैं दण्ड देने का अधिकारी नहीं हूँ। यह आपका काम है। आप जो उचित समझें करें।"

आचार्य की राय सुनने के बाद सभी लोग दया की प्रार्थना करने लगे। राजा

ने कहा—''मैं दया करनेवाला कौन होता हूँ। मैं न्याय कर सकता हूँ। दया तो आचार्यजी कर सकते हैं।''

राजा का मन्तव्य सुनने के बाद सभी लोग आचार्य के चरणों पर गिर पड़े। दया के अवतार शंकराचार्य ने कहा—''मुझे जो सजा देनी थी, वह तो अकस्मात् कल मेरे मुँह से निकल गयी थी। अब महाराज जो चाहें, करें।''

राजा ने पूछा—''आपने कल क्या कहा था?''

आचार्य ने अपने अभिशाप की चर्चा की।

राजा ने कहा—''अगर आप इस दण्ड को पर्याप्त समझते हैं तो आगे मुझे कुछ नहीं कहना है।''

आचार्य मौन हो गये। ब्राह्मणों को संतोष हुआ कि सस्ते में छूटे। लेकिन दूसरे ही क्षण ज्ञान होते ही वे पुनः आचार्यजी के चरणों पर गिर पड़े और कहा—''महात्मन्, कृपया हमें वेद-हीन न बनायें। इससे अच्छा है कि हम मृत्यु को स्वीकार कर लें। वेद बिना हम जीवित नहीं रह सकेंगे। शेष दोनों अभिशाप हमें स्वीकार है।''

आचार्य ने सोचा—बात ठीक है। बोले—''तथास्तु।''

उपस्थित सभी लोग आचार्य और राजा की जय-जयकार करते हुए चले गये। लोगों के जाने के बाद कुछ देर तक राज्य और शासन की बातें हुईं। सहसा आचार्य ने पूछा—''कहिये राजन्, इधर किसी नवीन ग्रंथ की रचना आपने की?''

राजा ने खेद प्रकट करते हुए कहा—''कई वर्ष पूर्व महल में आग लग जाने के कारण मेरे तीनों ग्रंथ भस्म हो गये। आज तक मैं उनका पुनरुद्धार नहीं कर सका।''

आचार्य ने हँसते हुए कहा—''इसके लिए आपको दुखित होने की आवश्यकता नहीं है। अगर आपको उन ग्रंथों से प्रेम है तो मैं बोलता चलूँगा और आप उसे लिपिबद्ध करते चलें। मुझे कंठस्थ हैं।''

राजा आनन्द से उछल पड़े। उन्होंने कहा—''भगवन्, यह तो विस्मयजनक और शुभ समाचार है। जब आपको कंठस्थ है तब आप आवृत्ति करें, मैं प्रतिलिपि तैयार कर रहा हूँ।''

आचार्य आवृत्ति करने लगे। कुछ देर तक सुनने के बाद राजा ने कहा—''आपकी आवृत्ति पूर्णतः शुद्ध है। मैं कल कुछ लेखकों को लेकर आऊँगा और प्रतिलिपि तैयार करूँगा।''

* * *

कालडी में कुछ दिन निवास करने के बाद आचार्य ने निश्चय किया कि अद्वैतवाद के प्रचार के लिए यात्रा करना उचित है। जो लोग भ्रमपूर्ण-जगत् में विचरण कर रहे हैं, उन सभी को सही मार्ग दिखाना होगा। आचार्य ने अनुभव किया कि यह कार्य सरल नहीं है जब तक शास्त्रार्थ में पराजित नहीं किया जायगा तब तक अद्वैतवाद का

प्रसार नहीं होगा। शंकाओं के समाधान करने पड़ेंगे। कहीं-कहीं लांछन और हठ का सामना करना पड़ेगा।

अपने शिष्यों के साथ उन्होंने सर्वप्रथम केरल-राज्य में विजय प्राप्त की। बाद में पल्लवों के राज्य में आये। यहाँ से रामेश्वर आदि तीर्थ स्थानों में अद्वैतवाद का प्रचार करते हुए उत्तर की ओर रवाना हुए। भवानी, महालक्ष्मी, सरस्वती, वामाचारी, भागवत आदि संप्रदाय के उपासकों में तर्क, शास्त्रार्थ करते हुए उन्होंने अद्वैत मत की स्थापना की।

कर्नाटक, आंध्रप्रदेश के बाद वे कलिंग देश में आये। यहाँ आने पर उन्होंने अनुभव किया कि इस प्रदेश में बौद्धों का व्यापक प्रभाव है। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में पूजा तो होती है, पर कोई विग्रह नहीं है। विधर्मियों के भय से कभी स्थानीय लोगों ने चिल्का झील के पास विग्रह को गाड़ दिया था। बाद में उस स्थान को भूल गये कि कहाँ रखा गया था। काफी खोज करने पर भी विग्रह नहीं मिला। फलतः बिना विग्रह के स्थान की पूजा होती है।

आचार्य के आगमन का समाचार सुनकर स्थानीय विद्वान् आये। उन्होंने निवेदन किया कि हम आपकी कीर्ति सुन चुके हैं। आप कृपया अपने योगबल से हमें यह बतायें कि हमारे देवता को कहाँ छिपाकर रखा गया है ताकि हम उन्हें पुनः प्रतिष्ठा करके विधिपूर्वक पूजा चालू करें।

नागरिकों के आग्रह से प्रसन्न होकर आचार्य ने कहा—''आपका आग्रह उचित है। मैं प्रयत्न करूँगा।''

इतना कहने के पश्चात् वे ध्यानमग्न होकर स्तोत्र-पाठ करने लगे। थोड़ी देर बाद आँखें खोलते हुए उन्होंने कहा—''चिल्का झील के किनारे एक विशाल वटवृक्ष है। उसकी जड़ के नीचे एक पेटी में विग्रह है।''

इस समाचार को पाते ही नगर से कुछ लोग चिल्का की ओर गये और मूर्ति लेकर वापस आये। बड़े समारोह के साथ उसकी प्रतिष्ठा आचार्य के कर-कमलों से करायी गयी। विग्रह को पाकर पुरवासी आनन्द से विभोर हो उठे।

पुरी से चलकर आचार्य मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल होते हुए प्रागज्योतिष्पुर (असम) आये। उन दिनों असम में शाक्त तांत्रिकों का प्रभाव था। आचार्य अपने मत के प्रचार के लिए शास्त्रार्थ करने लगे। पंडितों के तर्कों तथा शंकाओं का समाधान करने लगे। इस प्रकार उनका प्रभाव बढ़ता गया। स्थानीय तांत्रिक अपनी पराजय से क्षुब्ध हो उठे। नागरिकों में शंकर का अच्छा प्रभाव पड़ा।

इन तांत्रिकों में अभिनव गुप्त पराजित होने के बाद से इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने आचार्य से बदला लेने के लिए अभिचार-क्रिया की। कुछ ही दिनों में आचार्य भगन्दर रोग से पीड़ित हो गये। धीरे-धीरे रोग बढ़ता गया। शिष्य-मंडली चिंतित हो उठी। शिष्यों ने चिकित्सा के लिए आचार्य से प्रार्थना की। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। बाद में असह्य पीड़ा होने पर चिकित्सा के लिए स्वीकृति दी।

चिकित्सा होने पर भी पीड़ा का उपशम नहीं हो रहा था। यह सब देखकर पद्मपाद उद्विग्न हो उठा। उसे नृसिंहदेव की सिद्धि थी। उसने नृसिंहदेव का आवाहन किया। नृसिंहदेव ने आकर कहा—''इसकी जानकारी अश्विनी कुमार दे सकते हैं।''

पद्मपाद के स्वप्न में आकर अश्विनी कुमार ने कहा—''यह रोग स्वतः नहीं हुआ है। किसी की अभिचार क्रिया के कारण हुआ है। बदले में अभिचार करना होगा, वर्ना यह ठीक नहीं होगा।''

इस सूचना से पद्मपाद क्रोध से अधीर हो उठे। गुरुदेव से कहने पर कोई लाभ नहीं हुआ। शिष्यों को इस बात का भय था कि आचार्यजी के बत्तीसवें वर्ष में मारकेश-योग है। फलतः उनके मना करने पर भी पद्मपाद ने प्रत्याभिचार किया। सभी शिष्यों ने इसका समर्थन किया।

दोनों ओर से मंत्र-शक्ति का संग्राम होने लगा। अन्त में पद्मपाद विजयी हुआ। तीन दिन के भीतर अभिनव गुप्त भगन्दर से पीड़ित हुआ और क्रमशः उसका रोग बढ़ता गया। इधर आचार्यजी स्वस्थ होने लगे। इस घटना के कारण कामाख्यावासी भयभीत हो उठे। अधिकांश लोगों ने उनका लोहा मान लिया।

* * *

असम से विजय प्राप्त कर आचार्यजी गौड़ देश में आये। एक दिन यहाँ अकेले चुपचाप बैठे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक स्थान पर पड़ी जहाँ तेज प्रकाश हुआ था। उन्होंने देखा कि उस प्रकाश के भीतर से एक योगी का आविर्भाव हुआ। वह योगी इनकी ओर आ रहा है। मुंडित मस्तक, गले में रुद्राक्ष की माता, गैरिक वस्त्र और आकृति से अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही है। आखिर यह विभूति कौन है?

क्षण भर के लिए आचार्य ध्यानस्थ हुए। तुरन्त उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति ने सूचित किया कि आगन्तुक महापुरुष दीक्षा गुरु गोविन्दपाद के गुरु यानी मेरे दादा गुरु हैं—भगवान् गौड़पादाचार्यजी।

इस ज्ञान को प्राप्त करते ही आचार्य तीव्र गति से उठे और उनके चरणों के निकट साष्टांग प्रणाम करने के बाद उन्हें यथोचित आसन पर बैठाया और स्वयं उनके चरणों के समीप बैठ गये।

कुछ दूरी पर शिष्य-मंडली बैठी थी। सभी अपने गुरुदेव के क्रिया-कलाप देख रहे थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव के कोई आराध्यदेव आये हैं। सभी पास आये । दोनों गुरुओं को साष्टांग प्रणाम कर सभी दूर खड़े हो गये।

दादा गुरु के चरणों को स्पर्श करते हुए शंकरजी ने कहा—''आपके आशीर्वाद से मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया है। जिसके ऊपर आपकी कृपा रहेगी, उसे कोई अभाव रह सकता है?''

कुछ देर मौन रहने के बाद गौड़पादाचार्य ने कहा—''तुम्हारा कार्य संतोषजनक

है। अब तुम्हारा कार्य समाप्त हो गया है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।''

इतना कहने के बाद वे अन्तर्धान हो गये। एक ज्योति शून्य में विलीन हो गयी।

कुछ दिनों बाद शिष्यों के अनुरोध पर आचार्य एक बार हिमालय की ओर आये। नेपाल से बदरीनाथ और तब केदारनाथ दर्शन करने गये। केदारनाथ की स्तुति में एक सुललित स्तव की रचना की।

इसके बाद ही उनमें परिवर्तन होने लगा। उन्होंने स्वत: अनुभव किया कि अब उनका कार्यकाल समाप्त हो रहा है। भारत में व्यापक रूप से अद्वैतवाद का प्रचार हो गया है। वेद-विरोधी नागरिक अब वेद के प्रति आस्थावान हो गये हैं।

एक दिन शिष्यों को उपदेश देते हुए आचार्य ने कहा—''वत्स गण, इस शरीर का कार्य समाप्त हो गया है। शेष कार्य अब तुम लोगों को सम्पन्न करना है। अगर कोई शंका हो तो प्रकट कर सकते हो।''

आचार्य के कथन से सभी शिष्य हतप्रभ रह गये। गुरुदेव अब तक हम शिष्यों को माता-पिता, भाई और सखा की तरह स्नेह देते रहे। हमने कभी कोई कष्ट अनुभव नहीं किया। आज ये हमसे बिछुड़ना चाहते हैं।

आँखों में आँसू भरकर पद्मपाद ने कहा—''प्रभो, आपके आशीर्वाद से हमारे लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। अब हमें भविष्य में क्या करना होगा, इसकी आज्ञा दीजिए।''

आचार्य ने कहा—''वत्स, तुम लोग अर्थात् मेरा मतलब—पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वर और तोटक तुम चारों भारत के चार प्रान्तों में, जहाँ विष्णु के धाम हैं, चार मठों की स्थापना करो। द्वारिका में विश्वरूप सुरेश्वर, पुरी में पद्मपाद, ज्योतिर्धाम में तोटक और शृंगेरी में हस्तामलक आचार्य पद पर विराजमान होकर भारत के निवासियों को उपदेश देते रहेंगे। द्वारिका स्थित मठ का शारदा मठ, पुरीधाम का गोवर्द्धन, ज्योतिर्धाम का ज्योतिर्मठ और रामेश्वर मठ का नाम शृंगेरी मठ होगा।[1] द्वारिका मठ के अधीन तीर्थ और आश्रम सम्प्रदाय वाले होंगे। इसी प्रकार गोवर्द्धन मठ के अधीन वन और अरण्य सम्प्रदाय, ज्योतिर्मठ के अधीन गिरि, पर्वत और सागर सम्प्रदाय और शृंगेरी मठ के अधीन सरस्वती, भारती और पुरी सम्प्रदाय वाले होंगे। शारदा मठ में सामवेद, गोवर्द्धन में ऋग्वेद, ज्योतिर्मठ में अथर्ववेद, शृंगेरी मठ में यजुर्वेद की प्रधानता रहेगी। इन चारों के लिए तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा और अहं ब्रह्मास्मि यही चार वाक्य चारों मठों के लिए उपयोगी होगा। जो लोग ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना चाहेंगे, उनके लिए शारदामठ स्वरूप, गोवर्द्धन मठ प्रकाश, ज्योतिर्मठ, आनन्द और शृंगेरी मठ चैतन्य की उपाधि प्रदान करेगा।''

इतना कहने के पश्चात् आचार्य ने कहा—''आशा है, तुम सब भविष्य के कार्यक्रमों को समझ गये होगे?''

---

१. यह मठ मैसूर जिले में तुंगभद्रा नदी के किनारे है।

शिष्यों ने कहा—''जी हाँ, गुरुदेव।''

यह बात सुनते ही आचार्यजी मौन हो गये। अपने दीक्षा-गुरु गोविन्दपाद के महाप्रयाण के समय वे जिन श्लोकों का पाठ करते रहे, इस समय उसी की आवृत्ति करने लगे। थोड़ी देर बाद उनकी प्राण-वायु लीन हो गयी।

आचार्यजी के निधन-स्थान के बारे में कई मत हैं। इनमें आचार्य माधव की राय को प्रामाणिक माना गया है। कुछ लोग शृंगेरी मठ में शारदा देवी के सामने मानते हैं और कहते हैं कि वहीं समाधि दी गयी है। वहाँ पत्थरों से बना एक भवन है। दूसरी राय यह है कि मलावार स्थित त्रिचूर के परशुराम मंदिर के विग्रह में वे प्रवेश कर गये थे। तीसरा मत यह है कि कामाख्या देवी के सामने उन्होंने अपना शरीर छोड़ा था। वहीं उन्हें समाधि दी गयी थी। अन्तिम राय यह है कि बम्बई के समीप उनका शरीरान्त हुआ था।

■

संत एकनाथ

अपने घर में संत एकनाथ कुछ मित्रों को लेकर कीर्तन कर रहे थे। अचानक उन्हें लगा जैसे कमरे में बाहर धम् से आवाज हुई। वे कोठरी के बाहर आये। कीर्तन रुक गया। एक आदमी रोशनी लेकर बाहर आया तो देखा गया कि घर की दीवार के पास कोई आदमी जमीन पर से उठने का प्रयत्न कर रहा है। लोगों को संदेह हुआ कि शायद चोरी करने आया था और गिर पड़ा है।

एकनाथ ने पास जाकर सहारा देते हुए उठाया और तब कहा—''अरे, यह तो बेहोश हो गया है।''

बरामदे में लाकर उसके मुँह पर पानी छिड़कने और हवा करने पर उसे होश आया। एकनाथ ने पूछा—''तुम कौन हो? कहाँ रहते हो?''

उस व्यक्ति ने कहा—''मुझे बहुत भूख लगी है। पहले कुछ खिलाइये तब मैं सारी बातें बताऊँगा।''

एकनाथ ने अपनी पत्नी से कहा—''प्रसाद के लिए जो खीर बनायी हो, जरा लेती आओ।''

एकनाथ ने अपने हाथ से उस व्यक्ति को खीर खिलायी। थोड़ा स्वस्थ होने पर उस व्यक्ति ने कहा—''मैं वास्तव में चोर हूँ। मुझे सजा हो गयी थी। इधर कुछ दिनों से मुझे ठीक से भोजन नहीं दिया जा रहा था। यह शीघ्र मर जायेगा, समझकर आज मुझे जेल से निकाल दिया गया। आपके यहाँ गाने-बजाने की आवाज सुनकर भोजन माँगने आया तो कमजोरी के कारण गिर पड़ा।''

एकनाथ ने कहा—''कोई बात नहीं। अब तुम आराम करो। मैं तुम्हारे लिए वैद्यजी के यहाँ से दवा लाता हूँ।''

दूसरे दिन एकनाथ जेलखाने के अधिकारी से मिले। सारी बातें सुनने के बाद जेलर ने कहा—''आप संत हैं। आपकी बात निराली है। लेकिन एक चोर के प्रति हमदर्दी अच्छी बात नहीं। जेल अधिकारियों की बदनामी न हो, इसलिए सजा पूरी करने के पहले मैंने छोड़ दिया। अब वह आजाद है।''

वहाँ से वापस आने के बाद एकनाथ ने चोर से कहा—''उद्धव, अगर तुम सामान्य ढंग से जीवन व्यतीत कर सको तो तुम्हें मेरे यहाँ स्थान मिल जायगा। दिन में घर का काम करना और शाम को भजन।''

अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें। चोर को भला कौन आश्रय देता? संत एकनाथ

का यह व्यवहार मित्रों को पसन्द नहीं आया। वे उद्धव के रखने का विरोध करने लगे। एकनाथ ने कहा—''कुसंगति में पड़कर इसने अपराध किया। अब मेरे साथ रहकर न सुधरा तो उसका भाग्य।''

कुछ दिन बाद लोगों ने देखा कि उद्धव पूर्ण रूप से साधु-प्रकृति हो गया है। चन्दन-वृक्ष के आसपास स्थित वृक्ष भी सुगंधित हो जाते हैं।

एक अर्से से नित्य शाम को एकनाथ के घर कीर्तन होता था। पड़ोसियों के अलावा अन्य लोग भी इस आयोजन में भाग लेते थे। इनमें रण्या नामक एक व्यक्ति था। कभी किसी सामाजिक अपराध के कारण पति-पत्नी दोनों जातिच्युत कर दिये गये थे।

इन्हें अपने को जातिच्युत होने का बड़ा कष्ट था। एक दिन एकनाथ ने कहा— ''प्रभु के दरबार में सब एक हैं। न कोई छोटा और न कोई बड़ा है। न कोई नीच है और न ऊँच। यह सब प्रपंच हमारे द्वारा निर्मित हैं।''

रण्या पर इस प्रवचन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने सोचा—जब संतजी के ये विचार हैं तब वे हमारा आमंत्रण अवश्य स्वीकार करेंगे। इस विश्वास के साथ एक दिन एकनाथ के यहाँ कीर्तन के समय उसने अपनी इच्छा प्रकट की। संत एकनाथ ने तुरन्त उसके आमंत्रण को स्वीकार कर लिया। कीर्तन में आये लोगों की जबानी यह बात चारों ओर फैल गयी।

संत एकनाथ की प्रसिद्धि से स्थानीय कट्टरपंथी लोग चिढ़ते थे। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता हुई। वे रण्या और एकनाथ के मकान पर नजर रखने लगे ताकि रँगे हाथ पकड़ा जाय और उन्हें भी जातिच्युत कर दिया जाय।

लेकिन वही बात हुई—'मेरे मन कुछ है और कर्त्ता के मन कुछ और।' कट्टरपन्थियों ने देखा कि उस दिन एकनाथ अपने घर से नहीं निकले, बल्कि अपने घर पर ही भोजन करते रहे। उधर रण्या के घर पहरा देनेवालों ने देखा कि पता नहीं किधर से एकनाथ आ गये और उसके यहाँ भोजन कर रहे हैं। दोनों स्थानों पर एकनाथ एक ही समय पर भोजन कर रहे थे।

बाद में जब एकनाथ से किसी ने पूछा—''यह चमत्कार कैसे हुआ?''

एकनाथ ने कहा—''यह भगवान् पांडुरंग की कृपा से हुआ। यदि हम ईश्वर के ऊपर अपना भार छोड़ दें तो वह कठिनाइयों में अवश्य सहारा देगा। वह अपने भक्तों की सेवा उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कृष्ण ने सारथी बनकर अर्जुन की सेवा की थी।''

* * *

दक्षिण भारत में पंढरपुर की गणना महान् तीर्थस्थलों में की जाती है। विठोवा विग्रह को लोग साक्षात् भगवान् मानते हैं। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम आदि संत विठोवा के उपासक थे। दक्षिण के विजयनगर के राजा वीर नरसिंह का सौतेला भाई

कृष्णराय जब अपने भाई के निधन के पश्चात् राजा बना तब वह दक्षिण के छोटे-छोटे राज्यों से ही नहीं, बल्कि महमूद द्वितीय की सेना से भी लड़ता रहा। स्वभाव से कट्टर धार्मिक होने के कारण उसने अपनी राजधानी में अनेक मंदिर और गोपुरम् बनवाये। लेकिन दो कार्य उसने अपनी राजधानी में अनेक मंदिर और गोपुरम बनवाये। लेकिन दो कार्य उसने गलत किये। उदयगिरि से बालकृष्ण तथा पंढरपुर से विठोवा की मूर्ति उठाकर विजय नगर ले गया।

पंढरपुर से विठोवा की मूर्ति चले जाने के कारण वहाँ के नागरिक क्षुब्ध हो उठे। परम भागवत भानुदास को कृष्णराय का यह अनाचार सहन नहीं हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे अपने आराध्य विठोवा को पंढरपुर लायेंगे। प्राणों की बाजी लगाकर एक दिन वे विठोवा को ले आये। इस प्रकार वे इतिहास में अमर हो गये।

भानुदास के पुत्र चक्रपाणि अपने युग के प्रकाण्ड विद्वान् एवं संत थे। चक्रपाणि के पौत्र संत एकनाथ का जन्म सन् १५३३ ई० के मूल नक्षत्र में हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म लेनेवाली संतान माता-पिता के लिए घातक होती है। एकनाथ के जन्म लेने के कुछ ही दिनों के भीतर उसके माँ-बाप की मृत्यु हो गयी। फलस्वरूप चक्रपाणि को अपने पौत्र का पालन-पोषण करने के लिए विवश होना पड़ा।

वंश में सभी विद्वान् थे जिसका प्रभाव एकनाथ पर पड़ा। धार्मिक कथाओं में रुचि, पूजन, मंदिर-दर्शन, हरि-कीर्तन में एकनाथ बराबर भाग लेते थे। स्मरण-शक्ति तीव्र होने के कारण शिक्षा में प्रगति करते गये।

कहा जाता है कि एकनाथ जब बारह वर्ष के हुए तब एक दिन उन्हें शिव-मंदिर में देववाणी सुनाई दी—"तुम देवगढ़ चले जाओ। तुम्हारे भावी गुरु जनार्दन स्वामी वहीं रहते हैं। वे तुम्हें दीक्षा देंगे।"

इस देववाणी को सुनते ही वे एक दिन चुपचाप देवगढ़ के लिए रवाना हो गये। पंढरपुर से देवगढ़ (दौलताबाद) लगभग ६३ मील दूर था। उन्होंने पैदल तय किया।

जनार्दन स्वामी के पास जाकर एकनाथ ने साष्टांग प्रणाम करने के बाद अपने आने का उद्देश्य बताया। एकनाथ की इच्छा सुनकर जनार्दन स्वामी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने शिष्य के रूप में उसे अपना लिया। जनार्दन स्वामी मुसलमान शासकों की ओर से वहाँ के किले के अधिकारी थे। प्रत्येक गुरुवार को उन्हें शासन की ओर से अवकाश दिया जाता था। उस दिन जनार्दन स्वामी दत्तात्रेय भगवान् की आराधना करते थे।

एकनाथ अपने गुरु की सेवा में लगभग छह वर्ष तक रहे। पानी लाना, गुरु को स्नान कराना, भोजन के पश्चात् पैर दबाना आदि सेवा-कार्य अत्यन्त लगन से करते रहे। उसके कार्यों से प्रसन्न होकर जनार्दन स्वामी ने उसे किले का हिसाब-किताब रखने की जिम्मेदारी दे दी।

एक बार हिसाब करते समय एकनाथ काफी परेशान हुए। रोकड़ लिखने में कहाँ

भूल हुई है, पता नहीं चल रहा था। आधी रात के बाद जब उन्हें अपनी गलती मालूम हुई तब प्रसन्न होकर वे तालियाँ बजाने लगे।

जनार्दन स्वामी की नींद खुल गयी। ताली बजाने का कारण जान लेने के बाद उन्होंने कहा—"जिस तन्मयता के साथ तुमने सामान्य रकम के लिए श्रम किया, अगर तुम इसी तन्मयता के साथ ईश्वर की आराधना करो तो उनका दर्शन सहज ही प्राप्त कर लोगे।"

गुरु के इस आशीर्वाद को पाकर एकनाथ आत्मविभोर हो गये। जनार्दन स्वामी एकनाथ की भक्ति और सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन उसे अपने साथ लेकर देवगिरि के जंगल में स्थित पहाड़ की चोटी पर ले गये जहाँ एक सुन्दर झील थी। यहाँ आकर स्वामी जनार्दन ने कहा—"अब तुम यहीं बैठकर तपस्या करो। यह याद रखना कि यहाँ भगवान् दत्तात्रेय बराबर भिन्न-भिन्न रूप में आते हैं। यदि वे भयानक रूप में भी प्रकट हों तो भयभीत मत होना। उनकी स्तुति करना।"

ठीक उसी समय एक साधु एक कुतिया को लेकर आया। साधु कोई खाल लपेटे हुए था। उन्होंने जनार्दन स्वामी को एक बरतन देकर कुतिया का दूध दूहने की आज्ञा दी। दूध दुह जाने पर उसमें कुछ रोटी के टुकड़े डालकर उसे तीनों व्यक्ति खाने लगे। भोजन के पश्चात् एकनाथ को बरतन साफ करने का आदेश मिला। जब वह झील से वापस आया तो देखा—भगवान् दत्तात्रेय अपने असली स्वरूप में खड़े हैं।

एकनाथ ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उसे आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। देवगिरि के पास ही सुलभा पर्वत है जिसे शूल भंजन कहा जाता है। कभी मार्कण्डेय ऋषि यहाँ तपस्या करते थे। इस पर्वत पर सूर्यकुण्ड है। नित्य सूर्यकुण्ड में स्नान करने के पश्चात् दीक्षा गुरु जनार्दन स्वामी द्वारा बताये मंत्र का जाप एकनाथ करते थे। कहा जाता है कि अक्सर कोई साँप आकर उनके शरीर से लिपट जाता था। यहीं उन्हें श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन हुए।

अपनी तपस्या समाप्त कर एकनाथ पुनः गुरु के पास वापस आ गये और इस बीच जितनी घटनाएँ हुई थीं, उनका विस्तार से वर्णन किया। सारी बातें सुनने के पश्चात् गुरु ने कहा-"अब तुम भारत के तीर्थों का दर्शन करो और भगवान् दत्तात्रेय के धर्म का प्रचार करो।"

गुरु से आज्ञा पाकर वे तीर्थयात्रा के उद्देश्य से रवाना हो गये। नासिक, काशी, मथुरा होते हुए उत्तर की ओर चले गये। वहाँ अनेक संतों के सत्संग का लाभ उन्होंने उठाया। संतों की एक टोली के साथ वे पुनः वापस प्रयाग आये। उन्होंने देखा कि सभी संत काँवरों में जल लेकर रामेश्वर-यात्रा के लिए जानेवाले हैं। एकनाथ ने सोचा कि इन संतों के साथ रामेश्वर-यात्रा का लाभ उठाना चाहिए। काँवर में जल लेकर वे संतों के साथ रामेश्वर की ओर रवाना हो गये।

मार्ग में रेगिस्तान आया। दोपहर का वक्त था। गर्मी का मौसम । ऊपर सूर्य और नीचे धरती तप रही थी। इसी मरुभूमि में एक गधा प्यास से छटपटा रहा था। तीर्थयात्रियों

का दल वहाँ पहुँचा। सभी लोगों की आँखों में करुणा के भाव आये, पर किसी ने दया नहीं की। आसपास कोई जलाशय भी नहीं था। काँवरी का जल तो रामेश्वर के अर्घ्य के लिए है। एक-एक कर यात्री आगे बढ़ते गये।

एकाएक संतों ने पीछे मुड़कर एक अद्‌भुत दृश्य देखा—एकनाथ प्यासे गधे के पास बैठकर कलश का जल उसके मुँह पर उड़ेल रहे थे।

एक संत ने कहा—''एकनाथ, यह क्या ? यह पवित्र जल इतनी दूर से देवाधिदेव रामेश्वरजी के लिए ले आ रहे हो और उसका यह उपयोग?''

एकनाथ ने कहा—''यह पशु भी तो उन्हीं का अंश है। यह गधा कहाँ है? साक्षात् रामेश्वर मुझसे पानी माँग रहे हैं। मैं उनका अभिषेक कर रहा हूँ।''

संतों ने कहा—''अत्यधिक गर्मी के कारण एकनाथ का मस्तिष्क विकृत हो गया है।''

सभी लोग एकनाथ को वहीं छोड़कर आगे बढ़ गये। थोड़ी ही देर बाद एकनाथ ने देखा—साक्षात् भगवान् उनके सामने प्रकट होकर आशीर्वाद दे रहे हैं।

यहाँ से द्वारिका आदि स्थानों की यात्रा करने के बाद वे पैठण चले आये। पैठण आकर वे सीधे अपने घर न जाकर एक मंदिर में ठहर गये। अब तक सिर पर जटा, लम्बी दाढ़ी और पहनावा साधुओं की तरह हो गया था। उनके इस रंगरूप को देखकर लोग उन्हें पहचान नहीं सके।

नित्य शाम को एकनाथ भागवत-कथा पाठ करते थे। ज्ञातव्य है कि संत एकनाथ ने मराठी में चतुश्लोकी भागवत पर टीका लिखी है। भागवत पुराण के ग्यारहवें स्कन्द का भी उन्होंने मराठी में अनुवाद किया था। इसके अलावा 'भावार्थ रामायण' एवं 'रुक्मिणी स्वयंवर' लिखा था। संत ज्ञानेश्वर की अमर कृति 'ज्ञानेश्वरी' की प्रामाणिक प्रतिलिपि प्रकाशित कराई थी।

एक दिन एकनाथ के कुल पुरोहित मंदिर-दर्शन करने आये तो उन्हें इस साधु पर शंका हुई। वे बिना कुछ प्रश्न किये तुरन्त एकनाथ के घर गये। उन्होंने एकनाथ के दादा चक्रपाणि से कहा—''काकाजी, आपका एकनाथ आ गया है। शिव-मंदिर में जो बाबा नित्य भागवत-कथा कहता है, वही है। मेरी इच्छा है कि आप मेरे साथ चलें। हम दोनों को एक साथ देखकर वह चौंक उठेगा।''

चक्रपाणिजी हर्ष से उछल पड़े। उन्होंने पूछा—''बाबा ही चक्रपाणि हैं, यह कैसे मालूम हुआ?''

कुल पुरोहित ने कहा—''तीर्थयात्रा के सिलसिले में एक बार मैं दौलताबाद गया था। स्वामी जनार्दन के यहाँ भी उनका दर्शन करने गया। तब पता चला कि एकनाथ को स्वामीजी ने दीक्षा दी है। उन दिनों वहाँ एकनाथ नहीं था। गुरुदेव की आज्ञानुसार तीर्थयात्रा करने निकल गया था। आप मेरे साथ चलिये। अगर वह एकनाथ न हुआ तो हम वापस आ जायेंगे।''

दोनों व्यक्ति शिव-मंदिर आये। इन्हें देखते ही परम्परा के अनुसार एकनाथ ने दोनों आराध्यों के चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। इतने दिनों के बाद अपने पौत्र को पाकर चक्रपाणि आनन्द से विह्वल हो उठे। दादा के अनुरोध पर एकनाथ घर आकर रहने लगे। एक दिन दादा ने कहा—''अब विवाह करके घर बसा ले। जीते जी तुझे गृहस्थ के रूप में देख लूँ।''

एकनाथ विवाह के लिए राजी नहीं हुए। जब यह समस्या कुल पुरोहित के सामने आयी तब उन्होंने चक्रपाणि से कहा—''काका, आप बेफिक्र रहिये। मैं इसका प्रबंध करता हूँ।''

दूसरे दिन कुल पुरोहित दौलताबाद की ओर रवाना हो गये। वहाँ जाकर उन्होंने जनार्दन स्वामी से एकनाथ के बारे में सारी बातें सुनायीं। दादा-दादी के दुःख की बातें विस्तार से बतायीं। उन्होंने कहा—''अगर एकनाथ का विवाह नहीं हुआ तो इतने महान् पंडित का घराना चौपट हो जायगा। भानुदास का वंश समाप्त हो जायगा।''

जनार्दन स्वामी ने कहा—''ऐसा नहीं होगा। मैं एकनाथ के नाम पत्र दे रहा हूँ। उसे जाकर दे दीजिएगा। गुरु की आज्ञा मानना शिष्य का धर्म है।''

जनार्दन स्वामी से आज्ञा-पत्र लेकर कुल पुरोहित पैठण वापस आये। जब उस पत्र को एकनाथ के सामने रखा गया तब वे इस आज्ञा का पालन करने के लिए विवश हो गये। इस प्रकार उनका विवाह गिरिजा बाई से हो गया। इस विवाह से दादा-दादी के अलावा स्वयं एकनाथ भी प्रसन्न थे। गिरिजा बाई परिवार के सभी लोगों की सेवा में तत्पर रहती थीं। एक प्रकार से एकनाथ का पूरा परिवार सात्त्विक-जीवन व्यतीत कर रहा था।

वास्तव में एकनाथजी दक्षिण भारत के महान् संत थे। नित्य गोदावरी में स्नान करने के बाद भगवान् का पूजन करते । शाम को घर पर कीर्तन का आयोजन करते और आगत अतिथियों की सेवा करते हुए जीवन व्यतीत करते थे।

कहा जाता है कि एक बार इनके घर कुछ चोर आये थे। उनका विश्वास था कि जब इतना उत्सव करते हैं, अतिथियों को खिलाते हैं तब इनके पास गहरी रकम होगी। रात को घर के बरतनों की चोरी करने के बाद चोरों का समूह पूजा-घर में आया तो देखा कि एकनाथ ध्यानमग्न होकर पूजा कर रहे हैं।

उन्हें इस हालत में देखकर चोर डर गये। तुरन्त पूजा-गृह से बाहर आये तो सभी दृष्टि-हीन हो गये। फलतः इधर-उधर बहककर गिर पड़े। एकनाथ का ध्यान भंग हुआ। वे इन चोरों के पास आये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ये लोग चोरी करने आये हैं। उन्होंने कहा—''आप लोग क्यों कष्ट कर रहे हैं? मुझसे कहते तो मैं आपको सारा सामान दे देता। बगल के कमरे में और भी सामग्री है, उसे भी ले जाइये।''

चोरों ने हाथ जोड़ते हुए कहा—''महाराज, हमसे गलती हो गयी, क्षमा करें। हमें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। हमें कुछ नहीं चाहिए। आप कृपा करके हमें दृष्टि-दान दीजिए।''

एकनाथजी समझ गये कि भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिए इन्हें यह सजा दी है। उनका हृदय करुणा से भर गया। चोरों की आँखों पर हाथ फेरते ही उन्हें खोयी हुई दृष्टि पुनः प्राप्त हो गयी।

एकनाथ ने कहा—"अब जो इच्छा हो, सब ले जा सकते हो।"

चोरों ने उनके पैर पकड़ते हुए कहा—"अब ऐसी गलती हम नहीं करेंगे। कृपया आप हमें क्षमा कर दें।"

एकनाथ की बढ़ती प्रतिष्ठा से एक मुसलमान काफी चिढ़ गया था। वह इनकी मर्यादा को भंग करने का उपाय सोचता रहा। गोदावरी से स्नान करके ज्योहीं वे उसके दरवाजे के सामने से गुजरते त्योंही वह कुल्ला करके मुँह का पानी इन पर फेंक देता था। अपवित्र हो जाने के कारण वे पुनः स्नान करने चले जाते। वापस आते ही वह पुनः वही हरकत करता था। एक दिन उसने १०८ बार बदमाशी की। अन्त में हारकर उसने क्षमा माँग ली।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ उनके जीवन में हुईं जब उन्होंने अपनी सदाशयता के कारण उन अपराधियों को क्षमा कर दिया। एक बार वे संत ज्ञानेश्वर की समाधि (जो कि पूना नगर से १२ मील दूर है।) का दर्शन करने गये। मार्ग में संत ज्ञानेश्वर ने उन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि उनकी समाधि पर जो लताएँ लिपट गयी हैं, उन्हें हटा दें।

* * *

एकनाथजी के दादा-दादी का देहान्त हो गया था। पितृ पुरुषों के उद्देश्य से उन्होंने श्राद्ध का आयोजन किया। निश्चित दिन ब्राह्मण-भोजन था। पैठण के ब्राह्मण बड़े कट्टर थे।

भोजन बन जाने के बाद सहसा उसी समय एकनाथ के दरवाजे के समीप से कुछ हरिजन गुजरते हुए आपस में कहने लगे—"आज संतजी के यहाँ बड़ा सुस्वादु भोजन बन रहा है। लोग बड़े चाव से खायेंगे। कितनी बढ़िया सुगंध है।"

दूसरे ने कहा—"सुगंध से पेट भर ले। ऐसा भोजन हम लोगों के भाग्य में कहाँ है?"

बाहर एकनाथजी ने इस बातचीत को सुनकर कहा—"तुम लोग ठहरो। मैं यह भोजन तुम लोगों को खिलाऊँगा। एक काम करो। मैं जबतक प्रबंध कर रहा हूँ तब तक तुम लोग अपने-अपने घर से बाल-गोपाल और पत्नियों को ले आओ।"

कुछ ही देर बाद एकनाथजी के दरवाजे पर हरिजनों की भीड़ लग गयी। भोजन से तृप्त होने के बाद सभी एकनाथ की जय-जयकार करते हुए चले गये। उद्धव के सहयोग से घर की सारी सफाई करने के बाद पुनः ब्राह्मण-भोजन के लिए पकवान बनाये गये।

निश्चित समय पर जब ब्राह्मण लोग आये तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ब्राह्मण-

भोजन के पहले ही एकनाथ ने हरिजन-भोजन कराया है। इस समाचार को सुनते ही सभी भयंकर रूप से क्षुब्ध हो उठे। एक प्रकार से यह उनका घोर अपमान था।

ब्राह्मणों को क्षुब्ध होते देख एकनाथ ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"यह ठीक है कि मैंने हरिजनों को खिलाया है। पकवान की गंध से वे लालायित हो उठे थे, पर मैंने पुनः नये सिरे से सारी सफाई करके आप लोगों के लिए भोजन बनवाया है। अपवित्रता कहीं नहीं है।"

पंडितों ने कहा—"यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है। पितृ पुरुषों के श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है या अस्पृश्य शूद्रों को? जिस घर में हरिजन खा चुके हैं, उस घर के उच्छिष्ट स्थान पर हम भोजन करेंगे? शूद्रों के भोजन से तुम्हारा निवास ही नहीं, बल्कि तुम्हारा सारा परिवार अपवित्र हो गया। जब से तुम यहाँ आये हो, केवल अनाचार फैला रहे हो। अब भविष्य में कोई भी ब्राह्मण तुम्हें स्पर्श तक नहीं करेगा।"

काफी अनुनय-विनय करने पर भी ब्राह्मणों का हृदय नहीं पसीजा। एकनाथ को संत ज्ञानदेव के जीवन की घटना याद आ गयी। इसी प्रकार की घटना उनके जीवन में हुई थी। कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने उनके यज्ञोपवीत में बाधा डाली थी।

ब्राह्मणों के इस व्यवहार से दुःखी होकर वे अपने कमरे में आये। पत्नी ने पूछा—"अब क्या होगा?"

एकनाथ ने कहा—"प्रभु की यही इच्छा थी। चिन्ता मत करो। सारी सामग्री ले आओ। श्राद्ध की समस्त क्रियाएँ करूँगा। आगे ग्रहण करना या न करना सब कुछ भगवान् विठोवा पर निर्भर करता है।"

तीन पीढ़ियों के लिए तीन आसन, तीन थालियाँ आदि रख गये। एकनाथ ने भगवान् को स्मरण करते हुए अपने पितृ पूर्वजों का आह्वान किया। इस आयोजन में ब्राह्मण नहीं आये थे, परन्तु परिवार के लोगों के अलावा पड़ोसी उपस्थित थे। श्राद्ध-क्रिया समाप्त होने के बाद शेष लोगों को भोजन परोसा गया।

ठीक उसी समय उपस्थित सभी लोगों ने देखा कि प्रथम थाली पर प्रपितामह भानुदास, द्वितीय थाली पर पितामह चक्रपाणि और तृतीय थाली पर पिता सूर्यनारायण श्राद्ध-अन्न ग्रहण कर रहे हैं। यह एक ऐसी घटना थी जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सका था। बातों-बातों में इस घटना का प्रचार तेजी से हुआ। कट्टर ब्राह्मण-मंडली पर जैसे वज्रपात हुआ। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि एकनाथ वास्तव में उच्चकोटि के संत हैं। अन्यथा ऐसा चमत्कार कैसे होता। वे अपने व्यवहार पर लज्जित हो उठे। सभी लोग एकनाथ के निकट आकर क्षमा माँगने लगे और यह प्रतिज्ञा की कि भविष्य में कभी वे एकनाथ के साथ दुर्व्यवहार नहीं करेंगे।

एकनाथ ने सबसे बड़ा कार्य किया—भागवत धर्म का प्रचार और तत्कालीन समाज-सुधार। भजन-कीर्तन करना उनके कर्त्तव्य के अंग थे। कुछ दिनों के बाद एकनाथ ने स्वतः अनुभव किया कि अब उनके महाप्रयाण करने का समय आ गया है।

एक दिन उन्होंने संत ज्ञानेश्वर की तरह भविष्यवाणी की कि फाल्गुन कृष्ण षष्ठि को वे महाप्रयाण करेंगे। अपने भक्तों तथा शिष्यों के साथ वे गोदावरी तट पर आये। मार्ग में गुरु-प्रदत्त मंत्र का जाप करते रहे। नदी किनारे आकर उन्होंने लोगों को उपदेश देना प्रारंभ किया। उनका अंतिम संदेश था—''कलियुग में भगवान् नाम के अलावा मोक्ष प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नहीं है। अगर तुम्हें अन्तकाल में मोक्ष चाहिए तो नित्य जपते रहना।''

इसके बाद उनका शरीर गोदावरी तट स्थित लक्ष्मीतीर्थ में विलीन हो गया।

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

बारह भाग, ६ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित बारह भागों (६ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२
तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४
योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६
स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८
किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१०
भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२
बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये